॥ ओ३म् ॥

महर्षि दयानन्द सरस्वती

(सचित्र प्रामाणिक जीवन-चरित्र)

लेखक—
'आर्यसमाज का इतिहास' 'वैदिक शिष्टाचार,'
'मार्तिका सन्देश' आदि के रचयिता
श्री पं० हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार

प्रकाशक :—
सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड,
पाटौदी हाऊस, दरियागंज, दिल्ली—७

द्वितीयवार १०००० } २०१० { मूल्य ।।।)

वितरक :—
सार्वदेशिक पुस्तकालय
पाटौदी हाउस, दरियागंज,
दिल्ली ।

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले
तावन्महर्षि-महिमा लोकेषु प्रचरिष्यति ॥

मुद्रक :—
चतुरसेन गुप्त
सार्वदेशिक प्रेस,
दरियागंज, दिल्ली ।

भूमिका

इस युग के महानतम, सुधारक सु-क्रान्तिकारी, वेद शास्त्रों के प्रकाण्ड पंडित, अत्यन्त दूरदर्शी, क्रान्तदर्शी और परमात्मा की सत्ता में अटल विश्वास रखने वाले सत्यनिष्ठ, अखण्ड ब्रह्मचारी, आर्यसमाज के प्रवर्तक श्री १०८ महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र पाठकों की भेंट करने का सौभाग्य प्राप्त करने तथा इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित करने में मुझे विशेष हर्ष हो रहा है।

महर्षि स्वामी दयानन्द साधारण व्यक्ति न थे, वे युग-प्रवर्तक थे। कुछ ही वर्षों में उन्होंने भारत का हुलिया बदल डाला। निश्चय जानिए कि यदि महर्षि न आते तो वेद, शास्त्र और आर्य संस्कृति का नाम तक मिट चुका होता, और आज हम में शायद ही कोई मुसलमान या ईसाई होने से बचा रहता। हमें अंग्रेजों की गुलामी से जो स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है, यह भी इन्हीं महर्षि के पुण्य प्रताप से है। स्वराज्य शब्द को पहले-पहल महर्षि दयानन्दजी महाराज ने ही अपने विख्यात ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश में प्रयोग किया।

दलितों के उत्थान, अनाथों और विधवाओं के संरक्षण, स्त्रीशिक्षा के प्रसार, अद्वैतवाद (अहं ब्रह्मास्मि) आदि पाखण्डों के खंडन, पाषाण, पीतल आदि की बनी मूर्तियों की पूजा के स्थान में सच्चे शिव के पूजने, जन्म से ब्राह्मणादि वर्ण न मानकर गुण कर्मानुसार जाति और वर्ण के निश्चय; भूत-प्रेत गण्डा तावीज आदि के भंवर में विनष्ट होती हुई भारतवासियों की नय्या को सुरक्षा के किनारे लगाने में महर्षि के उपकार का ऋण चुकाना हमारे लिए असम्भव है। महर्षि का पराक्रम शतशः वन्द्य है। महर्षि के सत्यार्थप्रकाश और ऋग्वेदादि

भाष्य-भूमिका को देखा जाय, लोक-परलोक का कोई विषय नहीं जो उन से छूट पाया हो। ऐसे सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र महापुरुष हजारों वर्षों में कभी-कभी और कहीं कहीं किसी किसी देश में जन्म लेते हैं। ऐसे महान् आत्माओं का जीवन-चरित्र गाढ़ निद्रा में सोई आत्माओं को झंझोड़ कर जगाने वाला होता है।

यह ग्रन्थ धर्मावलम्बियों में नया उत्साह, विधर्मियों और अधर्मियों को नई ज्योति प्रदान करेगा। आर्यों की सन्तान में जो कहीं-कहीं पथभ्रष्टता और प्रकृति-भक्ति का भाव पाया जाता है, महर्षि की जीवनी उन्हें सन्मार्ग पर ले आएगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा द्वारा सुपोषित सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटिड कम्पनी ने अपनी उपयोगिता का प्रथम परिचय तब दिया जब तीन मास पूर्व ४२-५०० की संख्या में गोकरुणानिधि छाप कर ४) सैंकड़ा लागत मात्र पर देश के कोने २ में हाथों-हाथ वितरित कर दी। पर अब जो ४५ चित्रों सहित ४०० पृष्ठों का महर्षि का जीवन चरित्र ॥।) में दे डाला, तो यह आर्य जगत तथा सत्य की खोज करने वाले विशाल जगत् पर महान् उपकार किया है।

इसका श्रेय सार्वदेशिक प्रेस के प्रबन्धक शामली निवासी श्री चतुरसेनजी गुप्त तथा ग्रंथ के लेखक श्री हरिश्चन्द्रजी विद्यालंकार को है। मैं सब पाठकवृन्द तथा डायरेक्टरों और अपनी ओर से उन को बहुत २ बधाई देता हूँ।

वैसाखी
२०१०
दिल्ली

कविराज हरनामदास बी०ए०
डायरैक्टर इन्चार्ज,
सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटिड

विषय-सूची

विद्वान् पंडित द्वारा समर्थन, कण्ठियों का ढेर, शारीरिक सामर्थ्य; अजमेर-प्रवास—ईसाइयत से मुठभेड़, गोवध रुकवाने का पहला प्रयत्न, किशनगढ़ में शारीरिक विरोध, आदर्श गुरु-शिष्य का अन्तिम मिलन, कीमिया का नुस्खा।

६. संगठन से पूर्व—(पृ० ७६ से १८६ तक) त्यागयज्ञ में पूर्णाहुति—पाखण्ड खण्डिनी पताका, अद्भुत संन्यासी, सर्वमेध यज्ञ; गंगातट विचरण–कुछ अमर घटनाएं, निराहार रहे; फर्रुखाबाद, अनूपशहर, चक्रांकित नन्दराम कापलायन, प्रथमशिष्य टीकाराम, कर्णवास में, प्रथम शास्त्रार्थ; कर्णवास में यज्ञोपवीत यज्ञ—नौमुस्लिम की शुद्धि, स्त्री को गायत्री जप का अधिकार, योगबल से द्वन्द्व विजय; सोरों में विचरण–ठाकुर का मानमर्दन, महाभारत का संशोधन; कर्णवास में घातक आक्रमण—राव कर्णसिंह का मानमर्दन; व्याकरण के सूर्य का अस्त होगया; ककोड़े का मेला, पहली पाठशाला कासगंज में, उग्रतपस्विजीवन; फर्रुखाबाद में तीसरी बार–पं० श्रीगोपाल से शास्त्रार्थ, पाठशाला की स्थापना, न्यायालय में सत्य ही कहेंगे, हलधर ओझा से शास्त्रार्थ, कन्नौज में; कानपुर का शास्त्रार्थ—आठ गप्प, आठ सत्य; हलधर ओझा से दूसरा शास्त्रार्थ, महर्षि की विनोदप्रियता; पाखण्ड का दुर्भेद्य गढ़ काशी—काशी नरेश का व्यवहार, काशी की महिमा; काशी शास्त्रार्थ, कूटनीति का प्रयोग, पण्डित ही नहीं, सिद्ध भी, शास्त्रार्थ के पश्चात्, समाचारपत्रों की सम्मतियां, राजपण्डित द्वारा ऋषि का समर्थन, नरेश का पश्चात्ताप, गंगा में डुबाने का प्रयत्न, पान और भोजन में विष; प्रयाग के कुम्भ मेले में—देवेन्द्रनाथ ठाकुर से भेंट, वैदिक पाठशाला का स्वरूप, माधव बाबू का कायापलट, देश की दरिद्रता पर आंसू, मिर्जापुर में; कासगंज की पाठशाला के नियम, अनूपशहर—कैद कराना नहीं छुड़ाना मेरा उद्देश्य, भक्त ठाकुर मुकुन्द-

सिंह, प्रामाणिक ग्रन्थ; कलकत्ता में सुधारकों से भेंट-मार्ग में मुगल-सराय, डुमरांव और आरा के संस्मरण, पटना में एक मास, आदम-हत्या की स्मृति, भागलपुर में दो मास; विद्वत्सम्मेलन के चार मास—बंगाल का वातावरण, बा० केशवचन्द्र सेन, दिनचर्या, विचारधारा, हिन्दी में बोलने और वस्त्र धारण करने का निश्चय, पं० ताराचरण से शास्त्रार्थ; संवत् १९३० वि०—पाठशाला तोड़ दी।

७. संगठन का सूत्रपात—(पृ० १८७ से २३२ तक) कार्यक्रम के रुख में परिवर्तन—सार्वजनिक व्याख्यान में विघ्न, कानपुर में दिन-चर्या, लखनऊ में काशी की पुनरावृत्ति, राजा जयकिशनदास से मैत्री, हाथरस, मथुरा, वृन्दावन में प्रचार, (काशी में) हिन्दी में प्रथम व्या-ख्यान, आर्य विद्यालय में सुधार, सत्यार्थ प्रकाश का आरम्भ, आदिम सत्यार्थ प्रकाश पर आक्षेप, आदिम सत्यार्थप्रकाश का महत्व, प्रयाग में नीलकंठ शास्त्री से वार्तालाप, गुरुडम के कट्टर विरोधी थे, विचारधारा, बम्बई प्रान्त की प्रचारयात्रा। आर्यसमाज के विचार के अंकुर, अहमदा-बाद में ८ व्याख्यान,राजकोट में आर्यसमाज; हिंसा-अहिंसा की मीमांसा; अहमदाबादमें भी आर्यसमाज १,आर्यसमाज नहीं,आर्यसमाज का काम; युक्त प्रदेश में संगठन (पृ० ३०३ से ३३९) व्याख्यानों पर पहली बार प्रतिबन्ध, रुड़की में शास्त्रार्थ की छेड़छाड़, थियोसोफिकल सोसाइटी से सम्बन्ध, अलीगढ़ में नेताओं से भेंट, वेदभाष्य के प्रबन्ध की चिन्ता, भक्त का देहपात, मसूदाधिपति से भेंट, अजमेर में ग्रे से शास्त्रार्थ, गोरक्षा समर्थक मौलवी, रिवाड़ी के जागीरदार राव युधिष्ठिर सिंह, सं० १९३६ का कुम्भ, पं० श्रद्धाराम फिल्लौरी, यन्त्रालय खोलने का विचार, बरेली में पादरी स्काट से शास्त्रार्थ, मुंशीराम का सौभाग्य, दानापुर के उत्साही भक्त, काशी में व्याख्यान पर प्रतिबन्ध, योग के चमत्कार व तमाशे, मुंशी इन्द्रमणि व वैदिक निधि; फरुखाबाद से

आदर्श गुरु

प्रज्ञाचक्षु—दण्डी स्वामी विरजानन्द जी

वैदिक धर्मोद्धारक

आर्यसमाज संस्थापक—महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि के उत्तराधिकारी

मुनिवर गुरुदत्त जी

धर्मवीर पं० लेखराम जी

धर्मवीर स्वामी श्रद्धानन्दजी

महात्मा हँसराज जी

देश भक्त ला० लाजपतराय

देवता स्वरूप भाई परमानन्द

महर्षि भक्त नेता और विद्वान

श्री स्वामी दर्शनानन्द जी

श्री पं० तुलसीराम स्वामी

श्री मास्टर आत्माराम जी

श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा

श्री आचार्य रामदेव जी

श्री पं० वंसीलाल जी

महर्षि-भक्त, आर्य-नरेश

महाराणा सज्जनसिंह उदयपुर

राजाधि० नाहरसिंह शाहपुरा

ठा० नरेन्द्रसिंह जोबनेर

महाराजा जसवंतसिंह जोधपुर

महाराजा प्रतापसिंह ईडर

रावराजा तेजसिंह वर्मा
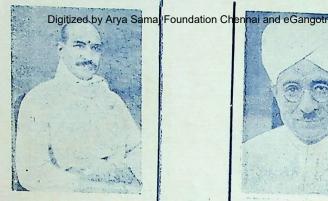
आर्य-नेता और पत्रकार

राजगुरु पं० धुरेन्द्रजी शास्त्री

महात्मा खुशहालचन्द्र जी

श्री म० कृष्णजी बी० ए०

श्री पं० नरदेवजी शास्त्री वेदतीर्थ

श्री ला० देशबन्धु जी

श्री पं० इन्द्रजी विद्यावाचस्पति

दिग्विजयी आर्य-विद्वान

श्री पं० रामचन्द्रजी देहलवी

श्री पं० मुरारीलालजी शर्मा

श्री पं० व्यासदेवजी शास्त्री

श्री पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार

श्री पं० भगवतदत्त जी B.A.

श्री पं० देवेन्द्रनाथजी शास्त्री

महर्षि-भक्त, आर्य नेता
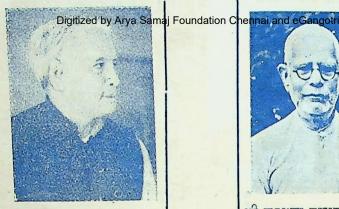
श्री पं॰ अलगूरायजी M.P.

श्री पं० गंगाप्रसाद जी जज

श्री नरदेवजी स्नातक M.P.

श्री महात्मा नारायण स्वामी

दीवान हरविलासजी शारदा

श्री पं० ठाकुरदत्त जी शर्मा

आर्य प्रतिनिधि सभाओं के अध्यक्ष आर्य नेता

श्री घनश्याम सिंहजी गुप्त

श्री पं० जीयालालजी अजमेर

श्री शिवशंकर जी गौड़ ग्वालियर

श्री मदनमोहन सेठ उत्तरप्रदेश

श्री डा० दुखनरामजी बिहार

श्री पं० नरेन्द्रजी हैदराबाद

आर्य-सन्यासी, नेता और दानवीर

श्री स्वामी सत्यानन्द जी

श्री बाबा गुरमुखसिंह जी

श्री ला० नारायणदत्त जी

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी

श्री ला० दीवानचन्द जी

श्री ओम्प्रकाश जी त्यागी

ओ३म्

महर्षि दयानन्द सरस्वती

जन्म और वैराग्य

(संवत् १८८१ से १६०३ तक)

विषय-प्रवेश

"आध्यात्मिक क्रियात्मकता की एक शक्ति-संपन्न मूर्ति" ये हैं वे दिव्य शब्द जिनमें देश के सुप्रसिद्ध महापुरुष स्वर्गीय अरविंद घोष ने ऋषि दयानन्द के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की थी। अपने अभिप्राय को अधिक स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा—"इन दो शब्दों का, जो कि हमारी भावनाओं के अनुसार एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, मिश्रण ही दयानन्द की उपयुक्त परिभाषा प्रतीत होती है। उसके व्यक्तित्व की व्याख्या की जा सकती है—एक मनुष्य, जिस की आत्मा में परमात्मा है, चर्मचक्षुओं में दिव्य तेज है और हाथों में इतनी शक्ति है कि जीवन-तत्त्व से अभीष्ट स्वरूप वाली मूर्ति गढ़ सके और कल्पना को क्रिया में परिणत कर सके।"

कोरे भोगवाद की भित्ति पर खड़ी की गई युरोपियन दार्शनिकता में अध्यात्म तत्त्व का सर्वथा अभाव है, *क्रमोन्नति* (Evolution) और *योग्यतम की जय* (Survival of the fittest) के सिद्धान्तों पर रची गई मनोभावना में त्याग-भावना की गन्ध भी नहीं आ सकती, दुर्बल और पीड़ित के मुँह का ग्रास छीन लेना इसका सबसे बड़ा

कर्मयोग है ! आज वैज्ञानिक जगत् निस्सीम कार्य-व्यग्र (Busy) अतएव कर्मशील दृष्टिगोचर होता है, परन्तु यह सारी व्यग्रता किसके लिये ? इसका एक मात्र उत्तर है, स्वार्थ के लिए ! धनपति निर्माण करता है, ऐसी योजनाओं का जिनसे उसका और लगेहाथ उस जैसे अन्य धनपतियों का धन दुगना और तिगुना हो जाय। श्रमिक सोचता है, वे उपाय जिनसे उसे और लगेहाथ उसकी योजना में सहायता देने वाले उसके साथियों को कम-से-कम परिश्रम से अधिक-से-अधिक अर्थ की प्राप्ति सम्भव हो। जाति, समाज और देशों के संगठन आज स्वार्थ-विशेषों के हित-साधन के शस्त्र बने हुए हैं। यह है विश्व की अध्यात्म-तत्व-हीन सक्रियता !

फिर निरा अध्यात्मवाद ! इसका तो कोई अस्तित्व ही नहीं ! कर्म का सर्वथा त्याग तो मनुष्य की प्रकृति के ही विपरीत है। जिस आत्मा में परमात्मा का आवास है, दूसरे शब्दों में जो आत्मा परमात्मा के प्रकाश को स्पष्ट अनुभव कर लेता है, वह भला निष्क्रिय हो जाय, यह तो और भी असम्भव है ! 'समाधि और ब्रह्मानन्द को छोड़ कर परमार्थ और स्वदेशोन्नति में योग देने वाले' संन्यासी दयानन्दका लक्ष्य भारत को, नहीं-नहीं विश्व भर को, सच्चे कर्मयोग का पाठ पढ़ाना था। इसी लिए और इसी आधार पर वह था आध्यात्मिकता और क्रियात्मकता का पुंज !

दयानन्द ऋषि थे—क्रांतदर्शी अर्थात् विश्वद्रष्टा। मानव जीवन का कौनसा वैयक्तिक अथवा सामाजिक पहलू रह गया जिसके सम्बन्ध में दयानन्द ने पथ-प्रदर्शन नहीं किया। शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास के सभी उपायों की मीमांसा उनके लेखों, व्याख्यानों और कार्यों में हम पाते हैं। राजनीति, धर्म-चर्चा, अर्थ-चर्चा उनके विज्ञापनों, पत्रों और पुस्तकों का विषय हैं। डाक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में 'महान् गुरु दयानन्द के मन ने जीवन के सब अंगों को प्रदीप्त कर

दिया।" महात्मा बुद्ध, आचार्य शङ्कर, और भी न जाने कितने महापुरुष भारत में जन्मे और अपने-अपने ढंग से मनुष्यों का पथप्रदर्शन कर गये। परन्तु मानव जीवन की सर्वांगीण उन्नति का जो मार्ग ऋषि दयानन्द ने प्रदर्शित किया उसका अपना महत्त्व है। जातीय जीवन का कौनसा सूत्र है, जिसका प्रतिपादन ऋषि ने नहीं किया। एक शास्त्र, एक देवता, एक भाषा और एक संस्कृति की प्रतिष्ठा कर वे भारतीय समाज को व्यक्तिगत और सामूहिक रूप में सर्वथा समर्थ देखना चाहते थे। यही नहीं भूमण्डल भर में ऐसी एकता और इसके फलस्वरूप सुख-शांति एवं समृद्धि का राज्य उनका सुनहला सपना था! आगे की पंक्तियों में इसी उदात्त चरित्र का संक्षिप्त विवरण भेंट किया गया है। पाठक देखेंगे कि हमने अपने इस अनुमान में थोड़ी सी भी अत्युक्ति से काम नहीं लिया है!

जन्म-स्थान, परिवार तथा शिक्षा

कारण के बिना कार्य नहीं होता, यह एक स्वयंसिद्ध सिद्धान्त है। फिर 'आकस्मिक' अर्थात् 'बिना कारण' शब्द का प्रयोग हम अनेक घटनाओं के साथ करते हैं और करते जायेंगे। इसका एकमात्र कारण यही है कि हम बहुत सी घटनाओं के कारण को जान नहीं पाते। महापुरुषों का महत्त्व निस्सन्देह उनकी प्रतिभा के कारण होता है परन्तु प्रतिभा के विकास के भी कुछ साधक और बाधक कारण होते ही हैं, इनके ज्ञान से जीवन-चरित्र के पाठक को जो प्रेरणा मिलती है, वह अमूल्य है। ऋषि-जीवन के बाल्य काल की घटनाओं का विस्तार से ज्ञान न होने के कारण पाठक उस प्रेरणा से अवश्य वंचित रह जाता है। ऋषिके माता-पिता, बचपन के गुरु, संगी-साथी, उनकी अपनी विचारधारा किसी के भी सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं है। "यदि मैं इष्ट मित्र, भाई, बन्धु को पहचान दूं या पत्र-व्यवहार करूं तो मुझे बड़ी उपाधि होगी। जिन उपाधियों से मैं छूट गया हूं वही

उपाधियां मेरे पीछे लग पड़ गी।" यह थी स्वामी दयानन्द के अपने शब्दों में प्रकट की हुई आशंका जिसके कारण उन्होंने कई बार अनेक दिशाओं से आग्रह होने पर भी अपना पूरा परिचय नहीं दिया। प्रयाग के पंडित शिवराम पांडे वैद्य के कथनानुसार उन्होंने यह स्वीकार किया था कि देहान्त-से पहले वे अपना पूर्ण विवरण किसी विश्वस्त व्यक्ति को दे जावेंगे। परन्तु मृत्यु से पहले घोर पीड़ा में रहने के कारण सम्भवतः उनके लिए ऐसा करना अशक्य रहा।

आर्यसमाज ने भी बहुत समय तक, इस दिशा में अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया। धर्मवीर पं० लेखराम ने कुछ प्रयत्न किया पर वह अधूरा रहा। ऋषि के भक्त श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय ने लगातार १५ वर्ष ऋषि-जीवन-घटनाओं की छान-बीन में व्यतीत किये। ऋषिके जन्म-स्थान, परिवार आदि के सम्बन्ध में उन्होंने राजसहायतासे जो परिणाम निकाला बाद में आर्यसमाज के प्रसिद्ध विद्वान् स्व० अध्यापक रामदेवजी ने भी उसकी पुष्टि की। इस सारी खोज का सार निम्न प्रकार है:—

स्थान—भारत-भूमि के पश्चिमी भाग में सौराष्ट्र नाम से एक पृथक् राज्य की स्थापना स्वतन्त्र भारत के नये विधान के अन्तर्गत की गई है। यह भूभाग काठियावाड़ के नाम से प्रख्यात चला आता है, और अंग्रेजी शासन में बम्बई प्रांत का एक भाग रहा है। अंग्रेजी शासन में रहते हुए भी यहां अनेक छोटे-छोटे देशीय राजाओं का शासन था। इन्हीं राज्यों में मोरवी एक राज्य है। इस मोरवी राज्य के टंकारा नगर का जीवापुर मुहल्ला महर्षि का जन्म स्थान है।

पिता और परिवार—आपके पिता जी का नाम कर्शनजी लालजी त्रिवाड़ी था। ये सामवेदी औदीच्य ब्राह्मण थे। कर्शनजी के पूर्वज अन्हलवाड़ा के राजा मूलराज सोलङ्की के राजकाल में उत्तर-भारत से आये और इसी लिए 'उदीच्य-सहस्र' नाम से विख्यात हुए,

ब्राह्मणों में से थे। उस समय उन्हें सिद्धपुर में बसाया गया था। टंकारा में आ बसने वाले कर्शनजी के पिता लालजी थे। कर्शनजी त्रिवाड़ी के घर संवत् १८८१ वि० (१८२४ ई०) में ज्येष्ठ पुत्र के रूप में उत्पन्न होने वाला मूलजी ही बाद में स्वनामधन्य दयानन्द बना। उनके बाल्यकाल का दूसरा नाम मूलशंकर भी था। दुलार में उन्हें दयाराम भी कहते थे।

कर्शनजी के दो और पुत्र हुए—वल्लभजी तथा एक अन्य। दो कन्याओं में से एक का देहांत मूलजी के सामने ही त्रिपूचिका रोग से हो गया था। वल्लभजी का देहांत उसके विवाह के दो वर्ष उपरांत हो गया। बड़ी पुत्री प्रेमाबाई का विवाह मंगलजी से हुआ–यही कर्शनजी का उत्तराधिकारी नियत हुआ। मंगलजी का पुत्र बोगा, बोगा का पुत्र कल्याणजी और कल्याणजी का पुत्र प्रभाशंकर अथवा पोपट रावल हुआ। प्रभाशंकर के पास सुरक्षित पुराने बहीखातों से इस लेख की पुष्टि की गई है।

इन बही-खातों से यह स्पष्ट है कि कर्शनजी अपने समय के अच्छे साहूकार थे—मुसलमान वणिज-व्यापारी मेमन लोगों में कई बार उनका एक समय कई-कई सहस्र रुपया लग जाता था। इसके अतिरिक्त वे विस्तृत भूसम्पत्ति के स्वामी थे। कर्शनजी की आय का तीसरा साधन उनका राजपदाधिकार था—वे मोरवी राज्य के एक जमेदार (जमादार) थे, जिसका पद आज कल के तहसीलदार के समान था। महर्षि के कथनानुसार जमादार का दूसरा कर्त्तव्य नगर के फौजदार का काम भी था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मूलजी का जन्म एक प्रतिष्ठित और सम्पन्न ब्राह्मण वंश में हुआ। यही कारण था कि घर से निकल कर अनेक वार धन और ऐश्वर्य-भोग का प्रलोभन मिलने पर भी दयानन्द

अपने व्रत से नहीं डिगे। ओखीमठ के महन्तको उन्होंने स्पष्ट ही उत्तर दिया था—'यदि मैं धन सम्पत्ति का इच्छुक होता तो पितृ-गृह को छोड़ कर कभी न आता, क्योंकि मेरे पिता की सम्पत्ति इस मठ की सारी सम्पत्ति से किसी प्रकार कम नहीं है।' कुछ भी हो, मूलजी का लालन पालन सुख-वैभव के साथ ही सम्पन्न हुआ होगा, इसमें रत्तीभर भी सन्देह नहीं।

माता-पिता का स्वभाव—माता के स्वभाव के सम्बन्ध में विशेष वृत्त नहीं मिलता। कर्शनजी की धर्म के प्रति दृढ़ आस्था थी। वे शिव के परम भक्त, तेजस्वी और कठोर स्वभाव के पुरुष थे। आठ वर्ष की आयु में मूलजी का यथाविधि उपनयन करने के बाद ही वे उसे शिव-पूजा और आवश्यक उपवास का उपदेश देने लगे थे। माता दयालु स्वभाव की थी। बालक के स्वास्थ्य की दृष्टि से उपवास से मूलजी को दूर ही रखती थी। इस बात को लेकर पति-पत्नी में कई वार कहासुनी तक की नौबत आ जाती थी। कर्शनजी की धर्मनिष्ठा का एक दूसरा प्रमाण डेमी नदी के तट पर उनका बनवाया हुआ कुबेरनाथ महादेव का मन्दिर है।

पारिवारिक प्रतिकूलता के कारण विरक्त होकर अन्त में कर्शनजी जामाता मंगलजी को सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नियत कर तीर्थ-यात्रा को निकले और उन्होंने तीर्थाटन में ही शेष जीवन व्यतीत किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पिता की दृढ़ता और माता की करुण-हृदयता ऋषि दयानन्द के चरित्र में अपना विशेष महत्व रखते हैं। अपनी समाधि का आनन्द छोड़कर परोपकार के लिए संसारी लोगों के दंदफंदों को देखने वाले दयानन्द ने हृदय माता से ही पाया था।

शिक्षा-दीक्षा—महर्षि दयानन्द की शिक्षा-दीक्षा के कई पहलू और कई दौर हैं। बालक मूलजी के रूप में उनकी शिक्षा का पहला

दौर ५ वर्ष की आयु से आरम्भ हुआ। 'माता-पिता और अन्य वयोवृद्ध अभिभावकवर्ग कुल की प्रथा के अनुसार उन्हें शिक्षा देने लगे और वे बहुत से श्लोक एवं मन्त्र कण्ठस्थ करने लगे।' इसके तीन वर्ष पश्चात् ८ वर्ष की आयु में मूलजी का उपनयन संस्कार हुआ। इस समय से सन्ध्योपासनादि कार्य भी नियमपूर्वक होने लगा। यजुर्वेद की संहिता का आरम्भ कराके उस में प्रथम रुद्राध्याय पढ़ाया गया। कर्शनजी की धर्मनिष्ठता के कारण दस वर्ष की आयु में ही मूलजी को पार्थिव पूजा (मिट्टी के लिंग का पूजन) का आदेश दिया गया। इस संलग्नता के होते हुए भी अपनी सुतीक्ष्ण बुद्धि और अद्भुत स्मरण-शक्ति के कारण मूलजी का अध्ययनकार्य "चौदहवें वर्ष में पदार्पण करने से पहले ही व्याकरण और शब्द रूपावली का अभ्यास करके और समस्त यजुर्वेद और अन्य वेदों के भी थोड़े-थोड़े भाग को कण्ठस्थ करके' एक प्रकार से समाप्त ही हो गया था। अध्ययनकार्य की समाप्ति का इतना ही अर्थ है कि कर्शनजी के वंश में साधारणतः जितनी शिक्षा आवश्यक समझी जाती थी, वह समाप्त होगई थी। कुल-प्रथा और पिता की इच्छानुसार अब मूलजी को अपनी जमेदारी का भार सम्भालते हुए गृहस्थ की तय्यारी करनी थी। परन्तु मूलजी का मन अभी विद्याध्ययन से भरा नहीं था। बन्धु-बान्धवों द्वारा आग्रह करने पर कर्शनजी ने १४ वें वर्ष में की गई वाग्दान की तय्यारी स्थगित तो कर दी, परन्तु विवाह एवं गृहस्थ के प्रति मूलजी की विरक्ति के समाचारों से वे चिन्तित रहे। इसी आधार पर काशी जाकर पढ़नेका मूलजी का आग्रह वे किसी प्रकार भी मानने को तय्यार न हुए।

दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ

मूर्तिपूजा में अविश्वास—वाग्दान की तय्यारी होना और फिर उसका स्थगित होना, काशी जाने के लिए एक ओर से आग्रह

होना तथा दूसरी ओर से निषेध होना, समझौते के रूप में अपनी जमींदारी के अन्तर्गत ही घर से तीन कोस दूर स्थित गांव में एक योग्य पंडित के पास रह कर आगे विद्याध्ययन की अनुमति प्राप्त करना परन्तु कुछ ही दिन में वापस बुलाया जाना—ये ऐसी घटनाएँ हैं जो पिता-पुत्र के मध्य बाहरी संघर्ष की सूचक थीं। पिता-पुत्र आमने-सामने कभी विरुद्ध मत प्रदर्शित करते प्रतीत नहीं हुए, परन्तु यह स्पष्ट है कि १३-१४ वर्ष की आयु से ही सांसारिक सुखभोग के प्रति पुत्र की अनास्था देख और कुटुम्बी जनों से गृहस्थाश्रम के प्रति पुत्र की अरुचि के समाचार सुन-सुनकर पिता उद्विग्न थे। बालक मूलजी के अन्तर्मन में इस समय कौनसा द्वन्द्व चल रहा था—इसका आभास दो महत्त्वपूर्ण घटनाओं से मिलता है।

पहली घटना उस समय की है कि जब कि मूलजी की आयु अभी तेरह वर्ष की थी। धर्म-निष्ठ पिता ने बालक को विधिपूर्वक शिवरात्रि का व्रत रखने का आदेश दिया। दयालुहृदया माता ने बालक की सुकुमारता और व्रत के काठिन्य का ध्यान रखते हुए पति के इस आदेश पर आपत्ति की। कर्शनजी की दृढ़ताके सम्मुख पत्नीको चुप रहना पड़ा। इसके अतिरिक्त कर्शनजी ने व्रत-माहात्म्य के रूप में कथाएँ सुनाकर बालक मूलजी की श्रद्धा को जाग्रत कर अपने आदेश की पूर्त्ति कराने का मार्ग सुगम बना लिया।

मूलजी ने विधिपूर्वक उपवास रखा और अन्य साथियों के साथ शहर से बाहर बने बड़े शिवालय में पूजा के लिये पहुँच गये। शिवरात्रि में चार पहर में चार बार शिवजी की पूजा का विधान है—इस अन्तर में श्रद्धालु दीक्षित पुजारी के लिए सो जाना निषिद्ध है। इस व्रत में दीक्षित होने का बालक मूलजी का पहला ही अवसर था। धर्म के प्रति आस्था उसकी पैतृक थी—एक बार व्रत में दीक्षित होकर उसे भंग कर देने का पाप करना उसकी बाल-बुद्धि के लिए अग्राह्य था। स्वभावतः

वे सावधान होकर जागरूक रहे; यहाँ तक कि पानी के छींटे दे-देकर तन्द्रा को दूर करते रहे। दूसरे पहर की पूजा समाप्त करके मूलजी ने देखा—मन्दिर के पुजारी तथा अन्य व्रतधारी मन्दिर के बाहर जाकर सो रहे हैं। धर्मनिष्ठ पिता भी इस व्रत को न निभा सके। और जब शिव चतुर्दशी की उस अन्धकारमयी निस्तब्धता में मूलजी अकेला जाग रहा था, 'तो एक घटना उपस्थित हुई। मन्दिर के बिल से बाहर निकल कर एक चूहा महादेव की पिण्डी के ऊपर दौड़ने लगा और बीच-बीच में महादेव पर जो अक्षत आदि चढ़ाये गये थे उन्हें, भक्षण करने लगा।' इस घटना को देखकर मूलजी के बालमन में जो ऊहापोह हुआ उसका सजीव चित्र अपनी स्मृति के आधार पर ऋषि दयानन्द ने निम्न शब्दों में उतारा है—"देखते-देखते मेरे मन में आया कि यह क्या है? जिस महादेव की शान्त पवित्र मूर्ति की कथा, जिस महादेव के प्रचण्ड पाशुपतास्त्र की कथा और जिस महादेव के विशाल वृषारोहण की कथा गतदिवस व्रत के वृत्तान्त में सुनी थी, क्या वह महादेव वास्तव में यही है?" "मैंने सोचा कि यदि यथार्थ में यह वही प्रबल प्रतापी, दुर्दान्तदैत्य-दलनकारी महादेव है तो यह अपने शरीर पर से इस निर्बल चूहे को क्यों विताड़ित नहीं कर सकता? जो चलते-फिरते हैं, खाते हैं, पीते हैं, सोते हैं, हाथ में त्रिशूल धारण करते हैं, डमरू बजाते हैं और मनुष्य को शाप दे सकते हैं क्या वह यही वृषारूढ़ देवता हैं जो मेरे सामने उपस्थित हैं?"

संदेह के झूले पर झटके खाता मूलजी का मन अशान्त एवं चञ्चल हो उठा। व्रत, उपवास आदि धर्म के बाह्य विधानों में उसे पहले ही विशेष आस्था नहीं थी, परन्तु प्रतीत होता है कि शिव चतुर्दशी के व्रत की कथाएँ सुनकर उसका मन बदला और माता के निषेध करने पर भी पिता के आदेशानुसार व्रत एवं उपवास करने का निश्चय किया एक बार किये निश्चय को पूरा पार लगाना दयानन्द के चरित्र का एक

महत्त्वपूर्ण विशेषता थी। यहां हम देखते हैं कि उसके धर्मनिष्ठ पिता और मन्दिर के पुजारी तक व्रत के निरन्तर जागरण-रूप जिस पहलू को नहीं निभा सके बालक मूलजी ने उसे सोत्साह निभाया—आस्था एवं श्रद्धा को क्रिया में परिणत करने का यह बीजमन्त्र मूलजी के चारित्र्य-रूप भित्ति की एक सुदृढ़ ईंट थी।

अपने सन्देह को वह देर तक न झेल सका। पिता की कठोरता, धर्म-निष्ठा और शिव भक्ति को वह भली भांति जानता था। धर्म के कठोर बाह्य-विधानों के प्रति अपनी अनास्थाको अपनी शारीरिक्त दुर्बलता का परिणाम मानना इस आयु में स्वाभाविक ही था। संभवतः इसी लिए उसने खुलकर कभी अपना विरोध प्रकट नहीं किया।

परन्तु आज उसका मन शांत न रह सका। निर्भयता से पिता को जगाकर उसने अपनी शंका उनके सम्मुख उपस्थित कर दी। मूलजी ने पूछा—"जो महादेव प्रबल पराक्रमी प्रसिद्ध है वह एक निर्बल चूहेको भी भगाने में असमर्थ क्यों है ?" कर्शनजी के सिर पर मानों वज्रपात हुआ, उनका-सा शिव-भक्त शिव-मन्दिर में शिव-पूजा की पवित्र रात्रि के समय अपने ही पुत्र के मुँह से ऐसे नास्तिकता भरे बचन सुने ! वे विचलित हो उठे पर बालक मूलजी की शंका का कोई उत्तर उनके पास न था। 'यह साक्षात् शिव नहीं, केवल उसकी मूर्ति है। कलिकाल में भला भगवान् के दर्शन कहां ?" इतना ही उत्तर वे दे सके। परन्तु मूलजी को अपनी आशंका का उत्तर नहीं मिला। जब सच्चा शिव सन्मुख नहीं है, तब उसकी मूर्ति की आराधना के लिए ये सब झंझट किस लिए ! सच्चे शिव के अभाव में ही तो इन शिव-भक्तों का मन वास्तविक पूजा-पाठ से पराङ्मुख है। व्रत के माहात्म्य को जानते और मानते हुए भी उनमें निद्रा आदि के शैथिल्य का भी कदाचित् यही कारण है। बालक मूलजी ने निश्चय कर लिया कि यथार्थ महादेव का दर्शन किये बिना मैं मूर्ति की पूजा नहीं करूंगा।

इस निश्चय के पश्चात् मूलजी सरीखे बालक का मन व्रत के निर्वाह में लगना असम्भव था; अब उसे नींद भी सताने लगी और भूख भी। पिता ने भी अविश्वासी पुत्र को अधिक देर तक रोकना उचित न समझा। रात्रि का समय था—घर वहां से प्रायः तीन कोस दूर था। अतएव एक सिपाही के साथ मूलजी को घर भेज दिया गया। परन्तु अब भी वे यह कहना न भूले कि आहार करके व्रत को भंग न करना।

रात्रि के तीसरे पहर पुत्र को घर आया देख माता ने समझा कि उसका सुकुमार बालक उपवास को न निभा सका। उसने कहा "मैंने व्रत लेने से पहले ही तुझसे कहा था व्रत मत ले, तू इस कठोरता को न सह सकेगा।" और मिष्टान्न आदि खाद्य पदार्थ मूलजी के सम्मुख उपस्थित हो गये। जब वह भोजन करने लगा तो पुत्र वत्सला माता ने उसे समझाया कि व्रत-भंग की बात सुन कर तुम्हारे पिता बहुत क्रुद्ध होंगे, दो दिन तक उनके सामने मत जाना। मूलजी भोजन करके ऐसी नींद सोया कि सवेरे आठ बजे उसकी नींद टूटी।

पिता को पुत्र की शंकाओं पर जो खेद था, भोजन करके व्रत-भंग करने के उसके दुस्साहस पर वह क्रोध में परिणत हो गया। संभव था कि वे उसे इस अपराध पर शारीरिक दण्ड भी दे बैठते परन्तु मूलजी की माता, चाचा आदि स्वजनों के बीच बचाव के कारण वे ऐसा न कर सके।

पिता अपनी धर्म-भक्ति के कारण इस व्रत-भंग को पुत्र का महान् अक्षम्य अपराध मानता था तो पुत्र भी अपने विश्वास पर अटल था—उसका तर्क था कि जब यह पाषाण-निर्मित मूर्तिमात्र है, साक्षात् महादेव नहीं, तो फिर इसकी पूजा कैसी? और इसके लिए उपवास, जागरण आदि कैसा? पुत्र की दृढ़ता के सन्मुख पिता को झुकना पड़ा।

स्वजनों ने भी यही सम्मति दी—अल्प-वयस्क होने से व्रत, उपवास आदि से उसकी शिक्षा में विघ्न होगा। कर्शनजी चुप तो रहे—परन्तु अपने पुत्र के इस व्यवहार का खेद उनके मन में बना रहा।

पाठक देखेंगे कि संवत् १८९४ (सन् १८३८) की शिवरात्रि की इस घटना ने न केवल मूलजी को मूर्ति पूजा का घोर विरोध बनाया अपितु आगे चल कर हजारों व लाखों मनुष्यों ने इस से प्रेरणा प्राप्त की। भारत भूमि से मूर्तिपूजा को जड़ मूल से नष्ट करने में इस छोटी सी घटना का भारी महत्व प्रमाणित हुआ।

वैराग्य का उदय—बालक मूल जी शिव-रात्रि की इस घटना को किसी प्रकार भूल न सके। उन्होंने अपने अध्ययन की गति को बढ़ा दिया। इसी लिए चौदहवें वर्ष में एक प्रकार से शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् भी उनकी तृप्ति नहीं हुई। जैसा कि हम लिख चुके हैं—उन्होंने अध्ययनार्थ काशी भी जाना चाहा परन्तु उनकी डांवाडोल मनोदशा को जानते हुए माता-पिता ने घर से दूर भेजना उचित न समझा। वे जान गये थे कि मूलजी गृहस्थ नहीं होना चाहता। यह ठीक भी था; बालक का मन इधर-उधर सच्चे शिव की खोज में जो था।

उक्त घटना के दो वर्ष पश्चात् मूलजी के जीवन में एक और महत्वपूर्ण घटना घटी। उस घटना का विवरण महर्षि के अपने शब्दों में इस प्रकार है:—

"एक दिन रात्रि के समय अपने एक बन्धु के यहां नृत्योत्सव देख रहा था। उस समय एक भृत्य ने घर से आकर एक विषम संवाद दिया। उसने कहा कि मेरी चौदह वर्ष की भगिनी सांघातिक रोग से रुग्ण हो गई है। भगिनी की चिकित्सा के लिए सारे ही उपायों का अवलम्बन किया गया, परन्तु दुःख है कि मेरे घर आने के दो घंटे के भीतर ही वह मृत्यु का ग्रास हो गई। उस भगिनी के वियोग का शोक

ही मेरे जीवन का प्रथम शोक था। उस शोक से हृदय में बड़ा आघात लगा। उस शोकप्रद घटना के समय जब आत्मीय स्वजनगण मेरे चारों ओर खड़े क्रन्दन-विलाप कर रहे थे, मैं पाषाण-निर्मित मूर्ति के समान अविचलित रह कर चिन्ता के स्रोत में डूबा हुआ था। मनुष्य जीवन की क्षण-भंगुरता की बात सोच कर अपने मन में कह रहा था कि जब पृथ्वी पर सबको ही इस प्रकार मरना है तो मैं भी एक दिन मरूंगा। परन्तु कोई ऐसा स्थान भी है वा नहीं, जहां जाकर मृत्यु-समय की यन्त्रणा से रक्षा हो सके और मुक्ति का उपाय मिल सके। अन्त में उसी स्थान में खड़े-खड़े उसी क्षण मैंने यह संकल्प किया कि मुझ-जैसा ईश्वर-अविश्वासी जिस प्रकार से अवर्णनीय मृत्यु के क्लेश से अपने आपको बचा सके ऐसे उपाय का चाहे जैसा भी हो अवलम्बन करने का प्रयत्न करूंगा। इसके अतिरिक्त उस चिन्ता और विचार के समय मैंने सुदृढ़ रूप से जान लिया कि बाहर की कठोरता वा किसी प्रकार का बाह्यानुष्ठान किसी अंश में भी धर्मलाभ के अनुकूल नहीं है और आत्मिक प्रयत्न की आवश्यकता भी मैं दिन-प्रतिदिन समझने लगा। परन्तु मैंने मन के ये भाव सर्वथा प्रच्छन्न रखे, अन्तःकरण की गूढ़ आकांक्षाओं के विषय में मैंने किसी को भी कोई बात जानने न दी।"

तीन वर्ष पश्चात् मूलजी के चाचा की मृत्यु हो गई। स्नेही चाचा की मृत्यु के समय मूलजी उनके पास ही बैठा था। उसे देखकर उनके आंसू बहने लगे। मूलजी को भी उस समय बहुत रोना आया। यहां तक कि रोते-रोते आंखें फूल गईं। इस घटना ने मूल जी की विचार-धारा को और अधिक प्रगति दी। वे लिखते हैं:—'चचा सुपण्डित और साधु चरित्र थे। वह मेरे जन्म से ही मुझ से बहुत स्नेह करते थे। उनके वियोग से मैं और भी अवसन्न हो गया। मैंने सोचा कि संसार की सारी वस्तुएं अस्थायी और चंचल हैं, तब ऐसी

कौनसी वस्तु है जिसके लिए संसार में रहकर सांसारिक लोगों के समान जीवन-यापन करूं ?"

वैराग्योदय की इन घटनाओं का स्वामीजी के अपने शब्दों में हमने इसलिये उल्लेख किया है कि अपने हृदय के आवेग व आन्दोलन का वर्णन उनके अपने शब्दों में पढ़ना पाठक का सही पथ-प्रदर्शक होगा। निश्चय ही ये शब्द बाद में लिखे गये अतएव १८-१९ वर्ष की आयु में उद्भूत उनके विचारों की शब्दावली भले ही कुछ भिन्न हो, परन्तु उनकी मनोदशा का यह सही चित्रण अवश्य है। मूलजी सरीखे वेद-वेदांग पठित, शिक्षित और देर से धर्म-ईश्वर सम्बन्धी समस्या को सुलझाने में व्यस्त मन पर इन घटनाओं का प्रभाव होना स्वाभाविक था। और उस प्रभाव का हम उन्हीं के शब्दों में ऊपर वर्णन कर चुके हैं।

परन्तु क्या ये और ऐसी सैकड़ों घटनाएं प्रतिदिन इस संसार में देखने में नहीं आतीं ? और शमशान-वैराग्य किस के मन में उदित नहीं होता ? फिर भी संसार चलता है। प्रत्येक व्यक्ति शायद लाखों में से दो-चार छोड़ कर शेष सबके सब उसी लीक पर चले चलते हैं और चलते रहेंगे। धर्मराज युधिष्ठिर ने आश्चर्यों की गणना में वास्तविक आश्चर्य इसी बात को माना—प्रतिदिन प्राणियों को मरता देखकर भी बचेखुचे अपना जीवन निश्चित समझते हैं, इससे बढ़कर अचम्भा भला क्या हो सकता है ! ऐसा न हो तो फिर इसको संसार ही कौन कहे ? यह साधारण पुरुषों का चलन। महा पुरुषों का मार्ग, उनकी सरणि भिन्न है। वे क्रिया के धनी होते हैं। साधारण पुरुष जानते-बूझते सोचते-समझते भी बड़े-बड़े संकल्प धारण करके भी उन्हें कार्य में परिणत नहीं करते—यही उनका साधारणत्व है। असाधारण पुरुषों में सत्व-बल होता है उसके आधार पर वे अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत कर देते हैं—यही उनकी असाधारणता है— उनका महा-

पुरुषत्व है। कविकुल गुरु कालिदास ने ठीक ही कहा है:—"*क्रिया सिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे।*" घटनाएं किसके सामने नहीं होतीं और फिर नाना महा पुरुषों को भिन्न-भिन्न घटनाएं क्यों प्रभावित करती हैं ? इन प्रश्नों का एक मात्र उत्तर यही है कि पुरुष का सत्व— उसकी प्रतिभा और संस्कार— उसे साधारण राजमार्ग से हटाकर विशिष्ट पथ का अनुगामी बनाते हैं।

गृहत्याग

इन घटनाओं के वर्णन के पश्चात् हम पुनः अपने कथा-सूत्र पर आते हैं। चाचा की मृत्यु के पश्चात् मूलजी सांसारिक सम्बन्ध तोड़ने को व्यग्र हो उठा। अमर होने का उपाय मित्रों और पंडितों ने उसे योगाभ्यास बताया था। परन्तु उसने अपने विचारों को सर्वथा गुप्त रखा। अन्त में उसने विद्याध्ययन के लिए काशी जाने का आग्रह किया और स्पष्ट कहा कि विवाह करने की उसकी अभी इच्छा नहीं है। मां-बाप भला इस परिस्थिति में इस आग्रह को कैसे मानते ! जैसा कि ऊपर संकेत दिया जा चुका है, समझौते के रूप में अपनी जिमीन्दारी में टंकारा से तीन कोस पर स्थित गांव के एक प्रसिद्ध पण्डित के पास मूलजी का जाना निश्चित हुआ। परन्तु वहाँ मूलजी अपना विचार गुप्त न रख सका। पंडित के द्वारा पुत्र का गृहस्थ से विरक्त रहने का विचार जान कर उसे तत्काल ही वापस बुला लिया गया। मूल जी का यह गुरु-गृहवास कुछ ही दिनों में समाप्त हो गया।

मूलजी ने टंकारा वापस आकर देखा—विवाह की सारी तय्यारी हो चुकी है; एक महीने पश्चात् विवाह हो जाने की पूरी सम्भावना उसकी आंखों के सामने नाचने लगी। अमृत के इच्छुक मूलजी की आंखों के सामने अन्धेरा छा गया। परन्तु उसने धैर्य को हाथ से नहीं जाने दिया। अपने लक्ष्य के प्रति पूर्णतया सजग होकर उसने अपना

अन्तिम निश्चय कर लिया। इधर विवाह की खुशियों और साज-सज्जाओं में सारे कुटुम्ब तल्लीन थे कि एक दिन सन्ध्या समय बिना किसीसे कुछ कहे मूलजी ने दृढ़ संकल्प कर संवत् १९०३ (सन् १८४६) में सदा के लिए गृहत्याग दिया। यह सम्भवतः ज्येष्ठ का महीना था और मूलजी की आयु का २२ वां वर्ष।

सिद्धपुर के मेले तक—ज्येष्ठ से सिद्धपुर के कार्तिक मेले तक लगभग ६ मास का समय होता है। मूलजी ने बन्धु-बान्धवों और पठित शास्त्रों के आधार पर मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का उपाय योगाभ्यास को समझा था। इसलिए घर से निकलते ही योगियों की बस्ती का मार्ग पकड़ना उसके लिए स्वाभाविक था। इससे उसकी अपने लक्ष्य के प्रति एकाग्र भक्ति-भावना भी प्रकट होती है। जन-श्रुति के अनुसार शैला में उन दिनों लाला भक्त नाम से प्रसिद्ध योगी रहते थे। अतः मूल जी ने सबसे पहले शैला का मार्ग पकड़ा।

महर्षि के अपने लेखानुसार यह रात मूलजी ने टंकारा से 'चार कोस दूर पर एक ग्राम में बिताई; अगले दिन बहुत सवेरे उठकर थोड़ी दूर पर एक हनुमान मन्दिर में पहुंचे और कुछ देर आराम किया।" बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय की खोज के अनुसार यह मंदिर टंकारा से पश्चिम की ओर स्थित बड़े रामपुर का मंदिर था। इन्हीं की खोज का यह निष्कर्ष है कि मूलजी ने टंकारा से पश्चिम का मार्ग इस लिए पकड़ा कि पूर्व अथवा दक्षिण के मार्ग काशी जाने के मार्ग थे। उसके स्वजनों को यह अनुमान होना स्वभाविक था कि कहीं काशी न गया हो। अतएव उस दिशा में उसके ढूँढे जाने की अधिक सम्भावना थी। अस्तु

रामपुर छोड़ कर वह शैला की ओर चला। मार्ग में एक स्थान पर ब्राह्मण भिक्षुओं के दल से भेंट हो गई। इन्होंने बालक मूलजी के पहने

हुए बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण दान में मांग लिए। उन्होंने सम्भवतः यह भी कहा कि ऐसे बहुमूल्य वस्त्राभूषण के लोभ में फँसे रहकर योगभ्यास नहीं हो सकेगा। इनका दान कर, चिन्ता से भी मुक्त हो, मूलजी अपने लक्ष्य की ओर बढ़ चला। "मार्ग में जगह-जगह साधुओं व भिखारी ब्राह्मणों के मुख से लाला भक्त की सुख्याति सुनता हुआ" मूलजी शीघ्र ही शैला पहुंच गया। यहां लाला भक्त से योगाभ्यास भी सीखना आरम्भ किया। महर्षि ने स्वयं बताया है—'एक दिन रात्रि के समय एक वृक्ष के नीचे लाला भक्त के पास बैठा हुआ मैं योगाभ्यास कर रहा था कि वृक्ष पर बैठे हुए पक्षियों (सम्भवतः उल्लू) के विकट शब्द को सुनकर मैं चित्त में डरने लगा और उसी क्षण मठ के भीतर चला गया।" इस वर्णन से भी यह ज्ञात होता है कि मूलजी का पालन-पोषण वस्तुतः वैभवपूर्ण परिस्थितियों में हुआ था और कठोर जीवन उसके लिए अभी नया ही था।

मूलजी से "शुद्ध चैतन्य"—लालाभक्त के पास मूलजी को अपनी अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति नहीं हुई। शैला में उसका परिचय एक ब्रह्मचारी से हुआ उसके परामर्श से ब्रह्मचर्य आश्रम में दीक्षित हो वह मूलजी से 'शुद्ध चैतन्य' बना। अब शुद्ध चैतन्य के रूप में वह कोटगंगारा की ओर चले। यह स्थान अहमदाबाद के निकट स्थित तथा सन्तसाधुओं के समागम के लिए प्रसिद्ध था। यहां शुद्ध चैतन्य ने "वैरागियों की एक बड़ी संख्या देखी। वैरागियों के दल में उस ने एक राज-कन्या भी देखी"। शुद्धचैतन्य ने यहां तीन महीने काटे। इस समय उसके वस्त्रों में रेशमी किनारी की एक धोती थी। वैरागी इस पर उसका परिहास किया करते थे। अतएव उन्हें छोड़ कर शुद्ध चैतन्य ने साधारण वस्त्र पहने। इस समय उसके पास केवल तीन रुपये रह गये थे।

यहीं पर शुद्ध चैतन्य ने सुना कि सिद्धपुर में मेला होने वाला है। इस मेले में बहुत से साधु-संन्यासियों का सत्संग मिलने और अपने अभीप्सित (योगिजन की प्राप्ति) में सफलता की आशा लेकर शुद्ध चैतन्य सिद्धपुर की ओर चला। मार्ग में एक अपने गवांढ के निवासी, परिवार से सुपरिचित वैरागी वेशधारी पुरुष से भेंट हो गई। इस भेंट से शुद्ध चैतन्य का माथा ठनका। वैरागी ने मूलजी को शुद्ध चैतन्य के रूप में देख कर उसकी बहुत भर्त्सना की। और उसके पिता को इसके सिद्धपुर मेले में जाने की सूचना दे दी।

प्रतीत होता है कि वैरागी के अभिप्राय को भलीभांति जानकर भी शुद्ध चैतन्यने सिद्धपुर में एकत्रित साधु-संन्यासियों के सत्संग के पुण्य अवसर को हाथ से खो देना उचित नहीं समझा। सहस्रों व्यक्तियों से भरी हुई इस मेला-भूमि में शुद्ध चैतन्य भी अपनी खोज में तन्मय हो गया। जहां-कहीं उन्हें किसी साधु-महात्मा के दर्शन हो जाते वहीं विचार विमर्श में लीन हो जाता। इस प्रकार सुख एवं उमंग भरे कई दिन बीत गये। परन्तु उस का यह तीर्थ-सुख बहुत दिनों तक नहीं टिक सका।

पिता की कैद में : फिर उससे मुक्ति—एक दिन प्रातःकाल नीलकण्ठ के मन्दिर के पास महर्षि साधुसंगति में बैठे हुए थे कि कर्शन जी दल-बल समेत उनके सामने आकर खड़े हो गये। पीले और लाल रंग के ब्रह्मचारिवेश में मूलजी को देख पिता के क्रोध का पारा चढ़ना स्वाभाविक था। परन्तु यहां उनकी सहज बुद्धि ने सहारा दिया अथवा युवजनोचित चापल्य और भय से आविष्ट वे कुछ बनावटी बात बना गये। कुछ भी हो, शुद्ध चैतन्य ने उनकी क्रोधाग्नि को शान्त करने के लिये अपने किये पर पश्चाताप भी प्रकट कर दिया और कहा—किसी

दुष्ट के बहकाने में उनसे भूल हुई, वे घर लौटने की इच्छा कर ही रहे थे—आदि। परन्तु पिता ने क्रोध के आवेश में शुद्ध चैतन्य का ब्रह्मचारिवेश फाड़ डाला, तूम्बी छीनकर फैंक दी, गालियों की बौछार की और मातृहन्ता बताया। स्वयं घर लौटने की इच्छा प्रकट करने पर भी मूलजी को सिपाहियों के पहरे में रखा गया।

कर्शनजी के इस क्रोध ने मूलजी को पहले से अधिक दृढ़संकल्प बना दिया। "मैं गृहस्थ होकर नहीं रहूँगा, जिस उपाय से सम्भव हुआ योगाभ्यास करके मृत्यु-यन्त्रणा से मुक्ति प्राप्त करूंगा—" ऐसा उन का संकल्प दृढ़तर हो गया। "पिता के संकल्प की भांति मेरा संकल्प भी अविचलित था"—इस धारणा के आधार पर सिपाहियों के हाथ से निकलने के सुयोग की वे प्रतीक्षा में रहे। चौथी रात्रि को तीन बजे रक्षकगण शुद्ध चैतन्य को सोया जान सो गये। उन्हें उस भीषण बवंडर का भला क्या ज्ञान जो शुद्ध चैतन्य के मन में उथल-पुथल मचा रहा था! शुद्ध चैतन्य की आंखों में नींद के चिह्न भी नहीं थे। शौच जाने के बहाने उसने लोटा हाथ में उठा लिया। कुछ दूर बैठे बैठे चलता रहा और फिर दौड़ लगाने लगा। भागने का समाचार विदित होने से पहले ही वह एक मील दूर निकल गया। यहां मन्दिर को घेरे एक वृक्ष की शाखाओं में मन्दिर के गुम्बद के सहारे बैठकर दिन व्यतीत किया। उसने देखा कि सिपाही मन्दिर में भी पहुँचे। परन्तु बाहर-भीतर ढूंढ कर सिपाही निराश हो वापिस लौट गये। सांझ को उतर कर शुद्ध चैतन्य ने लौटने का मार्ग पकड़ा और घूम फिरकर अहमदाबाद पहुँचा। अहमदाबाद से बड़ौदा की ओर प्रस्थान किया। सिद्धपुर में पिता-पुत्र की यह भेंट उनकी अन्तिम भेंट सिद्ध हुई। इस के पश्चात् प्रयाग में उनके ग्राम के कुछ लोग महर्षि से मिले थे परन्तु महर्षि ने उन्हें पहचान कर भी अपना परिचय नहीं दिया।

यहां हमने देखा कि दयानन्द की निष्ठा योगमार्ग में कितनी सुदृढ़ थी। यौवन अवस्था और सांसारिक सुख भोग—दोनों को स्वेच्छा से लात मारकर मृत्यु से छुटकारा पाने के लिए उनकी छटपटाहट कितनी स्पष्ट है। इसके लिए वे बैठे-बैठे सरके, फिर एक मील तक दौड़े और रात्रि के शेष समय तथा पूरे दिनभर—लगभग १५ घंटे तक लगातार एक आसन से और निराहार बैठे रहे। फिर रात्रि के अन्धकार में यात्रा आरंभ की। संसार की गति कितनी विचित्र है! भक्त को कल्याण साधना के लिए किस प्रकार चोरों की भांति लुकना-छिपना पड़ा! अथवा ठीक ही कहा है:—*"या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी।"*

अमृत की खोज में

(सं० १६०३ से सं० १६१७ तक)

नर्मदा तट पर आठ वर्ष

पिता की कैद से छूटकर शुद्ध चैतन्य ने अमृत की खोज का अपना काम निश्चिन्तता से आरम्भ कर दिया। पौराणिक कथाओं के देवासुरों ने समुद्रमन्थन करके अनेक रत्नों की प्राप्ति की थी, उनमें अमृत भी एक रत्न था। शुद्ध चैतन्य का काम उन देवासुरों के कार्य से कहीं अधिक कठिन था। भारत में योगियों की सत्ता जनश्रुति के आधार पर सत्य थी, परन्तु सैकड़ों योजनों में विस्तृत भारत भू के किस कोने में उत्तुंग गिरि शृङ्गों में से किसी एक की गह्वर गुफा में, नर्मदा और गंगा के तटवर्ती बीहड़ वन प्रान्तर की किस अज्ञात कुटी में—कहां, किस समय, और कैसे अमर पद का मन्त्र देने वाले योगी गुरु का दर्शन अथवा चरण-रज स्पर्श मिलेगा, मिलेगा भी या योंही जीवन विगलित हो जायगा—यह सब कुछ अज्ञान के बादलों की ओट में छिपा था। इस अमृत के स्थिति-स्थान की मात्रा, आकार, प्रकार किसी का भी कुछ अता व पता न था : इस अमृत के महासमुद्र की इयत्ता, परिमाण अथवा विस्तार की परिधि ही निश्चित नहीं थी।

और साधन थे केवलमात्र ब्रह्मचर्य-परिपुष्ट संयमी शरीर, एकमात्र लक्ष्य प्राप्ति में ओतप्रोत मन और दृढ़ ईश्वर-विश्वास। ये साधन सब

कुछ होते हुए भी कुछ न थे। और कुछ भी न कहलाते हुए सब कुछ थे। सं० १९०३ से सं० १९१७-१८ (सन् १८४६ से सन् १८६०-६१) तक हम महर्षि दयानन्द को इसी समुद्रमन्थन में संलग्न देखते हैं।

नवीन वेदांती के रूप में—सिद्धपुर से लौटते हुए शुद्ध चैतन्य ने अहमदाबाद का मार्ग पकड़ा और अहमदाबाद से वे बड़ौदा पहुँचे। बड़ौदा में चेतनमठ के ब्रह्मानन्द आदि ब्रह्मचारियों और संन्यासियों से नवीन वेदान्त पर आलोचना होती रही। इस आलोचना के परिणाम स्वरूप शुद्ध चैतन्य अपने आपको ब्रह्म मानने लगे। बड़ौदा के अंचल में ही एक दिन सच्चिदानन्द परमहंस नामक तत्त्वज्ञानी से नर्मदा तीरवर्ती चाणोद-कर्णाली की पवित्र भूमि और वहां के निवासी साधु संन्यासियों का वृत्त विदित हुआ।

चाणोद-कर्णाली दो पृथक्-पृथक् स्थान हैं। दोनों नर्मदा के तट पर स्थित हैं। ऊरी, नर्मदा और गुप्त रूप से सरस्वती का संगम स्थान होने से इसे दक्षिण का प्रयाग भी मानने हैं। चाणोद छोटा सा नगर, रेलवे स्टेशन और बड़ौदा राज्य की तहसील भी है। कर्णाली एक कोलाहल शून्य एवं रमणीक स्थान है। इस कारण साधु, संन्यासी, विरक्त परमहंस आदि का यह अपूर्व संगम-स्थान है।

यहां के जीवन के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द का विवरण इस प्रकार है:—"वहां मैंने कई पंडितों ब्रह्मचारियों, दीक्षित और चिदाश्रम प्रभृति संन्यासियों और कई योग-दीक्षित साधु महात्माओं के दर्शन किये। इससे पहले योग-दीक्षित साधुओं को अभी नहीं देखा था। कई दिन के शास्त्रालाप के पीछे मैं एक दिन परमानन्द परमहंस के पास गया और उनसे शिक्षा देने की प्रार्थना की। कुछ महीने में ही मैंने वेदान्तसार और वेदान्त परिभाषा के ग्रन्थों को पढ़ा।

'दयानन्द' नाम ग्रहण—चाणोद-कर्णाली के इस प्रवास

में ही शुद्ध चैतन्य, दयानन्द बने। ब्रह्मचारी होने से साधु-सम्प्रदाय की नियम व्यवस्था के अनुसार उन्हें स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाना पड़ता था। साथ ही नाम व वेश परिवर्तन से उन्हें यह भी लाभ था कि सगे-सम्बन्धियों द्वारा पहचान किये जाने की भीति से छुटकारा मिलता। इस इच्छा से उन्होंने गुरु-निर्वाचन का कार्य आरम्भ किया। आपने अपने मित्र एक दक्षिणी पण्डित से अनुरोध किया कि चाणोद में रहने वाले योग-दीक्षित साधुओं के अग्रणी चिदाश्रम स्वामी से संन्यास की दीक्षा दिला दें। परन्तु आयु कम होने से चिदाश्रम स्वामी ने दीक्षा देना अस्वीकृत कर दिया। इस घटना के कई मास पीछे दक्षिण दिशा से आये दो विरक्त पुरुषों से शुद्ध चैतन्य की भेंट हुई। "ये विरक्त पुरुष शुद्ध चैतन्य के निवास स्थान से प्रायः एक कोस पर जंगल में एक टूटे मकान में ठहरे थे—इनमें से एक ब्रह्मचारी और दूसरा संन्यासी था। शुद्ध चैतन्य के मित्र दक्षिणी पण्डित और नवागन्तुक संन्यासी पूर्णानन्द में परस्पर ब्रह्म विद्या की खूब आलोचना हुई। ये लोग श्रृङ्गवेरी मठ से द्वारका को जा रहे थे। दक्षिणी पण्डित के अनुरोध पर पूर्णानन्द ने शुद्ध चैतन्य को संन्यास की दीक्षा दी और दयानन्द सरस्वती नाम रखा।

यहां यह उल्लेख योग्य है कि पूर्णानन्द स्वामी को भी आयु की अल्पता के आधार पर दीक्षा देने में हिचकिचाहट थी। दूसरी आनाकानी उनकी शुद्ध चैतन्य के गुजराती होने पर थी। पूर्णानन्द महाराष्ट्र थे, गुजराती, गुजराती से ही दीक्षा लिया करता था। भारतवासियों में पार्थक्य भाव इतना घर कर चुका था कि संन्यासी भी अनेक वर्गों में बंटे हुए थे।

दूसरी बात यह ध्यान रखने योग्य है कि संन्यासी के साथ ही 'दयानन्द सरस्वती' ने अपना दण्ड गुरु को अर्पित कर दिया था। इसका प्रयोजन उन्हीं के शब्दों में यह है कि 'नहीं तो दण्ड-सम्बन्धी

कुछ क्रियाओं में व्याप्त रहना पड़ता और इससे ज्ञानालोचना में विघ्न पड़ता।

योगशिक्षा— चाणोद से दयानन्द व्यासाश्रम गये—यहां योगानन्द नामी एक योग-विशारद से योग की शिक्षा प्राप्त की, वे कुछ योग-क्रियाओं का अनुष्ठान भी करने लगे। यहां से दयानन्द छिनूर गये—यहां कृष्ण शास्त्री पण्डित से कुछ दिन व्याकरण पढ़कर वापस चाणोद आये। इस वार के प्रवास में उनका शिवानन्द गिरि और ज्वालानन्द पुरी नाम के दो योगियों से साक्षात्कार हुआ। यहां और एक मास पश्चात् अहमदाबाद के दुग्धेश्वर मन्दिर में इनसे स्वामीजी ने योग की क्रियागत (क्रियात्मक) शिक्षा प्राप्त की।

परन्तु दयानन्द की जिज्ञासा का घट अभी तो समूचा ही रिक्त था! उन्हें ज्ञात हुआ कि 'अब तक जो शिक्षा मैंने पाई है उससे भी उच्चतर शक्ति-सम्पन्न और योग विद्या में निपुणतर योगिगण विद्यमान हैं और उनमें से कोई कोई राजपूताना के आबू पहाड़ पर रहते हैं।' बस फिर क्या था। अविलम्ब दुग्धेश्वर के मन्दिर से प्रस्थान कर आबू जा पहुंचे। आबूकी खोज में भवानी गिरि से भेंट हुई और उनसे कुछ शिक्षा ग्रहण की। परन्तु तृप्ति नहीं हुई। तब नर्मदा तट को छोड़ कर उत्तराखण्ड की ओर चल पड़े।

उत्तराखण्ड की यात्रा

हरिद्वार का पहला कुम्भ-- अहमदाबाद से आबू तक के इस प्रवास में स्वामी दयानन्द के आठ वर्ष बीत गये। उत्तराखण्ड की यात्रा मनमें धारण कर वे संवत् १९११ के आरम्भ में आबू से हरिद्वार पहुँचे। यहां इस समय सं० १९१२(सन् १८५५)के कुम्भ मेलेकी धूमधाम थी। भीड़-भाड़के कारण हरकी पौड़ीतो दयानन्द जैसे यतिके लिए अनु-

कूल ही न थी, वे गङ्गापार चण्डी मन्दिर के जंगल में रहे। आपने इस मेले के सम्बन्ध में लिखा—"मैंने हरिद्वार का वह पहला कुम्भ देखा था। मैंने यह कल्पना भी नहीं की थी कि कुम्भ के मेले में इतने त्यागी और तत्वदर्शी पुरुष आवेंगे।" मेले की समाप्ति पर महर्षि ऋषिकेश जाकर योगाभ्यास करते रहे।

तान्त्रिक पंडित के भोजन का अनुभव—ऋषिकेश से महर्षि दयानन्द एक ब्रह्मचारी और दो पहाड़ी साधुओं के साथ टिहरी चले गये। उन दिनों यह स्थान भी विद्वत्-समागम के लिए प्रसिद्ध था। यहां आप को एक नया अनुभव हुआ। टिहरी की घटना का पूरा विवरण उनके ही शब्दों में निम्न प्रकार है:—"टिहरी स्थान को मैंने केवल साधुओं और राज-पण्डितों से पूर्ण देखा। एक दिन एक राज-पण्डित दोपहर के भोजन के लिये निमन्त्रण दे गया। निर्दिष्ट समय पर उसके घर से एक मनुष्य आया। मैं पूर्वोक्त ब्रह्मचारी को साथ लेकर उस मनुष्य के साथ साथ चला गया। परन्तु उसके घर में घुसते ही मैंने सबसे पहले देखा कि एक ब्राह्मण कुछ मांस काट रहा है। उसके पश्चात् कुछ और आगे बढ़ कर मैंने देखा कि कुछ पंडित एक मांशराशि, मारे हुए पशु के शिर और दूसरे अंग-प्रत्यंग समन्वित मांश-राशि को आगे धरे हुए बैठे हैं। निमन्त्रणकर्ता के आदर-अभ्यर्थना करने पर भी मैं वहां न ठहर सका और इस आशंका से कि मेरे वहां रहने से उनके उस पवित्र कार्य (?) में व्याघात न पड़े मैं एक बात भी न कह कर गृहस्वामी से विदा होकर अपने स्थान को लौट आया। कुछ मिनट पीछे ही वह मांसाहारी पंडित मेरे पास आकर उपस्थित हो गया और मुझ से विनय-पूर्वक यह कह कर कि मेरे भोजन के लिये ही उनसे वह मांस प्रस्तुत किया था मुझे दुबारा अपने घर ले जाने के लिये ही बार बार अनुरोध करने लगा। मैंने तब उससे स्पष्ट शब्दों में

कह दिया—"आप मांसाहारी हैं और मैं एक घोर निरामिष भोजी हूँ; मांस खाना तो दूर रहा, मांस के दर्शन से मुझे उद्रेक हो जाता है। ऐसी दशा में मेरे लिए मांस तैयार करना सर्वथा वृथा था। यदि मुझे भोजन कराने की बहुत ही इच्छा है तो कुछ फल-अन्नादि भेज सकते हैं, मैं उसे ब्रह्मचारी द्वारा पकवा कर यहीं भोजन कर लूंगा।" यह सुन कर निमन्त्रणकर्ता दुःखी सा हो गया और पीछे उसने कुछ फल अन्नादि भेज कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

तन्त्र ग्रन्थों का अवलोकन—यहां रहते हुए उक्त राज-पंडित की सहायता से स्वामी जी को तन्त्र ग्रन्थ देखने का पहली बार अवसर मिला। इनको देखकर स्वामी जी को अनुभव हुआ उसका वर्णन उन्होंने निम्न शब्दों में, किया—"जब मैंने देखा कि तन्त्र ग्रंथों में मातृ-गमन, कन्या-गमन, भगिनी-गमन, चाण्डाली-गमन और चमारी-गमन तक का समर्थन किया गया है, नंगी स्त्रियों की पूजा करना लिखा है, सब प्राणियों के मांसाहार, मत्स्याहार और मद्यपान आदि क्रियाओं का ग्रहण किया गया है; एक शब्द में, पंचमकारान्तर्गत सारे पैशाचिक अनुष्ठानों की ब्राह्मण से लेकर चमार तक के लिए व्यवस्था की गई है और इससे बढ़ कर इन पैशाचिक अनुष्ठानों को अनन्त मुक्ति का उपाय बताया गया है तो यह सब देख कर मेरे विस्मय की सीमा नहीं रही। इन तन्त्र ग्रन्थों को पढ़ कर मैंने उज्ज्वल रूप से जान लिया कि ऐसे जघन्य ग्रन्थों को लिख कर धूर्त लोगों ने उन्हें धर्म शास्त्र के नाम पर प्रचारित किया है।

जंगम सम्प्रदाय से परिचय—टिहरी से महर्षि श्रीनगर गये और वहां से चलकर केदारघाट में रहे। यहां गङ्गागिरि नामक एक निर्मलचरित्र साधु का संसर्ग रहा यह साधु दिन के समय अपने पहाड़ से कभी नीचे नहीं उतरता था। इसके साथ इनकी अच्छी घनिष्ठता

हो गई और दो मास केदार घाट रहे। वर्षाकाल यहीं बीता। फिर रुद्रप्रयाग, अगस्तमुनि के आश्रम आदि होते हुए शिवपुरी नामक पहाड़ की चोटी पर पहुँचे। शीतकाल यहीं व्यतीत हुआ। ब्रह्मचारी और दोनों साधु शिवपुरी पहुँचने से पहले ही कहीं चल दिये। फिर अकेले घूमते हुए गुप्तकाशी, गौरी कुण्ड, भीम-गुफा, त्रियुगी नारायण आदि मन्दिरों को देखते हुए केदारघाट आ पहुँचे। यहाँ प्राकृतिक रमणीयता ने उन्हें बहुत आकृष्ट किया। इसके अतिरिक्त यहां के पण्डे-पुजारी जंगम सम्प्रदाय के थे—इनसे मेल जोल बढ़ा कर स्वामी जी इस सम्प्रदाय से भलीभांति परिचित होगये।

महा-प्रास्थानिक पर्व ?

यहां हम स्वामी जी के जीवन की एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना पर पहुँचते हैं। यह उनके जीवन में क्रान्ति की सूचक घटना है। कहते हैं कि पाण्डवों ने सारे सम्बन्धियों से वियुक्त होकर सशरीर स्वर्ग की यात्रा की थी और वे हिमालय की ओर इस यात्रा के लिए गये थे। बाबू देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय लिखित स्वामी जी के जीवन चरित में इस स्थल पर एक टिप्पणी में पाण्डवों के जीवन की इस गाथा की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि एक विश्वस्त व्यक्ति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जब स्वामी जी को सच्चे योगियों की खोज में निराशा ही हाथ लगी तो उन्होंने स्थिर किया कि वे अब इस मर्त्यभूमि से सम्बन्ध न रखेंगे। परन्तु अलखनन्दा के उत्पत्ति स्थान पर पहुँच कर जब कोई मार्ग नहीं पाया और चारों ओर पर्वतमाला घिरी देखी तो अगत्या वापस आगये।

एकाकी भ्रमण—यह घटना शीतकाल के समाप्ति के दिनों की है। केदारनाथ में रह कर उनका मत हुआ कि इन पर्वतमालाओं का परिभ्रमण कर योगिजनों की अवस्थिति का पता लगाऊं। वे

लिखते हैं:--'परन्तु दारुण शीत और पर्वत के भीषण मार्गों की भीषण विघ्न-बाधाओं का चिन्तन कर मैंने पहले पहाड़ी लोगों से इस विषय में पूछ-ताछ की। जिस पहाड़ी से भी मैंने पूछा उसी ने मुझे महामूर्ख और महाभ्रान्त समझा। इस प्रकार बीस दिन तक व्यर्थ घूमघाम कर मैं निराश होगया। अन्त में मैंने अकेले ही घूमना आरम्भ किया। मेरे साथी ब्रह्मचारी और दोनों साधु दुरन्त शीतातिशय के कारण वापस चल गये थे।"

परन्तु उत्साहहीन होने पर भी अमृतमन्थन चालू रहा। वे तुंग-नाथ के शिखर पर पहुँचे। यहां से उतरते समय मार्ग भूल कर बीहड़ जंगल में फंस गये। मार्ग बहुत ही संकीर्ण, ढलवां उतराई का था। घास-फूस पकड़ते, घिसटते, रेंगते हुए बिना मार्ग चल रहे थे। रात्रि और भीषण शीत सिर पर था। भूख लग रही थी। किसी प्रकार पहाड़ की तलहटी में पहुँचकर पता लगाया कि वहां से ओखीमठ को मार्ग गया है।

ओखीमठ में रात्रि बिताई। पहले दिन की यन्त्रणा को योगी-अन्वेषण की लालसा भुला रही थी। प्रातः काल ही ओखीमठ से चल पड़े। परन्तु इधर उधर घूमने फिरने से भी कुछ हाथ न लगा। फिर ओखीमठ लौट आए। यहां भी आपको कुछ अनुभव हुए। उनका वर्णन स्वामी जी ने इस प्रकार किया है:—

ओखीमठ के अनुभव—"ओखीमठ प्रसिद्ध मठ है और धन-सम्पत्ति से सम्पन्न है। वह धर्म तथा साधुओंके आडम्बर से पूर्ण है।" यहां रह कर उन्होंने देखा कि मठवासी साधुता और वैराग्य के नाम पर कैसी कृत्रिमता और ढोंग का आश्रय लिए हुए हैं। महन्त तो आप पर इतना प्रसन्न हुआ कि शिष्य बनाकर सारी सम्पत्ति का स्वामी बनने का प्रलोभन आपके सामने फैला दिया। इस पर दयानन्द कैसे चुप

रह सकते थे—वे गर्ज उठे—"इस मठ की जितनी सम्पत्ति है उस से मेरे पिता की सम्पत्ति भी किसी अंश में कम न थी।"—और फिर उनका वहां ठहरना असम्भव था।

यहाँ से महर्षि जोशीमठ गये। यहां उनका संग कुछ सच्चे संन्यासियों से हुआ जो दक्षिणी महाराष्ट्र थे। इनमें अनेक योगी और विद्वान् महन्त थे। इन से वार्तालाप में महर्षि को योगविद्या-सम्बन्धी कई नई बातें ज्ञात हुईं। यहां से वे बदरीनारायण के मन्दिर चले गये। बदरीनारायण के प्रधान पण्डा को रावल जी कहते हैं। रावल जी से स्वामी जी प्रायः धर्म चर्चा करते रहे। अन्त में एक दिन उन्होंने अपना वास्तविक उद्देश्य—योगियों की खोज सम्बन्धी यत्न—भी रावल जी के सम्मुख प्रकट कर दिया।

बद्रीनाथ के मन्दिर से ऐतिहासिक प्रस्थान—रावलजी ने पहले तो उन्हें इस सम्बन्ध में निराश ही कर दिया। पर फिर यह कह दिया कि 'मैंने सुना है कि कभी कभी वे मन्दिर में दर्शन करने आ जाया करते हैं।' अस्तु कुछ भी हो, चाहे तो इस आशासूत्र से अथवा जैसा कि हम पहले लिख आये हैं, निराश होकर ही दयानन्द ने अपने लक्ष्य पर जीवन की आहुति देने का निश्चय कर बदरीनाथ के मन्दिर से प्रस्थान किया। इस पवित्र यात्रा का वर्णन उन्हीं की लेखनी से पढ़िये।

महर्षि के स्वलिखित आत्मचरित के सम्पादक ('थियो सोफिस्ट' अंग्रेजी पत्र के सम्पादक) ने इस विवरण पर अपना मत प्रकाशित करते हुए लिखा था कि स्वामीजी की इस संकटपूर्ण यात्रा में उनकी प्राणरक्षा किसी महात्मा ने की होगी जिसका नाम स्वामीजी ने प्रकाशित नहीं किया—उसे वह अपने मित्रों को बता देते हैं। अस्तु। घटना का महर्षि द्वारा प्रतिपादित वर्णन इस प्रकार है:—

अलखनन्दा पर—"एक दिन सूर्य के निकलते ही मैं बदरीनाथ के मन्दिर से बाहर निकला और पर्वत के नीचे नीचे चलने लगा। अन्त में अलखनन्दा के तट पर जा पहुँचा। अलखनन्दा के उस पार बड़ा माना ग्राम दिखाई देने लगा, परन्तु उस पार जाने की मेरी इच्छा न थी। मैंने पहाड़ के नीचे नीचे जो मार्ग जाता था उसे पकड़ लिया और बन की ओर अलखनन्दा के साथ साथ चलने लगा। पर्वत और पर्वत के नीचे का मार्ग सब ही मोटे बर्फ से ढका हुआ था। इस कारण मैंने बहुत ही कष्ट से उस दुर्गम मार्ग का अतिक्रमण किया और जो स्थान अलखनन्दा का उत्पत्ति-स्थान प्रसिद्ध है वहां पहुँच गया। वहां मैंने देखा कि मेरे चारों ओर ही गगनभेदी पर्वतमाला खड़ी है। एक ओर तो वह स्थान मेरे लिए सर्वथा अपरिचित था और दूसरी ओर चारों ओर से पहाड़ों से घिरा हुआ था। अस्तु, किसी ओर भी मार्ग का कुछ पता न पाकर कुछ देर तक तो मैं इतस्ततः घूमता रहा फिर कुछ आगे बढ़ कर मैंने देखा कि मार्ग तो क्या-मार्ग का चिन्ह तक नहीं था। इस हेतु मैं थोड़ी देर तक तो किंकर्तव्य-विमूढ़ सा रहा, पीछे नदी के दूसरे तट पर जाकर मार्ग का अनुसन्धान करना ही कर्त्तव्य स्थिर किया।"

"उस समय मैं साधारण और पतला कपड़ा पहने हुए था और वहां का शीत बहुत ही अधिक और असह्य था। इस पर भूख और प्यास से शरीर क्लान्त हो रहा था। भूख मिटाने के लिए मैंने बर्फ का एक टुकड़ा गले से नीचे उतारा, परन्तु उससे कुछ भी न हुआ। इसके कुछ क्षण पश्चात् ही अलखनन्दा को पार करने के लिए मैं जल में उतरा। उसका जल किसी स्थान में बहुत ही गहरा था और कहीं बहुत थोड़ा था। परन्तु जहां थोड़ा भी था वहाँ भी एक हाथ से कम न था। अलखनन्दा का पाठ आठ-दस हाथ होगा। उसकी तली छोटे-छोटे बर्फ के टुकड़ों से भरी हुई थी। उन तीक्ष्णधारा वाले बर्फ के

टुकड़ों के संघर्षण से मेरे नंगे तलवे क्षत-विक्षत होगये थे। क्षत-विक्षत स्थानों से लोहू चूना आरम्भ होगया था। इधर मैं लहू के बहने से कातर होरहा था. उधर निदारुण शीत से हतचेतन होरहा था। मेरे पैर डगमगाने लगे। कई बार उस बर्फमाला के ऊपर जा पड़ने का उपक्रम हुआ। उस समय मेरे मन में यह विचार उठने लगा कि सम्भवतः अलखनन्दा के इस असहनीय शीतल गर्भ में गिर कर बर्फ में जमकर मेरा जीवन जायगा। वास्तव में मेरा शरीर इतना अवसन्न और शक्ति-हीन हो गया था कि यदि मैं अलखनन्दा की उस सुदूर विस्तृत बर्फ-माला के ऊपर एक बार भी गिर जाता तो फिर मुझे उस पर से शरीर को उठाना अत्यन्त कठिन हो जाता। अस्तु !"

कष्ट की चरम सीमा—"अतीव कष्ट और उत्कृष्ट परिश्रम से मैं नदी के दूसरे पार पहुँचा। उस समय मेरी अवस्था मृतवत् थी। मैंने जल्दी जल्दी अपने शरीर पर से कपड़े उतारे और उनकी पट्टी बनाकर तलवों से लेकर घुटनों तक बांधी। मैं उस समय बहुत ही थका हुआ था और भूख से विह्वल था। मुझ में चलने की शक्ति न थी। दूसरे की सहायता की आशा से मैं ललचाती दृष्टि से चारों ओर देखने लगा। परन्तु उस मनुष्यशून्य स्थान में कौन सहायता करेगा और सहायता कहां से आवेगी इस विषय में मैं कुछ नहीं जानता था। जब मैंने अन्तिम बार देखा तो कुछ दूर मुझे दो मनुष्य आते हुए दिखाई दिये। थोड़ी देर पीछे ही उन दोनों पहाड़ी मनुष्यों ने मेरे पास आकर नमस्कार किया। उन्होंने कहा कि हमारे घर चलने से भोजन-सामग्री मिल सकेगी और यह कहकर उन्होंने मुझ से अपने साथ उनके घर चलने को कहा। उन्होंने मेरे क्लेश और विपत्ति की कहानी सुनकर मुझे सद्-पत (सिद्ध-पत तीर्थ) नामक स्थान पर भी पहुँचा देने का वचन दिया। परन्तु मुझ में चलने का सामर्थ्य न था, इसलिए मैंने उनका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। उनके बारम्बार अनुरोध करने पर भी

मैं अपने निश्चय पर दृढ़ रहा। उनके अधिक आग्रह करने पर मैंने कहा कि मैं यहां मर भले ही जाऊं परन्तु उनके अनुरोध को स्वीकार नहीं कर सकता।"

ज्ञानोदय—"मरने की बात सोचकर मैं मन में कुछ घबराया, परन्तु तुरन्त ही मैंने सोचा कि यह क्या है ? मैं मरने की क्यों इच्छा करता हूँ ? क्या ज्ञानानुशीलन में रत रह कर ही जीवन का अन्त करना मेरे लिए श्रेष्ठ कर्तव्य नहीं है ?"

"देखते-देखते ही वह दोनों पहाड़ी मनुष्य पर्वतमाला में कहीं अदृश्य हो गये। कुछ देर विश्राम करने के पश्चात् मैंने वापस जाने का उद्योग किया और वसुधारा नामक पवित्र स्नानतीर्थ में कुछ देर ठहर कर और माना ग्राम (दयानन्द प्रकाश के अनुसार 'मग्रम') पार्श्व में लेकर मैं चलने लगा और रात्रि के आठ बजे बद्रीनारायण के मन्दिर में पहुँच गया।"

बद्रीनारायण के मन्दिर में रावल जी तथा अन्य निवासी उनके लिए चिन्तित हो रहे थे। उनके लौटने पर योगिजनों की खोज की उनकी इस अनोखी यात्रा का वृतान्त सुन सबको अचम्भा हुआ। पश्चात् भोजन और रात्रि भर विश्राम के पश्चात् उनका चित्त स्वस्थ हुआ। सवेरे ही सबसे सम्मानपूर्वक विदा होकर उन्होंने वहां से प्रस्थान किया और रामपुर की ओर चल पड़े। सायंकाल एक योगी के स्थान पर पहुँचे। तत्कालीन ऋषियों और साधु सन्तों में उच्च कोटि का ऋषि होने की प्रसिद्धि इस योगी को प्राप्त थी। स्वामीजी रात को यहीं रहे। इसके संग से स्वामी जी को ज्ञानोपार्जन के अपने संकल्प को पुष्टि मिली। प्रातःकाल उठते ही वे फिर चल पड़े। मार्ग में जंगलों और पर्वतों को पार करते हुए चिल्किया (चिलका ?) घाटी उतर कर रामपुर आए। यहां सदाचार और आध्यात्मिक जीवन के लिए प्रसिद्ध

रामगिरि नाम के महात्मा निवास करते थे। महर्षि ने उन्हीं के पास अपना आसन लगाया। इस साधु में एक विलक्षणता थी। यह रात को सोता नहीं था—अपने आप से बातें करता रहता था और रोने भी लगता था। महर्षि लिखते हैं—'रामगिरि के इस अद्भुत अभ्यास का कारण कुछ ज्ञात न हो सका; रामगिरि योगक्रियायें भी जानते थे—पर यह कोई योगक्रिया नहीं थी।'' कुछ हो—स्वामीजी ऐसे योग के प्रार्थी नहीं थे।

यहाँ से चलकर महर्षि काशीपुर होते हुए द्रोणसागर पहुँचे। संवत् १९१२ का शीतकाल यहीं बीता। 'श्रीमद्दयानन्द प्रकाश' के अनुसार यहां भी महर्षि के मन में यह विचार उठा था कि हिमालय के हिमभाग में जाकर देहत्याग करना चाहिए। परन्तु दूसरे ही क्षण ज्ञान-संचय की भावना प्रबल हो उठी। उत्तराखण्ड से नीचे उतरने का विचार ही निश्चित रहा और वे द्रोणासागर से मुरादाबाद पहुँचे।

इस अद्भुत भ्रमण वृत्तान्त से स्पष्ट है कि महर्षि मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए योगिजनों को खोज के जिस पवित्र-संकल्प को लेकर घर से निकले। उन्होंने घर से निकल कर नर्मदा के जंगलों, आबू पर्वत और अन्त में हिमालय के उत्तुंग शिखरों एवं कन्दराओं तक में अपार कष्ट की कोई चिन्ता न करते हुए उस संकल्प की पूर्ति का पूरा प्रयत्न किया। परन्तु अन्त में इस विषय में निराशा ही हाथ लगी। धर्म के नाम पर फैले हुए पाखण्डजाल को ही उन्होंने जहाँ-तहां फैला देखा। इसका एकमात्र उपाय अधिकाधिक ज्ञान संचय ही उन्होंने निश्चित किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि योगाभ्यास से विमलात्मा, महर्षि दयानन्द हिमालय में समाधि लेने के विचार को सर्वथा त्याग कर किसी ज्ञानी गुरु की खोज में पर्वतभूमि छोड़कर मैदानों में विचरण करने लगे।

उत्तराखण्ड से उतर कर

नाड़ीचक्र परीक्षा—उत्तराखण्ड से उतर कर महर्षि मुरादाबाद और सम्भल होते हुए गढ़मुक्तेश्वर पहुँचे। इस समय आपके पास अन्य धर्म-ग्रंथों के अतिरिक्त हठयोगप्रदीपिका, योगबीज, शिवसन्ध्या और केसराणीसंगीत नामक पुस्तकें भी थीं। इनका वे प्रायः पाठ करते थे। इनमें नाड़ीचक्र का वर्णन था। इनकी सत्यता की जांच के लिये वे बहुत उत्सुक थे। एक दिन सुअवसर हाथ लग ही गया। महर्षि लिखते हैं:—"एक दिन दैवयोग से मैंने देखा कि एक शव गंगा के प्रवाह में बहा जा रहा है। अपने साथ की पुस्तकों को मैंने एक ओर रखा और अपने पहने वस्त्रों को उतार कर मैं नदी में उतर पड़ा और शव को खींचकर तट पर ले आया। मैंने एक बड़ी छुरी ली और जिन ग्रंथों में नाड़ीचक्र का वर्णन था उन्हें खोलकर सामने रखा और खूब सावधानता के साथ शव की चीर-फाड़ आरम्भ की। पहले मैंने हृत्पिण्ड बाहर निकाल कर परीक्षा की। उसके पीछे नाभिदेश से पंजर पर्यन्त शव को काट डाला। मस्तक और गले के किसी-किसी भाग को चीर कर देखा और साथ-साथ उनको ग्रन्थों के वर्णन से मिला कर देखने का यत्न करता रहा। परन्तु जब मैंने देखा कि कुछ भी नहीं मिलता; चीरे हुए शव-देह के किसी अंश वा अङ्ग में भी ग्रन्थों में वर्णन किए हुए नाड़ीचक्र का कोई भी चिन्ह नहीं पाया तब मैंने उसी चीरे हुए शव-देह के साथ ही उन ग्रंथों को भी टुकड़े-टुकड़े करके नदी के प्रवाह में फैंक दिया।"

यह वर्णन महर्षि की सत्य की उत्कट पिपासा और असत्य के प्रति ज्वलन्त घृणा का प्रमाण है। इस घटना के पश्चात् उन्हें निश्चय हो गया कि सांख्य, पातंजल, आर्षग्रन्थों के अतिरिक्त योग-विषयक अन्य ग्रन्थ भ्रमोत्पादक हैं। संवत् १९१२ के अन्त में फर्रुखाबाद

और श्रृंगीरामपुर होते हुए महर्षि कानपुर पहुँचे। संवत् १९१३ के पहले चार महीने कानपुर और इलाहाबाद में बीते। भाद्रपद मास के आरम्भ में आप मिर्जापुर पहुँचे और वहां विन्ध्याचलेश्वर मन्दिर के समीप अथवा अशोलजी के मन्दिर में रहे। एक मास पश्चात् काशी पहुँचे। यहां १२ दिन तक वरुणा और गंगा संगम के समीप भूमानन्द स्वामी की गुफा नाम से प्रसिद्ध स्थान पर रहे। यहां पर आपका काशी के प्रसिद्ध पण्डितों–काकाराम और राजाराम आदि—से वार्तालाप होता रहा।

अन्ध विश्वास से मनोरंजन—पर्यटन में महर्षि को देश की अनपढ़ जनता के अन्ध विश्वास के अनेक प्रमाण मिलते थे। इनसे अनेक बार उनका मनोरंजन भी होता था। ऐसी ही एक घटना उस समय हुई जबकि वे काशी से निकल कर चाण्डालगढ़ की ओर गये। यहां दुर्गाकोहर मन्दिर में दस दिन बिता कर आगे चले। मार्ग में एक ग्राम के निकट शिवालय में रात्रि बिताने के विचार से टिके। इन दिनों वे योगाभ्यास करते थे। चावल खाना छोड़ रखा था; केवल दुग्धपान करते थे। परन्तु पानी को लाग से बचने के लिए बताई भांग का सेवन करने लगे थे। ऋषि लिखते हैं—'दौर्भाग्यवश वहां मुझे एक बड़ा दोष लग गया अर्थात् भांग पीने का स्वभाव हो गया था।' इस रात्रि में भांग के नशे में ही उन्होंने स्वप्न में शिव पार्वती को अपने विवाह के विषय में चिन्तित देखा। इस स्वप्न से वे बहुत विरक्त हुए। उस समय वर्षा हो रही थी। वे बरामदे में चले गये। वहां वृष देवता नन्दी की प्रतिमूर्ति के भीतर आदमी को छुपा देखा। महर्षि ने उसकी ओर ज्योंही हाथ फैलाया कि वह भाग गया। अब आप स्वयं उस वृषमूर्ति में बैठ गये और उन्हें नींद आगई। प्रातःकाल एक बुढ़िया आई। उसने वृष देवता की पूजा की और फिर

दही-गुड़ आदि लेकर आई। उसने सम्भवतः महर्षि को ही वृष देवता समझा। और वे भूखे थे ही, खागये। दही के प्रभाव से भांग का नशा उतर गया और शरीर स्वस्थ हो गया।

नर्मदा के स्रोत की ओर—प्रतीत होता है कि अभी तक, वन-गिरि-गह्वरों में एकान्तवासी सच्चे योगियों के मिलने की आशा की एक क्षीण किरण ऋषि के मानस-पटल पर चमक रही थो। इसीलिए नर्मदा-स्रोत के समीपवर्ती प्रदेश में पहुँचते ही वे पुनः नये उत्साह और नई उमंग से भर जाते हैं। चाण्डालगढ़ (चुनार में उन्होंने संकल्प धारण किया कि अब नर्मदा के स्रोत तक पहुँचना चाहिए।

रीछ को भगाया—इस यात्रा के लिए न तो उन्होंने किसी से सम्मति ली न पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता समझी। यदि पूछते, तो बहुत सम्भव है, अल्पधी-अल्पशक्ति जनसमुदाय इस आशंकाभरे संकल्प से विचलित करने का यत्न करता! किसी से भी मार्ग न पूछने की प्रतिज्ञा ही करके वे अपने स्थान से दक्षिण की ओर चल पड़े। कुछ देर पीछे एक घने जंगल में पहुँच गये। इस घने जंगल में कहीं-कहीं पर्ण कुटियां थीं। इन दिनों महाराज का मुख्य भोजन दुग्ध ही था। एक कुटी में दूध पीकर वे आगे बढ़े। आधा मील चलते ही देखा मार्ग अत्यन्त संकीर्ण होता जा रहा है। शीघ्र ही जंगल का विकट भाग आ पहुँचा। यहां खड़े होकर सोच विचार कर ही रहे थे कि सामने से मुंह फैलाए मृत्युरूप बहुत बड़ा काला रीछ आता दिखाई दिया; वह गरज कर इनके सामने पिछली टांगों के बल खड़ा होगया परन्तु बाल-ब्रह्मचारी ने अपनी चेतना न खोई। चुपचाप रह कर धीरे-धीरे अपनी लाठी उसके मुंह पर मारने को उठाई। रीछ, न जाने, क्या समझकर पीछे हटकर भाग गया। रीछ की भयंकर गर्जना सुनकर कुटिया के निवासी दौड़कर आये और महाराज को सुरक्षित जान आश्वस्त हुए।

उन्होंने महर्षि से बार-बार आग्रह कर घने विकट जंगल में आगे बढ़ने से रोका। परन्तु फिर उन का निश्चय अटल जान वे एक मोटा लम्बा डंडा अनुरोध पूर्वक देकर वापस लौट गये।

कंटीली झाड़ियों में—महर्षि ने, सम्भवतः उनका मान रखने के लिए (?) वह दंड उस समय तो ले लिया परन्तु अगले ही क्षण उसे फेंक कर अपने आत्म-विश्वास और परमेश्वर के प्रति पूर्ण आस्था—दोनों का सुन्दर परिचय दिया। अपने आपको सम्पूर्णतः परमपिता की छत्रछाया में अनुभव करते, वे बीहड़ जंगल पर विजय प्राप्त करने के लिए आगे बढ़े। महाराज स्वयं वर्णन करते हुए लिखते हैं :—"फूल के असंख्य वृक्षों और अनेक प्रकार की कंटीली झाड़ियों से वह जंगल भरा हुआ था। किसी ओर भी उसमें से निकलने का उपाय (मार्ग ?) नहीं था। वहां से छुटकारा पाना मेरे लिए कठिन होगया। कुछ दूर तक बैठे-बैठे, कुछ दूर तक घुटनियों के बल चलना पड़ा। थोड़ी देर के पीछे यद्यपि मैंने इस नई विपत्ति से अपने आपको मुक्त कर लिया, परन्तु मेरे वस्त्र धज्जी-धज्जी होगये। कांटे लगने से मेरे शरीर के बहुत से स्थानों से रक्त की धारा बहने लगी।" थकावट और भूख से अवसन्न शरीर, पृथ्वी पर अन्धकार का फैलता प्रभुत्व, वन-मार्ग एकान्त विषम, परन्तु प्रभु का निश्चय अटल; वे चलते ही रहे, विश्राम और सोच विचार के लिए वहां अवसर ही नहीं था। अब वे चारों ओर पर्वतों से घिरे स्थान पर पहुँच गये। इसके एक ओर एक छोटीसी नदी और उसपर चर रहीं बकरियां दीख पड़ीं। ऋषि ने यहीं नदी तट पर एक वृक्ष के नीचे आसन लगा लिया और रात बिताने का उपक्रम किया। यहीं कुछ देर में स्त्री-पुरुषों के एक झुंड ने श्रद्धाभक्ति पूर्वक आपको घेर लिया। आपका समाचार और इच्छाएं पूछीं। सन्ध्योपासना के पश्चात् इनके प्रतिनिधियों ने कुटिया में चलने का अनुरोध किया, परन्तु अस्वीकार करने पर आपको वहीं आपका खाद्य-पेय दूध यथेष्ट

मात्रा में लाकर दिया। रातभर उनके दो आदमी ऋषि की रक्षा पर रहे। प्रातःकाल सन्ध्योपासना के पश्चात् वे फिर आगे बढ़े। महर्षि लिखते हैं—"मैंने उनका निमंत्रण इसलिए अस्वीकार किया कि वे सब *मूर्तिपूजक थे।*"

बाबू देवेन्द्रनाथ मुकर्जी ने इस परिभ्रमण-काल की दो ऐसी घटनाओं का भी उल्लेख किया है जो शिवराम पांडे की साक्षी से लिखी गई हैं। इनके अनुसार पर्यटन के समय एक बार एक भक्त के आग्रह पर वे उसके घर गये—वहां महर्षि की लाठी देखकर उसकी पुत्रवधू का भूत उतर गया और फिर उसे भूत ने कभी तंग न किया। इसी प्रकार दूसरी घटना में महर्षि महाराज का एक ऐसे घर में रात्रिवास लिखा है जो भूतवास के नाम से कुप्रसिद्ध था। आप पर भूत का कोई वश नहीं चला। कहा गया है कि इसी घर में एक और व्यक्ति ठहरा था जिसे रात को किसी ने हठात् पकड़ लिया परन्तु आप के वहां पहुँचते ही उसका छुटकारा होगया। इन घटनाओं का संकेत स्पष्ट है: आत्मविश्वासी के सम्मुख भूत-प्रेत का क्या अस्तित्व! अज्ञजन ही इस अन्धविश्वास के शिकार होते हैं।

तीन वर्ष कहां रहे ?—इस जंगल में पहुँचने की जो घटना हमने ऊपर लिखी है वह लगभग वि०सं०१९१२ सन्१८५६ई०)के कार्तिक अथवा मार्गशीर्ष महीने की है। इससे आगे महर्षि का स्वरचित जीवन-चरित्र समाप्त हो जाता है। पं० लेखरामजी का लेख है कि नर्मदा का स्रोत देखने के पश्चात् ऋषि तीन वर्ष तक नर्मदा तट पर भ्रमण करते रहे। देवेन्द्र बाबू इसे कल्पनामात्र कहते हैं; परन्तु उनका अपना कथन भी उतना ही अप्रामाणिक है जितना पं० लेखरामजी का लेख प्रमाण-शून्य। कुछ भी हो, अनुमान तो यही है कि वे नर्मदा-स्रोत के दर्शन के जिस शुभ संकल्प को लेकर चले थे—भयंकर आपदाओं में

भी, सबसे डराये जाने पर भी जिसका परित्याग उन्होंने नहीं किया, उसमें सफलता प्राप्त करके ही वापस लौटे होंगे। हम इसके तीन वर्ष पश्चात् संवत् १६१६–१७ (सन् १८५६-६० ई०) में मथुरा-स्थित विरजानन्द-कुटी में उनके दर्शन करते हैं।

*एक नया अनुमान—'हमारा राजस्थान' के लेखक ने सन् १६५० में एक नया अनुमान करने की पहल की है। जैसा कि हम ऊपर लिख आये हैं, संवत् १६१२ के आरम्भ से सन् १६१२ के अन्त तक स्वामीजी गंगोत्तरी से फरुखाबाद तक घूमे। इसके पश्चात् १६१३ के आरम्भ से लगभग सात-आठ महीने तक वे कानपुर व इलाहाबाद के मध्य घूमते रहे। यही समय सन् १८५७ की क्रान्ति की तय्यारी का समय था। इसके पश्चात् तीन वर्ष स्वामीजी के जीवन के वे वर्ष हैं, जहां पहुँचकर उनकी अपनी लेखनी अपने विषय में मौन हो जाती है, उनकी स्वलिखित जीवनी का यहां आकर एकाएक अन्त हो जाता है। क्रान्ति-युद्ध के इन तीन वर्षों में ऋषि ने क्या किया इसका कुछ परिचय नहीं

---

* यहां एक महत्पूर्ण भ्रम को समझ लेना आवश्यक है। स्वामी जी के जीवन चरित्र के सभी लेखक सं० १६१२ के कुम्भ में स्वामी जी की उपस्थिति मानते हैं। और यह भी स्वीकार करते हैं कि सं० १६१२ का शीतकाल उन्होंने गङ्गोत्तरी से उतर कर द्रोण-सागर में बिताया। इस अवस्था में यदि उत्तराखण्ड की यात्रा केवल ६ महीने में समाप्त की हो तब तो उत्तराखण्ड की यात्रा का आरम्भ सं० १६१२ के कुम्भ के पश्चात् से माना जा सकता है। देवेन्द्र बाबू ने यह यात्रा पौने दो वर्ष में समाप्त की है। 'दयानन्द प्रकाश' में भी दो शीत ऋतुओं का उत्तराखण्ड में यापन लिखा है। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि १६११ के आरम्भ में ही वे उत्तरा-खण्ड में पहुंचे और बीच में १६१२ के कुम्भ पर हरिद्वार में भी गये।

मिलता। 'हमारा राजस्थान' का लेखक लिखता है—"उसकी जीवन घटनाओं के संक्षिप्त विवरण से यह बात स्पष्ट हो ही सकती है कि क्रान्ति की तय्यारियां आदि से उसे निकट परिचय करने का अवसर अवश्य मिला। यह बात मान लेना आसान नहीं कि दयानन्द के सदृश भावना-प्रवण और चेतनावान हृदय और मस्तिष्क का युवक उसके प्रभाव से अछूता बचा रहा हो और उस युद्ध की सफलता-विफलता की उसपर कोई प्रतिक्रिया न हुई हो।" महर्षि दयानन्द की सुधार-योजना व्यक्ति, समाज और राष्ट्र पर इस प्रकार छाई हुई है कि हम उस युग की प्रत्येक क्रांति में उसकी प्रेरणा का सूत्र ढूंढ़कर प्रसन्न एवं गर्वित होना चाहते हैं। उक्त पंक्तियों का श्रेय किसी ऐसी भावना को दिया जा सकता है। कुछ भी हो, क्रांति में महर्षि का कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष भाग रहा हो या न रहा हो; यह स्पष्ट है कि महर्षि के जीवन का लक्ष्यभूत आन्दोलन तो अभी उसके मस्तिष्क के गर्भ में ही लीन था। उसके अंकुरित होने व फूलने-फलने में अभी कुछ देरी थी

अपनी खोज का हो ध्यान—श्री पं० भगवद्दत्तजी द्वारा सम्पादित ऋषि दयानन्द के स्वलिखित जीवन चरित्र के चतुर्थ संस्करण के पृष्ठ २७ पर लिखा है :—"१९१३—अगले पांच मास में कानपुर व प्रयाग के मध्यवर्ती अनेक प्रसिद्ध स्थान मैंने देखे। भाद्रपद के प्रारम्भ में मिर्जापुर पहुंचा। वहां एक मास से अधिक विन्ध्याचल अशोलजी के मन्दिर में निवास किया। असौज के आरम्भ में काशी पहुँचा। वहां मैं उस गुफा में ठहरा जो वरुणा और गंगा के संगम पर है। और जो उस समय भवानन्द सरस्वती के अधिकार में थी।......वहां केवल १२ दिन ठहरा। *तत्पश्चात् जिस वस्तु की खोज में था उसके अर्थ आगे चल दिया* और असौज सुदी २, १९१३ (सन् १८५६ ई०) को दुर्गाकुण्ड के मन्दिर पर, जो चण्डालगढ़ में है, पहुँचा। वहां दश दिन व्यतीत किये।"

इसके पश्चात् पृष्ठ २९ पर लिखा है :—"चैत्र १९१४–वहां से आगे चला और वह मार्ग पकड़ा—अर्थात् नर्मदा के स्रोत की ओर यात्रा आरम्भ की।" यह सम्भवतः सन् १८५७ का मार्च महीना था।

इस लेख से ज्ञात होता है कि ऋषि दयानन्द सन् १८५७ की राज्य क्रांति के ठीक प्रारम्भ के महीनों में नर्मदा के स्रोत की ओर जा रहे थे। और उस समय भी उनका ध्यान अपनी उसी वस्तु की ओर था जिसकी खोज में वे देर से भटक रहे थे।

रामेश्वर तक ?—यहीं पर श्री पं० घासीरामजी लिखित महर्षि जीवन चरित्र के पृष्ठ ६२२ पर लिखी पंक्तियों पर ध्यान देना आवश्यक है। इसमें लिखा है :—"मेरठ में अपने भक्तों से प्रेमालाप करते हुए महाराज ने अपने जीवन की कुछ घटनाएं सुनाई थीं।" ...."परन्तु अवधूत दशा में चालीस-चालीस मील चलना मेरे लिए कोई बात न थी। मैं एक बार गङ्गोत्री से चलकर गङ्गासागर तक और एक बार गङ्गोत्री से रामेश्वर तक गया था।" विचारणीय यह है कि *गङ्गोत्री से रामेश्वर की यह यात्रा कब की होगी ?*

खोज का अन्त—ऋषि दयानन्द अमृत की खोज में घर से निकले। घर का सुख-वैभव छोड़कर ब्रह्मचारी और संन्यासी बने। बन-पर्वत-नदी-नद सब छान डाले परन्तु उन्हें अपना आदर्श गुरु अब तक न मिला जो मृत्यु से छूटने का—अमर होने का उपाय बताता। उन्हें अगम्य से अगम्य गिरि-गह्वरों तक में ढोंग, पाखण्ड और मायाजाल फैला दीख पड़ा—सच्चा ज्ञानी और कर्मयोगी एक भी दृष्टिगोचर न हुआ जो हाथ पकड़ कर भवसागर से पार उतारता। ये निराश भी हुए—एक क्षण भर के लिए कातर भी। परन्तु उनके संस्कार अपूर्व वीरता के थे—अन्त में और अधिक ज्ञान-संचय करने का उनका निश्चय ही सर्वोपरि रहा।

ज्ञान-संचय करने की इस भावना में भी उनकी परोपकारप्रियता काम कर रही थी। कथाभाग को आगे बढ़ाने से पहले आइये, देखें उस समय देश की क्या स्थिति थी—धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक। महर्षि को अपने १३ वर्ष के लम्बे भ्रमणकाल में सब कुछ देखने का—गहराई और निकट से देखने-सुनने और समझने का अवसर मिला था। अनुभव के इस विशाल भंडारको उन्होंने देखा गुरु विरजानन्द द्वारा प्रदत्त ज्ञानवर्तिका के प्रकाश में। लगभग तीन वर्ष तक गुरु विरजानन्द जी से श्रवण मनन और निदिध्यासनपूर्वक अध्ययन कर वे भट्टी में तपे सोने की भांति निखर गये। अमृत की खोज के इस महान् उपक्रम का यह परिणाम था कि प्रचारकार्य के आरम्भ में ही उनकी ज्योति विद्युत् प्रकाश की भांति विश्व भर को मोहित कर उठी।

: ३ :

भयङ्कर दुरवस्था

धार्मिक धांधली

मतमतान्तरों का अद्भुतालय—जिस समय ऋषि दयानन्द ने कार्यक्षेत्र में पग रखा, उस समय भारतवर्ष की धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक अवस्था कैसी थी, इसका अनुमान वर्तमान अवस्था को देखकर लगाना कठिन है। उस समय आर्यजाति गाढ़ निद्रा में पड़ी हुई थी। आलस्य, प्रमाद, अज्ञान तथा पौरुष का अभाव इतनी पराकाष्ठा तक पहुँच चुका था कि आर्यजाति को ललकार कर, ठोकरें मारकर, घण्टे का उच्च घोष सुनाकर जगाने की आवश्यकता थी। उसे आत्म-विस्मृति की अवस्था से निकाल चैतन्य बनाने की आवश्यकता थी। आर्यधर्म जड़ता, रूढ़िवाद तथा निरर्थक क्रिया-कलाप का बदबूदार पोखर बन गया था। जिस प्रकार भगवती भागीरथी का पवित्र, शीतल, और मधुर जल लम्बा-मैदानी-मार्ग पार कर, गन्दे नदी-नालोंके सम्पर्कसे हुगली में मलिन, दूषित तथा अपेय हो जाता है तथा उस जलधारा से पृथक् गढ़े में एकत्र हुई जलराशि गतिशून्य हो जाने के कारण सड़ांद पैदा करने लगती है और उसमें नाना प्रकार के कृमि-कीट पैदा हो जाते हैं; ठीक यही अवस्था हमारे आर्य (हिन्दू) जगत् की हो चुकी थी। शुद्ध वैदिक धर्म का लोप हो चुका था। वेदों का पढ़ना पढ़ाना सर्वथा

समाप्त हो चुका था। यद्यपि बड़े-बड़े पण्डित वेदों के प्रति अगाध श्रद्धा तथा भक्ति की भावना रखते थे, परन्तु उनके अध्ययन में न उनकी रुचि रही थी और न उन्हें साहस ही होता था। पुराणों, स्मृतियों गृह्य-सूत्रों तथा विविध भाष्यों तक ही उनका पाण्डित्य सीमित था। साधारण जनता तो वेदों के नाम से ही सर्वथा अपरिचित थी। भागवत पुराण आदि की कथा सुनने में तथा घण्टा-घड़ियाल बजाने में ही उसका धर्म समाप्त हो जाता था। वैदिक धर्म, वैष्णव, शैव तथा शाक्त आदि सम्प्रदायों में बंट चुका था। इन सम्प्रदायों के भी अनेक भेद-उपभेद बन गये थे। वे परस्पर एक दूसरे की निन्दा करके अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने तथा नाना प्रकार के बाह्य आडम्बरों, तिलक-पूजापाठ और क्रिया-कलाप के भेद बनाए रखने में ही, अपना अस्तित्व समझते थे। इस भावना के कारण स्थान-स्थान पर अनेक मठ, देवालय तथा मन्दिर आदि बन गए थे, जो देवदासी प्रथा आदि के रूप में अनाचार के गढ़ थे। जैनधर्म अपनी अहिंसा की सच्ची भावना का परित्यागकर कायरता, विडम्बना तथा निष्कर्मण्यता का शिकार बन गया था। सिख धर्म के महन्त भी बड़े बड़े मठ कायम करने की धुन में मस्त थे। कहां तक वर्णन किया जाय! उस समय का हिन्दू समाज नाना मतमतान्तरों का एक विलक्षण अद्भुतालय बना हुआ था। जो उठाता दो चार दोहे या श्लोक गाकर लोगों को दीक्षा देने लगता। एक कुटिया बना, भस्म रमा, कण्ठी धारण करा धर्म के नाम से लोगों को ठगता था और अन्त में अपना मठ तय्यार कर शिष्य परम्परा चला जाता था। इस प्रकार धर्म के नाम से जायदादें खड़ी की जाने लगीं। सच्चे धर्म का उपदेश दे सकने की क्षमता न हो सकने के कारण मूर्तिपूजा का आश्रय लेकर हिन्दू जनता की भक्ति भावना की तृप्ति की जाने लगी। यह मूर्ति-पूजा हमारे धर्म के नाश तथा विविध पोपलीलाओं व बाह्याडम्बर की आधार-शिला थी।

धर्म सर्वथा दूषित था—धर्म के तीनों अंग—ज्ञान, कर्म तथा भक्ति—सर्वथा बिगड़ चुके थे। स्वामी शंकराचार्य का चलाया हुआ नवीन अद्वैतवाद आम जनता व कलुषित आत्माओं में पहुँच कर हमारे जीवन की निष्कर्मण्यता तथा पापवासना का महान् कारण बन रहा था। 'अहं ब्रह्मास्मि' कहकर गृहस्थ व साधु अपने आपको पाप-पुण्य से ऊपर समझने लगे थे। कर्मकांड के लिए यज्ञ में पशु-हिंसा, देवी-देवताओं की मूर्ति-पूजा तथा उनके लिए पशु-बलि चढ़ानेके अतिरिक्त कुछ कर्तव्य कर्म शेष न रहा था। आचार-अनाचार में, पापपुण्य में, अच्छे-बुरे में भेद जाता रहा था। केवल गंगा, श्रीकृष्ण या विष्णु का नाम जप लेने मात्र से पाप-क्षय समझा जाने लगा था। भक्तिमार्ग तो सर्वथा दूषित हो चुका था। वैष्णव लोग श्रीकृष्ण के नाम से खुले आम अनाचार का प्रचार कर रहे थे। उपास्य-उपासक में पिता-पुत्र की पवित्र भावना की प्रधानता न रहकर पति-पत्नि की भावना का—घोर शृंगारमय वासना का—अंकुर फूट रहा था। यह था घोर अन्धकार, तीव्र प्रतारणा, आत्म-प्रवंचना तथा छलछद्म का भयंकर साम्राज्य ! कैसी दुरवस्था थी ! कितना अनर्थ था ! धर्मक्षेत्र में धांधली मची हुई थी।

सामाजिक निर्बलता

इस्लाम का प्रभाव—जाति की इन अपनी आन्तरिक निर्बलताओं के अतिरिक्त मुसलमानों का भी हमारे जातीय जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका था। मुसलमान बादशाह तलवार के जोर से भारतवर्ष में इस्लाम का प्रचार करना चाहते थे। वे तलवार के जोर से हमें राजनीतिक पराधीनता में तो जकड़ सके; परन्तु धर्म-परिवर्तन कराने में पूरे सफल न हो पाये। क्योंकि भारतवर्ष ने आरम्भ से ही अपने धार्मिक संगठन को समयानुकूल परिवर्तित करके आत्म-रक्षा

के लिए सन्नद्ध कर दिया था। परन्तु निर्बलों का यह असहयोग शस्त्र परिणाम में आर्य जाति के लिए विशेष गुणकारी सिद्ध न हुआ। किले में बन्द सेना की तरह उसमें आलस्य व फूट का बीज उगने लगा। साथ ही इस्लाम से अपने आपको बचाने के लिए सतीप्रथा, पर्दा, खानपान के बन्धन, जाति-पाति के कड़े विभाग, बाल-विवाह तथा छूत-छात आदि की जो दीवारें खड़ी की गईं उनसे जातिका अपनी उन्नति का मार्ग भी बन्द हो गया। परिणामतः हमारा सामाजिक जीवन इतना निर्बल व सच्छिद्र हो गया था कि मुसलमानी राज्य की समाप्ति के बाद भी हजारों हिन्दू अपने भाइयों के इन बन्धनों से पीड़ित होकर हिन्दू समाज का परित्याग कर किसी अन्य समाज में मिलने के लिए उत्सुक हो रहे थे। जाति बहिष्कार की प्रथा ने कुछ भाइयों को इस्लाम के बाड़े में प्रविष्ट होने के लिये बाधित कर दिया था। पीछे वही भाई इस अत्याचार के कारण हिन्दू समाज के शत्रु बन गये। शास्त्रों पर अगाध श्रद्धा रखने वाले अनेक भाई अपने स्थान पर सुख अनुभव नहीं कर रहे थे; हिन्दू समाज उन्हें एक कारागार प्रतीत हो रहा था। वे किसी ऐसे महापुरुष की प्रतीक्षा में थे, जो इन्हें बन्धनों से मुक्त कर सच्चे आर्य धर्म की ज्योति दिखा सके और उत्तम जीवन प्रदान कर सके। गर्भ-विवाह, बालविवाह तथा वृद्धविवाह का दौरदौरा था। पूरी आयु में तो विवाह का एक उदाहरण मिलना भी कठिन था। अपनी ही जाति के छोटे वर्ग पर—अन्त्यजों पर—ब्राह्मणों व सवर्णों द्वारा सामाजिक अत्याचार किये जाने लगे। उनके साथ खान-पान, विवाह-सम्बन्ध तथा पठन-पाठन छूट गया था। उन्हें देवदर्शन व कूओं पर पानी भरने से भी वंचित कर दिया गया था। ये दलित व पीड़ित अन्त्यज लोग हिन्दू समाज में रहते हुए पूरे बंदी थे, दुखित थे तथा अत्याचार पीड़ित थे।

ईसाई मत का प्रवेश—इन बन्धनों से तंग आकर हिन्दू

जाति स्वयं अपना धर्म छोड़ने के लिए उत्सुक बैठी थी। परन्तु मुसलमानों के प्रति घृणा हो जाने के कारण स्वेच्छापूर्वक इस्लाम स्वीकार करने को तय्यार न थी। मुस्लिम राज्य के अधःपतन के साथ भारतवर्ष में यूरोप की जातियों के साथ ईसाइयत का प्रवेश हुआ। इसने शांत परन्तु गहरे व पेचदार उपायों से हिन्दूसमाज में घुसना आरम्भ किया। भारत में अंग्रेजों का प्रभुत्व और ईसाइयत परस्पर एक दूसरे के सहायक थे। पश्चिमी सभ्यता का आकर्षक रूप इन दोनों का सहायक बना। हिन्दू समाज का पीड़ित वर्ग तो अपने भाइयों से सताया हुआ था ही। ईसाइयत की ओर से इस वर्ग को आर्थिक प्रलोभन भी मिला। शिक्षणालयों के जाल में उच्च वर्ग के भारतवासी भी फंस गये। सरकारी नौकरी का प्रलोभन भी साथ लगा हुआ था। धीरे-धीरे ईसाई काल के कबीर भी पैदा होने लगे। उन्होंने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए ईसाइयत की शरण ली और हिन्दूपन में ईसाइयत की कलम लगा कर दोनों धर्मों का एकीकरण करना चाहा। सर्व-प्रथम बंगाल में ब्राह्मसमाज के रूप में इस प्रयत्न का परिणाम प्रकट हुआ। इधर पाश्चात्य शिक्षा के साथ-साथ नास्तिकता ने भी भारत में प्रवेश किया। पोपकालीन ईसाई धर्म के पाप, छल, कपट तथा अत्याचार-मय होने के कारण यूरोप में धर्म व ईश्वर के प्रति अविश्वास एवं विज्ञान की सर्वशक्ति-मत्ता के प्रति गहरा विश्वास जड़ जमा रहा था। भारत में यह लहर धर्म के प्रति अनास्था एवं नास्तिकता उत्पन्न कर रही थी।

राजनीतिक क्रांति-काल

निर्विवाद सत्य—राजनीतिक दृष्टि से तो यह निर्विवाद क्रान्ति काल था। मुगलों का प्रभुत्व उठ रहा था—पर अंग्रेजों का अभी स्थापित नहीं हो पाया था। डकैती, चोरी, नरहत्या, ठगी आदि अत्या-

चारों से भारतकी प्रजामें त्रास फैला हुआ था। ऐसी राजनीतिक अस्थिरता के समय आर्थिक दुरवस्था का होना सर्वथा स्वाभाविक ही था। बार-बार के दुर्भिक्षों से प्रजा पीड़ित थी; अनाथों और भिखमंगों की बढ़ोतरी हो रही थी। जीविका के साधन घट रहे थे। कला-कौशल के अभाव में देश परमुखापेक्षी बना जारहा था।

हमारी इस सारी दुरवस्था का कारण चाहे सैकड़ों वर्षों की राजनीतिक पराधीनता ही क्यों न रही हो, परन्तु इस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता आन्तरिक सुधार के श्री गणेश की थी। सं० १८५७ के स्वातन्त्र्य-संग्राम के रूप में क्रांति के जो चिन्ह प्रकट हुए थे उनसे देश के नए शासकों का ध्यान शासन-सुधार की ओर आकर्षित हो ही गया था। इस परिवर्तित वातावरण से लाभ उठाने की नितान्त आवश्यकता थी।

परिस्थिति अनुकूल भी और प्रतिकूल भी—सुधारकों के लिये यह परिस्थिति किसी सीमा तक अनुकूल भी थी और प्रतिकूल भी। महारानी विक्टोरिया की धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा के कारण अंग्रेजों के प्रति जनता का विश्वास बढ़ रहा था।

पुरानी अराजकता के सम्मुख यह राज्य एक दैवीय देन समझा जा रहा था। ऐसे समय सुधारकों का निर्भय होना और उनको अनुयायियों का मिलना पहले अराजक समयों की अपेक्षा एक प्रकार से आसान भी था, यद्यपि ऋषि दयानन्द जैसे निर्भय सुधारक मुसलमानी राज्य के समय होते तो भी वे किसी शिवाजी की पीठ पर हाथ रख कर वैदिक धर्म की विजय दुन्दभि बजा देते। हां, वह अवस्था निश्चय ही कुछ अधिक संघर्ष की होती। परन्तु जहां यह अवस्था थी वहां विदेशी दासता के प्रभाव से नई संतति में ईसायत, विदेशी सभ्यता, भाषा और वेश की जो मानसिक गुलामी उत्पन्न हो गई थी वह

दयानन्द जैसे प्राचीन वैदिक धर्म, सभ्यता, व संस्कृति के पुजारी के मार्ग में बड़ी भारी रुकावट थी। महर्षि ने आगे चलकर स्वयं अनुभव किया कि स्वायत्त शासन न होने के कारण हम सुधार करने में अशक्त हैं। ये भाव उन्होंने नेपाल के स्वामी कृष्णानन्द को लिखे पत्र में व्यक्त किये थे। परन्तु कार्य क्षेत्र में अवतीर्ण होने के उन दिनों में उन्हें अंग्रेजों की न्यायप्रियता पर, साधारण जनता की भांति पूर्ण विश्वास था। हम उन्हें सन् १८६६ के मई मास में अजमेर में मेजर डेविडसन, कमिश्नर और असिस्टैन्ट कमिश्नर कर्नल ब्रुक से गोहत्या बन्द करवाने के सम्बन्ध में भेंट करता पाते हैं। अस्तु।

सारांश—यह है कि भारत की तात्कालीन परिस्थिति का हम यों उल्लेख कर सकते हैं (१) प्राचीन वैदिक धर्म अत्यन्त संकीर्ण बन गया था। वह नाना मतमतान्तरों में बंट चुका था। और वे मत परस्पर एक दूसरे का विरोध कर रहे थे। धर्म के तीनों अङ्ग--ज्ञान, कर्म तथा भक्ति—सर्वथा बिगड़ चुके थे। (२) धर्म-विस्तार की प्राचीन भावना का परित्याग करके आत्मरक्षार्थ किए गए बालविवाह सती-प्रथा, जाति-बहिष्कार आदि उपायों ने हिन्दू समाज को निस्तेज करके अनेक सामाजिक कुरीतियों के गढ़े में धकेल दिया था। (३) समाज के अत्याचारों से पीड़ित एवं पैसे व नौकरी के लोभ से अभिभूत दलित जाति के लोग धर्म का परित्याग करके इस्लाम व ईसाइयत को कबूल कर रहे थे। (४) ईसाइयों के शांत उपायों के कारण अनेक शिक्षित लोग शनैः शनैः अपना धर्म छोड़कर स्वेच्छा पूर्वक ईसाई धर्म को ग्रहण कर रहे थे। (५) हीनतावृत्ति (Inferiority Complex) के कारण कुछ सुधारक ईसाइयत की कलम लगा कर नये रूप में धर्म को जीवित रखना चाहते थे। ब्राह्म समाज, प्रार्थना समाज आदि इसी प्रवृति के परिणाम थे। (६) नव-शिक्षितों में नास्तिकता बढ़ रही थी, धर्म का विचार तक उन्हें असह्य हो उठा था। (७)

आर्थिक दुरवस्था और शिल्पकला के अभाव में बेकार व अनाथों की संख्या बढ रही थी ! राज्याश्रय के कारण ईसाई इस अवस्था से लाभ उठा रहे थे। (७) नये शासन की धार्मिक स्वतन्त्रता की घोषणा सुधार के लिए आशा की सुनहली किरण थी । इससे लाभ उठाना दूर-दर्शितापूर्ण कार्य था।

ऋषि दयानन्द को अपने परिभ्रमण के १३-१४ वर्षों में इन बातों का पग-पग पर अनुभव हुआ। वे घर से अमृत की खोज में निकले थे। सत्य और अमृत के अभिलाषी ने देखा आज समूचा संसार, विशेषतः सत्य-ज्ञान वेद की अनुयायिनी आर्य-जाति, पथ-भ्रष्ट होकर मृत्यु के मुख में चली जा रही है। उसने अपनी मुक्ति और ब्रह्मानन्द को छोड़कर इस जाति की डूबती नय्या की पतवार सम्भाली।

४

ज्ञान सागर में डुबकी

—:o:—

गुरु विरजानन्द का परिचय

जन्मस्थान व परिवार— दण्डी स्वामी विरजानन्द जी का जन्म पंजाब के कर्तारपुर के समीपस्थ गंगापुर गांव में नारायणदत्त नामक सारस्वत ब्राह्मण के घर हुआ था। बचपन में ही आप आपत्तियों में घिर गये । ५ वर्ष की आयु में चेचक के कारण आंखें ज्योतिहीन हो गईं । १२ वर्ष की आयु में माता-पिता की मृत्यु से आप अनाथ होगये। बड़े भाई ने अन्धे अतएव अनुपयोगी भाई का भार उठाने में कोई लाभ नहीं देखा। परिस्थिति से तंग होकर बाल्यावस्था में ही आप घर छोड़ने को विवश होगये।

शिक्षा व तपस्या—दण्डी जी का समग्र जीवन ही तपस्वि-जीवन था। इसका प्रारम्भ घर से निकलने पर विशेष रूप से हुआ । घर से चलकर आप हृषीकेश में आये । यहां वे अपना अधिकांश समय गंगाजल में बैठकर गायत्री-जप में बिताया करते थे। एक वर्ष पश्चात् वे यहां से कनखल पहुँचे । यहां पूर्णानन्द स्वामी से संन्यास ग्रहण किया और उन्हीं से षड्लिंग आदि व्याकरण के भाग पढ़ते रहे। इसके पश्चात् वे काशी, गया, प्रयाग आदि तीर्थ स्थानों में घूमते और विद्या-ध्ययन करते रहे।

ख्यातिलाभ—दण्डी विरजानन्दजी की प्रतिभा अपूर्व एवं स्मृति शक्ति असाधारण थी। किसी श्लोक अथवा सूत्र को एक वा अधिक से अधिक दो बार सुनकर ही वे बिना किसी असमंजस के दुहरा देते थे। इन गुणों के कारण उनका पाण्डित्य शीघ्र ही चमक उठा। उनकी विद्वत्ता की धाक जमने का एक बड़ा कारण उनके पढ़ाने की विशद शैली थी। चारों ओर से शिष्यगण आकर उनका शिष्यत्व स्वीकार करने लगे। यों तो उनकी गति सभी शास्त्रों में अबाध थी, परन्तु शब्द-शास्त्र में उनकी विशेष गति थी। सर्वसाधारण में वे 'व्याकरण-सूर्य' के नाम से प्रसिद्ध हो रहे थे।

दण्डीजी कुछ समय रजवाड़ों में रहकर अध्यापन कार्य करते रहे। राज्याश्रय के वे लोभी नहीं थे। यही कारण है कि अलवर-नरेश विनय-सिंह की प्रार्थना पर वे उसी अवस्था में अलवर जाने को तय्यार हुए जब कि राजा ने प्रतिदिन कम से कम ३ घंटे उनसे पढ़ते रहने का वचन दे दिया। फिर इस कार्यक्रम में एक दिन का भी व्यवधान दण्डीजी को सह्य नहीं हुआ, वे उसी दिन अपने पूर्वस्थान सोरों में आ विराजे। यहां से वे मुरसान के राजा के पास रहे। फिर भरतपुर और पुनः सोरों परन्तु अन्त में आपने मथुरा में आसन जमाया। रेलवे स्टेशन से विश्रामघाट तक जाने वाली सड़क पर एक छोटी सी अट्टालिका में दण्डीजी का निवास था। यही उनकी पाठशाला का भी स्थान था। आज यह स्थान सर्वथा जीर्णशीर्ण एवं खंडहरमात्र ही रह गया है। इसी स्थान पर दण्डीजी का स्मारक बनाने का आर्यसमाज का निश्-चय अब कार्य-रूप में परिणत होता दीखता है, कारण कि आर्य-समाज को इसका वैध-अधिकार अभी हाल ही में प्राप्त हो चुका है।

दण्डी जी का महत्व—व्याकरण पढ़ने के इच्छुक विद्यार्थी दूर-दूर से दण्डीजी की सेवा में पहुँचते थे—संस्कृत विद्या के गढ़ काशी

से भी। व्याकरण में दण्डीजी का पाण्डित्य काशी के पंडित भी मानते थे। एक दैवी घटना ने आपका महत्व बहुत बढ़ा दिया। दण्डीजी के पड़ौस में एक दक्षिणी पण्डित रहते थे, जो प्रतिदिन मूल अष्टाध्यायी का पाठ करते थे। दण्डीजी उस समय तक सिद्धान्त कौमुदी, मनोरमा और शेखर को सारा व्याकरण मानते थे; मूल अष्टाध्यायी के सूत्र सुन कर उनकी विचार शक्ति ने करवट ली। व्याकरण के ऋषि-प्रणीत क्रम को जानकर सिद्धान्त कौमुदी के अस्वाभाविक गठन के प्रति उनकी आस्था घटी। विचार और मनन से इस धारणा की पुष्टि होते ही उन्हें अर्वाचीन व्याकरण के सब ग्रन्थों का परित्याग कर दिया। जनश्रुति के अनुसार तो उन्होंने ये ग्रन्थ यमुना में फिंकवा दिये। उनकी यह आस्था यहां तक बढ़ी कि ऋषिकृत ग्रन्थों के प्रचार की उन्हें धुन ही लग गई। एक बार जयपुर के राजा रामसिंह ने दरबार में बुलाकर उनसे अपने यशस्वी होने का उपाय पूछा। दंडीजी ने आदेश दिया कि एक भारी सभा का आयोजन कर शास्त्रार्थ की व्यवस्था करो; दंडीजी का विचार इस सभा में अष्टाध्यायी के ऋषिकृत क्रम की श्रेष्ठता सिद्ध करने का था। मथुरा के कलेक्टर मि० पोष्टली के पूछने पर उन्होंने अपनी एक मात्र इच्छा यही प्रकट की कि सिद्धान्त कौमुदी के कर्ता भट्टोजी दीक्षित के सब ग्रन्थों को जलवादें। यह भी प्रसिद्ध है कि वे दीक्षित के ग्रन्थों पर शिष्यों के हाथों से जूते लगवाया करते थे। कुछ भी हो, जिस समय दयानन्द ने दण्डी विरजानन्दजी का नाम सुना उस समय दण्डीजी ऋषि-प्रणीत ग्रन्थोंके अतिरिक्त और किसी ग्रंथके प्रति आस्थावान् नहीं थे। यही उनका विशेष महत्व था।

कहते हैं कि दण्डीजी ने शेखर; मनोरमा आदि के खण्डन में स्वयं 'वाक्य मीमांसा' नाम से एक ग्रन्थ तथा पाणिनी के प्रायः आधे भाग के भाष्य रचे थे। परन्तु इन्हें भी उन्होंने यमुना की भेंट चढ़ा दिया—अपने सिद्धान्त प्रेम के कारण उन्होंने अपने आपको भी क्षमा नहीं

किया। ८०-८१ वर्ष की वृद्धावस्था में भी वैदिक धर्म के पुनरुत्थान और आर्ष ग्रन्थों के पुनः प्रचार की योजनाएं वे बनाते रहते थे। इस उद्देश्य से एक सार्वभौम सभा की स्थापना उनके विचाराधीन थी—जिसके लिये जयपुराधीश महाराज रामसिंह का अनुमोदन भी मिल चुका था।

प्रसिद्ध है कि ऋषि दयानन्द ने गुरु की इस इच्छा को पूर्ण करने का बीड़ा उठाया, दण्डीजी ने अपने इस योग्यतम शिष्य से गुरुदक्षिणा में मांग ही यह की। आगे चलकर हम देखेंगे कि महर्षि दयानन्द की सफलता का सारा श्रेय, आर्ष ज्ञान के प्रचार को प्राप्त हुआ। ऋषि जीवन की कुंजी आर्ष ज्ञान का प्रचार ही था।

दण्डी जी की पाठशाला में

मथुरा आगमन—पं० लेखराम जी लिखित जीवन चरित्र के अनुसार स्वामी जी का मथुरा में आगमन सं० १९१७ कार्तिक शुक्ला द्वितीय सन् १७८० को हुआ। बाबू देवेन्द्रनाथ प्रमाण के अभाव में इतनी सही तिथि के निश्चय को भ्रमपूर्ण मानते हैं। पं० पुरुषोत्तम चौबे व पण्डित बनमाली चौबे के कथनानुसार वे मानते हैं कि स्वामी जी संवत् १९१७ से पहले ही मथुरा में पहुँच चुके थे। इस सम्बन्ध में स्वामी जी के सहाध्यायी मथुरा वासी पं० युगलकिशोर ने कहा था कि संभवतः दयानन्द वैसाख वा ज्येष्ठ मास में मथुरा आये थे। उस समय पश्चिमोत्तर प्रांत (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के सब ही प्रदेश दारुण निदाघ के ताप से तप्त थे। गदर से उत्पन्न हुई अशांति और अराजकता भी कहीं-कहीं विराज रही थी। दारुण दुर्भिक्ष के कारण इस प्रांत के बहुत से स्थानों के बहुत से मनुष्य भोजन का क्लेश उठा रहे थे। दयानन्द कुछ दिन तक रंगेश्वर के मन्दिर में रहे फिर दण्डी जी के पास रहे।" सरकारी रिपोर्ट के अनुसार यह दुर्भिक्ष

संवत् १९१७—१८ सन् १८६०—६१ में पड़ा था।

उद्देश्य—तिथि संवत् के निर्णय का विशेष महत्व नहीं है। परन्तु १२-१३ वर्ष तक योगियों का अनुसन्धान करने के पश्चात् मथुरा में स्वामी जी के आगमन के हेतु पर थोड़ा विमर्श आवश्यक है अब तक की घटनाओं के परिशीलन से पाठक यह तो भली भांति जानते हैं कि (१) शिवरात्रि के व्रत की घटना के कारण महर्षि दयानन्द का विश्वास मूर्तिपूजा से उठ गया था (२) उपवास आदि बाह्य अनुष्ठानों में उनकी आस्था उस ही दिन लुप्त हो गई थी (३) परन्तु हिन्दू-धर्म की प्रकृत प्रणाली को जानने की उत्सुकता भी इसके साथ ही उत्पन्न हुई (४) १३-१४ वर्ष के परिभ्रमण के अनुभव ने उनकी इस आस्था और साथ ही उत्सुकता की वृद्धि की। (५) इस विषयक ज्ञान-लालसा की प्रबलता के कारण ही वे हिमालय की हिम में अपने प्राण त्यागने को तय्यार न हुए। (६) ज्ञान-पिपासा प्रबल होते हुए भी योगियों की खोज की उत्सुकता पूर्णतः शांत नहीं हुई थी। इसी लिये काशी और नर्मदा के स्रोत तक भी वह खोज जारी रही। (७) यह भी संभव है कि उन्होंने दंडी विरजानन्द जी की ख्याति नर्मदा तट पर परिभ्रमण करते हुए ही सुनी हो। कुछ भी हो, स्वामी जी के मथुरा आगमन के उद्देश्य के सम्बन्ध में सन्देह को कोई स्थान नहीं है। प्राचीन वैदिक एवं आर्य धर्म के सच्चे रूप को जानने की दिशा में पथ-प्रदर्शन प्राप्त करना ही ऋषि दयानन्द का उद्देश्य था—और यह उन्हें समय पर मिला।

भेंट—पहली भेंट में दण्डीजी ने पूछा—'क्या कुछ व्याकरण पढ़ा है?' दयानन्द का उत्तर था—'सारस्वत पढ़ा हूँ।' इस पर आज्ञा हुई कि पहले सब अनार्ष ग्रन्थ यमुना में बहा आओ और आर्ष ग्रंथ पढ़ने के अधिकारी बनो। दूसरी बात जो दंडीजी ने कही वह यह थी

कि संन्यासी को विद्यार्थी बनने में बाधा पड़ती है। भोजनाच्छादन की चिन्ता से मुक्त हुए बिना विद्याभ्यास कैसा! अतएव अपने आवास, तथा खान-पान की व्यवस्था करके आओ।

उस युग में विद्यार्थियों के प्रति उदार महानुभावों की कमी नहीं थी। बाबा अमरलाल जोशी की ओर से बहुत से विद्यार्थियों के भोजन का प्रबन्ध था। स्वामी जी के भोजन का प्रबन्ध भी वहीं पर हुआ। तेल का मासिक व्यय।) ला० गोवर्धनदास सर्राफ देने लगे जिसके कारण रात्रि में अभ्यास करने का अवसर मिलता रहा।

'कालजिह्व' और 'कुलक्कर'—महर्षि का विद्यार्थि-जीवन आदर्श था। प्रातःकाल उठकर गुरु के लिए नदी से जल लाना, फिर सन्ध्योपासन से निवृत्त हो पढ़ने में लग जाना उनका नियम था। दंडीजी की भांति आप की स्मृति एवं धारणाशक्ति अपूर्व थी। उनकी तर्क-शक्ति से भी दंडीजी भलीभांति परिचित हो गये थे। इसीलिये उनपर दंडी जी का विशेष स्नेह होना स्वाभाविक था! 'कालजिह्व' और 'कुलक्कर' इन दो नामों से वे आपको प्यार में बुलाया करते थे। 'कालजिह्व' का अर्थ है 'जिसकी जिह्वा असत्य के खंडन में काल के समान कार्य करें।' 'कुलक्कर' का अर्थ है खूंटा अर्थात् जो विपक्षी को पराभूत करने में खूंटे के समान दृढ़ हो।

शिक्षा—महर्षि ने दंडीजी से अष्टाध्यायी और महाभाष्य का विशेष रूप से अध्ययन किया। स्वामी जी के लिए नगर से चन्दा करके ३१) रु० में महाभाष्य की प्रति मंगवाई गई थी। इसके अतिरिक्त निरुक्त, निघण्टु, प्रभृति वैदिक ग्रंथों में से कुछ ग्रंथ भी दण्डीजी से पढ़े। चारों अथवा किसी वेद-विशेष का विस्तृत अध्ययन दंडी जी से वे कर पाये या नहीं, परन्तु वैदिक साहित्य का पूर्ण अधिकारी बनने के लिए जिन-जिन शास्त्रों का अध्ययन आवश्यक है उन्हें पढ़ाये

बिना दंडीजी उनकी शिक्षा को कब पूर्ण मानने वाले थे।

विशेष वार्तालाप— शास्त्राध्ययन के अतिरिक्त गुरु और शिष्य में विशेष वार्तालाप भ हुआ करता था। यह वार्तालाप एकांत में ही हुआ करता था, अतएव उनके सहाध्यायी इस पर कोई प्रकाश नहीं डाल सके। परन्तु यह स्पष्ट ही है कि इस वार्तालाप के विषय वैदिकधर्म का प्रचार और आर्यावर्त का पुनरुत्थान ही रहे होंगे। दण्डीजी स्वामी दयानन्द को साधारण विद्यार्थी ही नहीं समझते थे, वे उसे भारत के सुधारक के रूप में देखते थे। इसी दृष्टिकोण से दंडीजी की पाठशाला में उनका शिक्षण हुआ।

गुरु भक्ति— दयानन्द की गुरुभक्ति की कुछ घटनाएं उल्लेख में आई हैं। दंडीजी का स्वभाव उग्र था। वे क्रोध के आवेश में छात्रों को शारीरिक दण्ड भ देते थे। एक बार स्वामी जी की भी बारी आगई। कहते हैं कि लाठी की उस चोट का निशान स्वामीजी के हाथ पर मृत्युपर्यन्त बना रहा। इसको देखकर वे गुरु के उपकारों का स्मरण किया करते थे।

शिक्षा-समाप्ति और दक्षिणा— दण्डीजी की पाठशाला में दयानन्द के तीन वर्ष बीते। पंडित लेखराम जी ने यह समय २॥ वर्ष बताया है। विरजानन्द की शिक्षा और संसर्ग का यह प्रभाव था कि ऋषि दयानन्द इस युग के आदर्श सुधारक बने। देश एवं जाति में निबद्ध मूल कुसंस्कारों को भस्मसात् करने में समर्थ प्रदीप्तवह्नि और सायण महीधर आदि वेद व्याख्याताओं की प्रतिभा को कुंठित करने वाली अलौकिक प्रतिभा को इस संसर्ग से प्राप्त कर दयानन्द इस युग के महर्षि कहलाये।

प्रथानुसार शिक्षा समाप्ति पर शिष्य गुरु को दक्षिणा भेंट देता है। परन्तु गुरु विरजानन्द अपने शिष्यों से कोई आर्थिक भेंट नहीं लिया

करते थे। दयानन्द तो संन्यासी थे, उनके पास द्रव्य का भला क्या काम! कहते हैं कि गुरुदक्षिणा के रूप में ऋषि दयानन्द ने आध सेर लौंग गुरु की भेंट कीं। परन्तु गुरु विरजानन्द ने विदाई के साथ आशीर्वाद देते हुए कहा—'मैं तुमसे तुम्हारे जीवन की दक्षिणा चाहता हूँ। तुम प्रतिज्ञा करो कि जितने दिन जीवित रहोगे उतने दिन आर्यावर्त में आर्षग्रन्थों का प्रचार, अनार्ष ग्रन्थों का खण्डन करोगे तथा भारत में वैदिक धर्म की स्थापना के हेतु अपने प्राण तक न्योछावर कर दोगे। ऋषि दयानन्द ने 'तथास्तु' कह गुरु की आज्ञा के सम्मुख सिर झुका दिया। यह थी उनकी अनुपम गुरु भक्ति! उनके जीवन का लक्ष्य इस गुरु दक्षिणा ने सर्वथा सुनिश्चित कर दिया।

५

आरम्भिक प्रचार कार्य

(सं० १९२० से सं० १९२३ तक)

आगरा में दो वर्ष

मित्र-शत्रु—गुरु दक्षिणा में अपना जीवन-दान देकर ऋषि मथुरा से आगरा पहुँचे। यहां वे सेठ गुल्लामल के बाग में ठहरे। यह बाग साधु-संन्यासियों की सेवा के लिए ही नियत था। आगरा में उन दिनों पण्डित सुन्दरलाल, पं० बालमुकन्द और दयाराम अपनी धार्मिक प्रवृत्तियों के कारण प्रसिद्ध थे। ये तीनों ही डाक विभाग के कर्मचारी थे। इस बाग में स्वामी जी का परिचय पहले पहल इन्हीं सज्जनों से हुआ। धीरे-धीरे आत्मीयता बढ़ती गई और धर्मचर्चा का विस्तार होता गया। यहीं पर स्वामी जी ने अपनी गुरु-दक्षिणा की कहानी इन तीनों को सुनाई और बताया कि 'मेरी तृप्ति अन्त में गुरु विरजानन्द के चरणों में बैठकर हुई।' इस बाग में अवस्थिति के समय स्वामी कैलाश-पर्वत भी यहीं ठहरे हुए थे परन्तु इस समय इनका कोई शास्त्रार्थ नहीं हुआ। ये स्वामी, ऋषि दयानन्द से मन में द्वेष रखते थे। एक दिन महर्षि ने साधुओं का भंडारा किया—स्वामी कैलाश पर्वत ने रसोइयों से मिलकर भोजन को बे स्वाद करने के लिए बहुत सा नमक मिलवा दिया।

विचारधारा—इस समय तक ऋषि सुधारकार्य को आरम्भ नहीं कर सके थे। पण्डित विष्णुलाल मोहनलाल पाण्ड्या के पूछने पर उन्होंने बताया "मैं अभी विचार कर रहा हूँ।" इन्हीं दिनों वे किसी कार्यवश मेरठ गये, वहां भी पाण्ड्या जी ने दण्डी जी की ओर से कुछ निराशात्मक सन्देश देने पर भी आपने यही कहा, "देखा जायगा परमात्मा क्या करता है। मैं अभी विचार और विचरण कर रहा हूँ।"

वस्तुतः महाराज का मन अभी कई बातों में संशयालु ही था। वे कभी-कभी मथुरा जाकर और पत्र द्वारा भी गुरु जी से शंकासमाधान किया करते थे।

पं० सुन्दरलाल ने उनसे अष्टाध्यायी और भगवद्गीता पढ़नी आरम्भ की। पं० सुन्दरलाल उनके संसर्ग से पूर्व शिवलिंग की पूजा किया करते थे—उनके पुत्र के कथनानुसार यह पार्थिव पूजा महर्षि के सत्संग के पश्चात् भी जारी रही।

पं० लेखराम जी लिखित जीवन-चरित्र के अनुसार महर्षि उस समय कृष्ण भागवत का खण्डन करतेथे और महाभारत का स्वाध्याय। एक दिन कुछ लोगों की प्रार्थना पर विद्यारण्य स्वामी कृत पञ्चदशी का पाठ आरम्भ किया। परन्तु इसमें जब एक स्थल पर यह लेख मिला कि ईश्वर को भी भ्रम हो जाया करता है—तो ऋषि ने इसे मनुष्यकृत ग्रन्थ समझ फिर इसका पाठ करना बन्द कर दिया। पीछे वे गीता की कथा करते रहे। आप इन दिनों मूर्तिपूजा का भी खण्डन करते थे—भागवत का खंडन तो अवश्य करते ही थे। उनकी योगवाशिष्ठ व महाभारत की व्याख्या अपूर्व एवं सरल होती थी।

रहन-सहन—रुग्ण होने की अवस्था में न्यौली आदि योग

की क्रियाओं द्वारा उदर-शुद्धि का उन्हें अभ्यास था। पं० सुन्दरलाल को इनमें से कुछ क्रियाएँ उन्होंने सिखाईं भी। प्राणायाम आदि योग के अङ्गों का साधन विशेष रूप से करते थे। कभी-कभी अठारह-अठारह घंटे तक आसन पर ध्यानावस्थित होकर बैठे रहते थे।

महर्षि ने यहां 'सन्ध्या विधि' नाम से अपनी पहली पुस्तक लिखी जिसकी तीस हजार प्रतियां उनके भक्त सेठ रूपलाल ने १६००) रु० व्ययकर प्रकाशित कराईं। यह पुस्तक -) प्रति पुस्तकें बेची गईं।

उस समय आप सिला हुआ कपड़ा नहीं पहनते थे; लोई और घुस्सा ओढते, अबरा बांधते और जूता पहनते थे।

ग्वालियर नरेश की अप्रसन्नता

भागवत प्रेमियों से शास्त्रार्थ की इच्छा—आगरे से ऋषि ग्वालियर पधारे। ग्वालियरमें महाराजाने एकसौ आठ भागवत पाठ का आयोजन किया था। विद्वान् पण्डित बुलाये जा रहे थे। पूना, सतारा, नासिक और काशी के अतिरिक्त आगरा में भी पण्डितों की खोज में महाराजा के आदमी पहुँचे थे। भागवत के विषय में शास्त्र चर्चा का इससे अच्छा अवसर नहीं मिलेगा—यह विचार कर ही ऋषि ग्वालियर पहुँचे। ज्योतिषियों के निश्चयानुसार शुभ मुहूर्त में माघ शुक्ला ६ संवत् १९२२ सन् १८६६ को बड़े आयोजन और तोपध्वनि आदि साजसज्जा से पाठ आरम्भ हुआ।

गंगाप्रसाद दफ़ेदार के द्वारा सन्देश भेजने का विपरीत परिणाम यह निकला कि शास्त्री लोग ऋषि दयानन्द की भागवत खण्डन की योजना से आतंकित हो उठे। महाराजा से निवेदन किया गया। महाराजा ने ऋषि से भी भागवत-सप्ताह बंचवाने का माहात्म्य पूछा—उन्होंने हंसकर कहला भेजा—"दुःख और क्लेश!" परन्तु तैयारी नहीं

रुकी। आप इस पाठ में निमन्त्रण मिलने पर भी सम्मिलित नहीं हुए।

यहां हनुमन्ताचार्य और रामाचार्य आदि पण्डितों से शास्त्रचर्चा होती रही। हनुमन्ताचार्य गुप्त रूप से ही आते थे। महर्षि जी ने एक दिन इनसे कहा था—यदि ललाट पर रेखा खींचने से वैष्णवों को मोक्ष मिलता है तो सारे मुख को काला करने से मोक्ष से भी उच्चतर वस्तु मिलनी चाहिए।

दिनचर्या—स्वामी जी इन दिनों प्रातःकाल उठकर सूर्य को अर्घ्य देते थे। उनका झुकाव सम्भवतः शैवमत की ओर था। १२ बजे तक प्राणायाम करते थे। शिव सहस्रनाम का पाठ करते थे। दो रोटी और मूंग की दाल उनका भोजन था। दुर्गासप्तशती को भी मानते थे।

बालाप्रसाद के पिता जगन्नाथ को, जो श्वास रोग का रोगी था, कुंजर क्रिया बताई जिससे उसका रोग शान्त हो गया।

ग्वालियर के महाराजा जियाजीराव उनके पास नहीं आये, क्योंकि वे भागवत का खण्डन करते थे। कहते हैं कि महाराजा इतने रुष्ट थे कि ग्वालियर के सेनापति बापुआड़ के मन्दिर में उनका वास सुन कर बापुआड़ से कहा कि तुमने ऐसे मनुष्य को अपने मन्दिर में क्यों ठहरने दिया।

करौली नरेश भी रुष्ट हुए—यहां से ऋषि दयानन्द करौली गये और गोपालसिंह के बाग में ठहरे। इस समय इनके साथ दो साधु तथा दो मनुष्य और भी थे। समाचार पाकर करौली के महाराजा मदनपाल ने भोजन आदि का प्रबन्ध कर दिया।

आपका यहां भी कोई शास्त्रार्थ नहीं हुआ। एक दिन आप की उपस्थिति में राज के प्रमुख पंडित मणिराम महाराजा मदनपाल को संकल्प मन्त्र बता रहे थे। उसमें 'करिष्ये' के स्थान पर 'करिस्ये' उच्चा-

रण करने पर आपने पंडित को मूर्ख बताया। इसी प्रकार महाराजा को 'अन्नदाता' कहने की भी आपने आलोचना की। इन बातों से महाराजा ऋषि से रुष्ट होगये और उन्हें राजप्रासाद से चले जाने को कहा। परन्तु जब ऋषि करौली से चलने लगे तो महाराजा ने ५००) रु० और एक दुशाला भिजवाया—ऋषिने इसे स्वीकार नहीं किया।

यहां आपकी भेंट एक कबीर पन्थी साधु से हुई थी। इसने कबीर शब्द का अर्थ एक-वीर किया था और बताया था कि कबीर उपनिषद् भी है। यहां से खुशहालगढ़ होते हुए ऋषि जयपुर पहुँचे।

जयपुर में शास्त्रचर्चा

प्रशंसक बढ़े—जयपुर में महर्षि भवानीराम बोहरे के बाग में उतरे। वहां से धूलेश्वर के मन्दिर में और फिर माली रामपुण्य दारोगा के बाग में ठहरे।

यहां गोपालानन्द परमहंस ने इनसे ईश्वरजीव के स्वतन्त्र अथवा परतन्त्र होने विषयक प्रश्न किये—इनके समाधान से वह बहुत प्रसन्न हुआ। जोधपुर के श्रवणनाथजी के शिष्य लक्ष्मणनाथ आपकी विद्वत्ता से प्रभावित हुए।

कुछ दिनों पश्चात् साधु-सन्तों के सत्संग के प्रेमी अचरौल के ठाकुर रणजीतसिंहजी ने जोशी रूपरामजी द्वारा महर्षि का बखान सुन उन्हें निमन्त्रण दिया। भक्त बनकर ठाकुर साहबने अपने बाग में उनके ठहरने की व्यवस्था की। धीरे-धीरे आपकी चर्चा शहर में फैल गई। विद्यार्थी पढ़ने आने लगे और अष्टाध्यायी, महाभाष्य, रूपावली आदि पढ़ाने लगे।

पण्डितों से प्रश्न का उत्तर नहीं मिला—संस्कृत पाठशाला के पंडितों को महर्षिने १५ प्रश्न लिखकर दिये—(१) कल्म च

किं भवति ? (२) येन कर्म्मणा सर्वे धातवः सकर्म्मकाः किं तत्कर्म ?- ये दो ही प्रश्न इनमें से उपलब्ध हैं। पंडितों ने प्रत्युत्तर में दुर्वचन ही लिख भेजे—ऋषि ने उनके इस लेख में भी ८ दोष दिखाये। व्यास बख्शीराम के अनुरोध पर राजराजेश्वर के मन्दिर में आमने सामने इन प्रश्नों पर चर्चा हुई। परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। एक बार तो पंडित यहां तक कह गये कि महाभाष्य कोई व्याकरण का ग्रंथ है ही नहीं। आपने जब यह उत्तर लिखित मांगा तो किसी को ऐसा करने का साहस नहीं हुआ।

ओसवाल वैश्यों के गुरु जतीजी ने वार्तालाप की इच्छा प्रकट की- परन्तु वे महर्षि के इन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सके। महर्षि ने उनके ८ प्रश्नों का उत्तर दे दिया।

शैवमत का प्रचार—इन दिनों आप देवी भागवत का मंडन और कृष्ण भागवत का खंडन करते थे। शरीर पर भस्म रमाते और रुद्राक्ष पहनते थे। मनुस्मृति, और भगवद्गीता पाठ की मुख्य पुस्तकें थीं।

यहां अपने प्रचार के विषय में महर्षि ने लिखा—'जयपुर में मैंने प्रथम वैष्णवमत का खंडन करके शैवमत की स्थापना की। जयपुर के महाराजा रामसिंह ने भी शैवमत को ग्रहण किया। इससे शैवमत का फैलाव होकर सहस्रों रुद्राक्षमाला मैंने अपने हाथ से दीं। वहां शैवमत इतना पक्का हुआ कि हाथी घोड़े आदि के गलों में भी रुद्राक्ष की मालाएं पहनाईं गईं।

संवत् १९२१ से संवत् १९२७ तक जयपुर में शैव एवं वैष्णवों का विरोध चलता रहा। शैवों को महाराजा का साहाय्य प्राप्त था। काशी से व्यवस्था भी धन के प्रभावसे शैवों के पक्ष में आगई। फिर क्या था—लोग तिलक छोड़ त्रिपुंड धारण करने लगे। कण्ठी के

स्थान पर रुद्राक्ष उनके गले का आभूषण बना। इसी समय महर्षि लगभग साढ़े चार महीने जयपुर में रहे और वैष्णव मत का खंडन करते रहे। व्यास बख्शीराम की धूर्तता के कारण आपका महाराजा से साक्षात्कार सम्भव नहीं हुआ। महर्षि के लेखानुसार यहां उन दिनों "हरिश्चन्द्र एक विद्वान् पंडित था।"

पुष्कर के मार्ग की एक घटना—जयपुर से महर्षि पुष्कर गये। मार्ग में बगरू और दूदू में दो-दो दिन ठहरते हुए ६-७ दिन किशनगढ़ में ठहरे। यहां उस समय राजा पृथ्वीसिंह गद्दी पर विराजमान थे। वे साधुसेवी थे। राजा ने महर्षि के भोजनादि की व्यवस्था कर अपने पंडित बिट्ठलदास को संवाद लाने के लिए भेजा। ये लोग बल्लभसम्प्रदाय के थे। महर्षि ने इनके तिलक का खंडन कर विट्ठल और दास शब्दों पर भी शास्त्रार्थ आरम्भ कर दिया। "दास" का अर्थ "शूद्र" और विट्ठल को "विष्टा" का अपभ्रंश बताया। दूसरे पंडित देवीदत्त से भी देव शब्द पर शास्त्रार्थ हुआ। दोनों पंडितों ने परास्त हो राजा से ऋषि की भरपेट निन्दा की। राजा ने आप से रुष्ट हो उन्हें तत्काल रियासत छोड़ने की आज्ञा दी। परन्तु आपने इस धमकी पर ध्यान नहीं दिया। ५-६ दिन ठहर कर वे आगे बढ़े और अजमेर में चार दिन ठहर कर पुष्कर चले गये।

पुष्कर में निवास

विचारधारा—पुष्कर-निवास के समय श्री स्वामी जी शैवमत का उपदेश देते और वैष्णवमत का खंडन करते थे। परन्तु आपका शिव, कल्याणकारी ईश्वर था न कि पार्वती का पति शिव। ऐसा ही उन्होंने पं० गंगाराम को बताया था। वे केवल सच्चिदानन्द परमेश्वर को मानते थे। वैष्णवों को शास्त्रार्थ में परास्त कर उनके गले से तुलसी

माला उतरवाकर तिलक के लिए विभूति अपने पास से देते थे। पूर्णिमा के मेले पर उन्होंने बहुत से लोगों को शैवमत की दीक्षा दी।

विद्वान् पंडित द्वारा समर्थन— इन दिनों पुष्कर में व्यंकट शास्त्री नाम के एक दक्षिणी विद्वान् रहते थे। दिन निश्चित हो जाने पर भी वह शास्त्रार्थ के लिए स्वयं नहीं आये—महर्षि स्वयं उसके निवास स्थान पर पहुँचे। उस समय लगभग चार सौ ब्राह्मण वहां एकत्रित होगये थे। 'भागवत' पर वाद-विवाद होने लगा। महर्षि ने भागवत का ऐसा प्रबल खंडन किया वह विषयान्तर पर उतरने को बाध्य हो गया; अब विवाद 'देवासुर' शब्द के शुद्धाशुद्ध उच्चारण पर केन्द्रित होगया—यहां भी महर्षि ने 'देवासुर' की पुष्टि व्याकरण के आधार पर की। अन्त में शास्त्री जी ने महर्षि के पांडित्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की। यही नहीं, अपने गुरु अघोरी से उनका साक्षात् कराया। अघोरी संस्कृत का भी प्रकांड पंडित था वह महर्षि से बहुत देर तक संस्कृत में बातचीत करता रहा। अन्त में सब उपस्थित जन-समूह के सम्मुख इसने संस्कृत में घोषणा की—दयानन्दजी का कथन सत्य है, इनसे झगड़ा मत करो।' व्यंकट शास्त्री ने भी इसी मत को हिन्दी में प्रकट किया। व्यंकट शास्त्री महर्षिसे इतना प्रभावित हुआ कि महर्षि उसने शास्त्रार्थ में आवश्यकता होने पर महर्षि को साथ देने का वचन दिया।

कंठियों का ढेर—यहां मेले में खूब धूमधाम थी। महर्षि के धूंआधार खंडन का खूब रंग जमा—उनके निवास स्थान—ब्राह्मणों ने घबराकर व्यंकट शास्त्री की शरण ली। पर वह तो पहले ही रंगा जा चुका था, बोला—हम क्या करें? जो कुछ वह कहता है सत्य कहता है। परन्तु उसकी चलेगी तब, जब कोई राजा-महाराजा उसका शिष्य बन जायगा।

जो बोलता है आपकी पीठ पीछे ही बोलता है---

यहीं पर एक दिन एकवृद्धा मूर्तिदर्शन करके महर्षि के दर्शनार्थ भी आई। आपके पूछने पर वह कह उठी 'हां, ब्रह्माजी ने उपदेश भी दिया है।' इस पर महाराज एकदम खड़े होगये और उसे वापस मन्दिर में लेजाकर कहा—'माता ! अब मेरे सामने पूछ मैं भी सुनूं। वृद्धा ने हंसकर कहा—'महाराज ! यह मूर्ति तो क्या आपके सामने सभी चुप हो जाते हैं, जो बोलता है आपकी पीठ-पीछे ही बोलता है।' मूर्ति-के सम्बन्ध में सचमुच जानने और कहने की यह थी महर्षि की लगन और यह था उनके पांडित्य का प्रभाव।

यहीं एक सेठ ने आपके उपदेश पर मन्दिर बनवाने के संकल्प का त्याग किया। आपने कहा—मन्दिर बनवाना तो सन्तति के लिए अविद्या का एक गहरा गढ़ा खोदकर छोड़ जाना है। शिवदयाल नाम के एक पुजारी ने आपके उपदेश पर कंठी छोड़ी। इसको आपने बताया कि ईश्वर का नाम 'सच्चिदानन्द' है। शिव का अर्थ कल्याणकारी परमेश्वर है, पार्वती का पति नहीं—यह भी आप प्रकट कर चुके थे। यहां आपने यह भी प्रकट किया कि विद्वान् ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी और को संन्यास ग्रहण करने का अधिकार नहीं है।

शारीरिक सामर्थ्य—सम्प्रदायवाद के गहरे गढ़ में अकेले लोहा लेने वाले महर्षि को कभी कभी शारीरिक सामर्थ्य के प्रदर्शन की भी आवश्यकता पड़ जाती थी। इसके कई उदाहरण इनके जीवन में मिलते हैं। पुष्कर में इसकी आवश्यकता तब पड़ी जबकि बहुत से ब्राह्मणों के बीच गौ-घाट पर वे घिर गये। उनके आह्वान पर वे वहां गये, पर उनकी चालाकी से अवगत नहीं थे। शास्त्रार्थ तो वे क्या करते कुछ देर बाद ही अवाच्य बकने लगे। परन्तु श्री महाराज क्यों घबराते ! इतने में मानपुरीजी भी पहुँच गये—दंगाइयों को खदेड़ दिया

गया। यहां भी सैकड़ों कंठियां पुष्करार्पण हुईं। ये वही मानपुरीजी थे जो आपको दूध दिया करते थे। एक बार मूर्तिभोग का दूध देने पर महर्षि ने उसे पत्थर-पूजा का दूध कहकर अस्वीकार कर दिया था। इससे इतने रुष्ट हुए कि दूध देना ही बन्द कर दिया। परन्तु बाद में प्रसन्न होगये और स्वामीजी के गहरे मित्र बन गये।

पुष्कर से महर्षि मारवाड़ जाना चाहते थे, एक वकील ने आग्रह भी किया था। परन्तु उनके भक्त अचरौल के ठाकुर के भेजे हुए जोशी रूपराम वहां डेरे डाले हुए थे। इनके आग्रह पर उन्होंने अजमेर होकर अचरौल जाने का विचार किया।

अजमेर-प्रवास

रहन सहन व विचारधारा—अजमेर आकर महर्षि का डेरा बंशीधर सरिश्तेदार के बाग में लगा। यह समय सं० १९२३ (सन्‌ १८६६) के ज्येष्ठमास का आरम्भ था। महर्षि कण्ठ में रुद्राक्ष की माला पहनते और मस्तक पर विभूति रमाते थे। पादरी राबिन्सन के ८ सितम्बर सन्‌ १९०३ में देवेन्द्रबाबू को लिखे पत्र के अनुसार "उनका शरीर विशाल, सुगठित और दर्शनीय था। एक गेरुआ वस्त्र उनके कटिप्रदेश में और एक ढीले ढंग पर उनके शरीर पर पड़ा हुआ था। मुझे वह तीक्ष्णबुद्धि और प्रभावशाली व्यक्ति प्रतीत हुए और अच्छी तरह समझ में आ गया कि अपने अनुयायियों को वे क्यों आकृष्ट कर लेते थे। उस समय ज्ञात होता था कि उन्होंने पौराणिक हिन्दुओं से सर्वथा सम्बन्ध-त्याग नहीं किया था और वेदान्त के सिद्धान्त में उन्हें सन्देह नहीं था। परन्तु एकेश्वरवाद की ओर उनका नैसर्गिक झुकाव था। उन्होंने कहा था कि वे सत्य के खोजी हैं, जहां कहीं भी सत्य मिलेगा वे उसका अनुगमन करेंगे। सत्य से उनका अभिप्राय सच बोलना नहीं अपितु वास्तविक पदार्थ (Reality—तत्व) से

था।...मनुस्मृति वर्णित वर्ण व्यवस्था में उनका विश्वास था। वेदों में उनका दृढ़ विश्वास था।" बाबू देवेन्द्रनाथ के लेखानुसार विष्णु की अपेक्षा शिव की उपासना को अच्छा समझते थे। 'दयानन्द प्रकाश' के अनुसार शैव सम्प्रदाय का भी खंडन करते थे, मन्दिर को अड्डा कहते थे।

ईसाइयत से मुठभेड़—अजमेर पहुँचकर महर्षि ने विज्ञापन किया कि मूर्तिपूजा आदि विषयों पर शंका समाधान के लिए वे तय्यार है। शास्त्रार्थ करने कोई पंडित नहीं आया। प्रश्नों के उत्तर में आपने बताया कि उपकार के लिए संन्यासी को एक स्थान पर अधिक काल तक ठहरने और यानारोहण करने में भी हानि नहीं है।

सत्य के लिए कारावास में भी कोई लज्जा नहीं यहां भी पहले पहल ईसाई-पादरियों से शास्त्रार्थ हुआ। राबिन्सन, ग्रे और शूल्ब्रेड नाम के तीन पादरियों से ईश्वर, सृष्टिक्रम और वेद-विषय पर तीन दिन तक सम्वाद चलता रहा। फिर चार दिन महर्षि ने ईसा के ईश्वरत्व, मरकर जीवित होना, फिर आकाश पर आरोहण आदि विषयों पर प्रश्न किये। शास्त्रार्थ में पादरियों ने वेदमन्त्र के नाम से कुछ संस्कृत भाग पढ़ा। जब इसका पता पूछा तो वे बता न सके। अगले दिन वे संवाद के लिये नहीं आये। कहते हैं कि एक आक्षेप से चिढ़कर पादरी शूल्ब्रेड ने कहा कि ऐसी बातों से कभी आपको कैद भुगतनी पड़ेगी। महर्षि ने निर्भय मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'सत्य के लिए कारावास में कोई लज्जा नहीं है।'

पादरी का एक पत्र—ऊपर हमने पादरी राबिन्सन के पत्र का एक भाग उद्धृत किया है। 'दयानन्द प्रकाश' में लिखा है कि इन पादरी महाशय ने महर्षि को एक पत्र दिया था जिसमें लिखा था कि 'स्वामी दयानन्द वेदों के एक विख्यात विद्वान् हैं। मैंने सम्पूर्ण

जीवन में इन जैसा संस्कृत का दूसरा पंडित नहीं देखा।...देवेन्द्रबाबू के उपरि उद्धृत पत्र के शेष भाग से इसके विपरीत यह ज्ञात होता है कि पादरी राबिन्सन की सम्मति में स्वामीजी तब तक यजुर्वेद से ही परिचित थे।'......उन्होंने स्वीकार किया कि उन्होंने ऋग्वेद नहीं पढ़ा'...'यदि ईश्वर सर्वव्यापक है तो वह स्वयं 'सर्व' नहीं हो सकता—इस युक्ति का वे उत्तर नहीं दे सके।' 'अजमेर आने से पहले उनके पास खिस्ती धर्म की पुस्तकें नहीं थी, इस कारण वह विचार करने को प्रस्तुत नहीं थे।' 'दण्डी जी चाहते थे कि ईसाई भी सरकार की सहायता से मूर्तिपूजा रुकवाने में उनकी सहायता करें।' पं० घासीराम जी ने इस पत्र पर टिप्पणी करते हुए ठीक ही लिखा है कि राबिन्सन साहब के इस वर्णन पर आश्चर्य भी होता है और और हंसी भी पादरी, साहब की भला यह कौनसी युक्ति थी जिसका उत्तर महर्षि न दे सके होंगे। जिस मन्त्र का महर्षि अर्थ न कर सके उस अथवा उनका प्रकट न करने से ही पादरी साहब के वर्णन की सत्यता की जांच हो सकती है।

अधिकारियों से भेंट—अजमेर में उन दिनों गवर्नर जनरल के एजन्ट का निवास स्थान था। महर्षि गोवध को देश की आर्थिक दृष्टि से कितना हानिकारक समझते थे और इसे कानूनन बन्द करवाने का उनका कितना आग्रह था इसका ज्ञान उनकी इस यात्रा में अजमेर के अंग्रेज अधिकारियों से हुई बातचीत से भली भांति होता है। पहले डिप्टी कमिश्नर मेजर ए. जी. डेविडसन से बातचीत हुई। महर्षि ने बताया कि आप भी राजा हैं—प्रजा राजा के पुत्रवत् है। आपके शासन में मत-मतान्तरों के लोग भोली प्रजा को ठग रहे हैं—आपका धर्म है कि आप प्रजा की रक्षा करें।' अंग्रेज बहादुर का उत्तर था—धर्म में शासक हस्तक्षेप नहीं कर सकते। असिस्टैंट कमिश्नर अपटन साहब से भी महर्षि की भेंट हुई।

गोवध रुकवाने का पहला प्रयत्न—कर्नल ब्रुक गवर्नर जनरल का एजन्ट था। यह गेरुए वस्त्र वाले से बहुत चिढ़ता था। इससे महर्षि की भेंट का एक सुयोग अकस्मात् बन गया। आप उस दिन लाला बंशीलाल के उद्यान में बैठे थे कि कर्नल ब्रुक उधर आ निकला। पं० वृद्धिचन्द्र जो आपसे अष्टाध्यायी पढ़ते थे; बोले—"महाराज ! आप कुर्सी दूसरी ओर करलें।" परन्तु ऋषि ने कुर्सी और आगे बढ़ाली। कर्नल बाग के भीतर आगये। उसके समीप पहुँचने से पहले ही अपनी मर्यादा के विचार से (?) कुर्सी छोड़ टहलने लगे। परन्तु कर्नल समीप आकर टोपी उतार कर आपकी ओर बढ़ा—और आपसे हाथ मिलाकर आपके सामने की कुर्सी पर बैठ गया। फिर दोनों में वार्तालाप होने लगा।

इस वार्तालाप में महर्षि ने कर्नल को यह मानने के लिये बाध्य कर दिया कि एक गौ से ही अनेक मनुष्य पलते हैं और गोवध से हानि होती है। फिर गोवध क्यों करते हैं के उत्तर में कर्नल ने आपको दूसरे दिन कोठी पर आने का निमन्त्रण दिया। अगले दिन गाड़ी भेज कर बुलाया। जोशी रूपराम भी आप के साथ गए। पौन घंटे तक बात चीत हुई। गोवध से हानि स्वीकार करने पर भी कर्नल ने इतना ही किया कि गवर्नर जनरल के नाम एक चिट्ठी दी और कहा कि गोवध रुकवाना मेरे अधिकार से बाहर है।

कर्नल ने जयपुर के महाराजा रामसिंह को भी एक चिट्ठी लिखी। इसमें लिखा कि शोक है कि आपने ऐसे वेदवक्ता से भेंट नहीं की। इस पर महाराजा को पश्चात्ताप हुआ और अचरौल के ठाकुर से उन्हें बुलाने को कहा। ठाकुर साहब ने बताया कि मैंने उन्हें जयपुर बुलाया है, वे आयेंगे तो आपको बतलाऊंगा।

राम-सनेहियों से—अजमेर में ऋषि के निवास स्थान के

समीप रामसनेहियों के एक महन्त का आवास ज्ञात हुआ। कुछ स्त्रियां उधर जा-आ रही थीं। पता लगने पर ऋषिने इन्हें शास्त्रार्थ के लिए बुलाया, उनके न आने पर स्वयं उनके यहां जाने को तय्यार हुए, उन से यह भी कह दिया कि कि मेरे आने पर आप अपने स्थान पर ही बैठे रहें—शास्त्रार्थ अवश्य करें। एक पत्र भी आपने उनके मत के खंडन में भेज दिया। परन्तु वे रात्रि में ही अजमेर छोड़ कर चलते बने।

बच्चूलाल जैनी से तीन दिन तक धर्म विषय पर वार्तालाप हुआ। दिल्ली वाले पं० हरिश्चन्द्र के गुरुभाई दिल्ली निवासी एक और पंडित से भी वार्तालाप होता रहा। दोनों ने ऋषि के पांडित्य की सराहना की। पंडित ने प्रसन्न होकर एक दिन भोजन कराया।

धन्नालाल जैनी प्रश्नों के उत्तर पाकर भी हठ पर दृढ़ रहा उसके पास एक पुस्तक थी—महर्षि ने उसे अपने पास रखते हुए कहा—कल आना, फिर भली भांति समझा देंगे। परन्तु फिर न आया। डि० कमिश्नर के पास जाकर बोला—मेरी पुस्तक स्वामी जी ने छीन ली है। साहब ने राय दौलतराम से कहा। उन्होंने महर्षि से वह पुस्तक दिलवा दी।

विचारधारा—इस अध्याय को समाप्त करने से पहले इतना निर्देश करना आवश्यक है कि इस समय तक महर्षि जी के धार्मिक सुधार सम्बन्धी विचार अपना पूरा निश्चित आकार नहीं बना पाये थे। मूर्ति-पूजा का वे स्पष्ट खण्डन करते थे, पर शैवमत का समर्थन भी करते थे—यद्यपि शिवलिंग की पूजा करते उन्हें किसी ने कहीं भी नहीं देखा। शैवों की भांति रुद्राक्ष पहनते और विभूति लगाते थे। आगरा में पं० सुन्दरलाल जी को पार्थिव पूजा करते जानते हुये भी स्पष्ट निषेध नहीं करते ग्वालियर में शिव-सहस्र नाम का जप करते

और दुर्गा-सप्तशती, लिंग पुराण तथा शिव पुराण के पढ़ने का आदेश देते थे। परन्तु महारुद्र मोटेश्वर के मन्दिर का प्रसाद भी ग्रहण नहीं करते थे। बाबू देवेन्द्रनाथ के नोट का सारांश यह है कि 'शिव की अकृत्रिम मूर्ति की पूजा को छोड़ कर शेष सब प्रकार की मूर्ति पूजा के विरोधी थे।' पं० लेखराम जी के लेखानुसार इस समय भी वे परमात्मा को शिव मानते थे, पार्वती के पति शिव को नहीं।' हमें तो स्वामीजी के कार्य और विचारधारा में सामंजस्य की यही सरणि उचित प्रतीत होती है। शिव के प्रति पैतृक आस्था रखते हुए भी वे उसकी किसी प्रकार की पार्थिक पूजा का विचार नहीं रख सकते थे—फिर शिव की अकृत्रिम मूर्ति का अभिप्राय भी क्या—मूर्ति तो सभी कृत्रिम हैं। जयपुर में शिवमत का समर्थन यह अवश्य सिद्ध करता है कि अभी तब वे अपनी विचारधारा को सर्वथा नई दिशा में प्रवाहित नहीं कर पाए थे। सन्ध्या गायत्री का उपदेश देते थे। सूर्य को अर्घ्य देने में उन्हें उस समय विश्वास था।

किशनगढ़ में फिर शारीरिक विरोध—अजमेर से लौटते हुए महर्षि फिर किशनगढ़ ठहरे। यहां के नरेश पृथ्वीसिंह वल्लभकुल सम्प्रदाय के थे और स्वामी जी के विरोधी थे। परन्तु पं० कृष्णवल्लभ जोशी और राजमाता के दीवान महेशदास आपके प्रेमी थे। यहां ठाकुर गोपालसिंह (सम्भवतः राजा का भी हाथ हो) ३०-४० मनुष्यों और ४-७ पंडितों के साथ ऋषि को अप्रतिष्ठित करने के अभिप्राय से डेरे पर आया। महर्षि यथा-समय उनके मध्य विराजमान हुए। पूछने पर आपने वल्लभकुल सम्प्रदाय का खण्डन आरम्भ किया ही था कि ये लोग आप पर आक्रमण के लिये उद्यत हो गये। महर्षि खड़े हो गये और उन्हें ललकारा। इतने में आपके दूसरे भक्त पहुँच गये और वे लोग उन्हें देख कर चलते बने।

किशनगढ़ में ४ दिन ठहर कर वे दूदू पहुँचे! यहां से तीन दिन

पश्चात् बगरू गये। यहां केवल एक रात ठहरे। यहां से चलकर अचरौल के ठाकुर रणजीतसिंह के बाग में उतरे।

महाराज जयपुर का अभाग्य—जयपुर पधारने पर अचरौल के ठाकुर साहब ने अपने वचन के अनुसार महर्षि के पधारने की सूचना तत्काल दी। राजा साहब ने उन्हें महलों में लिवालाने का अनुरोध किया। पहले तो महर्षि ने स्वीकार किया परन्तु बाद में बहुत से प्रतिष्ठित ठाकुरों के अनुरोध पर वे मौज मन्दिर में पहुँचे। दैव योग से राजा साहब उसी समय अन्तःपुर में प्रविष्ट हो गये और एक चेले ने आकर कहा कि अब राजा साहब बाहर नहीं पधारेंगे। इस पर सब लोग वापस लौट आये और फिर महाराज के अनेक यत्न करने पर भी महर्षि महलों में नहीं गये।

आधे आश्विन तक जयपुर में ठहर कर हरिद्वार के कुम्भ और आगरा के दरबार इन दो अवसरों से लाभ उठाने की दृष्टि से महर्षि आगरा की ओर चल पड़े।

'पाखंड खंडन का प्रकाशन'—कार्तिक वदी ६ संवत् १६२३ (सन् १८६६) के निकट महर्षि आगरा पहुँचे। इन दिनों वहां लार्ड लारेन्स के दरबार की चहल-पहल थी यहां अनेक राजा—महाराजाओं का जमाव था। इस अवसर पर बांटने के लिए महर्षि ने भागवत के खण्डन में एक पुस्तक ७-८ पृष्ठ की छपवाई। इसकी कई सहस्र प्रतियां आगरे में बांटी; शेष हरिद्वार लेते गये।

आदर्श गुरु-शिष्य का अन्तिम मिलन—आगरा से महर्षि मथुरा पधारे। और पांच विद्यार्थियों सहित गुरु-चरणों में उपस्थित होकर एक अशर्फी (देवेन्द्र बाबू ने दो लिखी हैं और मलमल का एक थान भेंट किये तथा अपनी लिखी पुस्तक सुनाई। दंडीजी ने

प्रफुल्लित मन हो आशीर्वाद दिया। यहां महर्षि ने अपने अनेक संदेहों की निवृत्ति की। फिर हरिद्वार जाने की अनुमति प्राप्त कर मेरठ की ओर चल पड़े।

अभ्रक भस्म का प्रभाव—मेरठ में आप सूर्यकुंड पर देवी के मन्दिर में उतरे। यहां के सुप्रसिद्ध रईस पं० गंगाराम डाकवालों से उनका परिचय हुआ। पं० गंगाराम ने आप से कृष्ण अभ्रक की चर्चा चलाई। आपने उसे एक पुड़िया दी और अपने पास की सारी दिखला भी दी। पूछने पर महर्षि ने बताया कृष्ण अभ्रक बाजीकरण औषधि है। परन्तु काम-वासना जीतने का उपाय एकांत-वास, नाच-गान से परे रहना, प्रणव का दिन रात जप, अत्यन्त आलस्य आने पर ही निद्रा—आदि हैं। इन उपायों के साथ-साथ इस औषधि सेवन करने वाले व्यक्ति को काम-वासना नहीं सताती और उसका शरीर पुष्ट रहता है।

कीमिया का नुस्खा—आपने यह भी बताया कि किसी साधु ने उन्हें कीमिया (पारे से सोना चांदी बनाने की विधि) करना बताया था—परन्तु हमने किया नहीं, न उस पर विश्वास है। वह विधि यह थी—एक हाथ ऊंचा भिलावे का वृक्ष लो; वर्मा से उसे तले तक छेद लो; उसमें पहले पारा डालो; फिर फिटकरी, फिर पारा। पूरा भर कर चारों ओर से खोद कर पत्तों सहित जला डालो तो चांदी की डली निकलेगी।

यहां से चल कर ऋषि दयानन्द कुम्भ के स्नान की तिथि से एक मास पूर्व फाल्गुन शुक्ला प्रतिपदा अथवा सप्तमी सं० १९२३ (१२ अथवा १९ मार्च सन् १८६७) को हरिद्वार पहुँचे।

❀❀:❀

: ६ :

सङ्गठन से पूर्व

(संवत् १९२४ से सं० १९३० तक)

त्यागयज्ञ पूर्णाहुति

पाखण्ड-खंडिनी पताका—प्रथमबार जब संवत् १९१२ में कुम्भ के अवसर पर ऋषि दयानन्द हरिद्वार आये तो वे एक जिज्ञासु एवं दर्शक के रूप से मेले में एकत्रित हजारों साधु सन्तों और त्यागियों में गिने गये। न उनकी ओर किसी का ध्यान था—न उन्हें ऐसा कोलाहल प्रिय था। मेला समाप्त होते हुए वे उत्तर की ओर चले गये। सच्चे योगी-यतियों की खोज में गंगापार चण्डी के जंगल में भले ही उनकी दृष्टि लगी रही हो !

आज परिस्थिति भिन्न थी। गुरुविरजानन्द के प्रदान किये ज्ञानांजन से उनके नेत्र खुल चुके थे। फिर ज्ञान-पथ के प्रदर्शक गुरु के आदेश पर देश एवं जाति की पूर्ण प्रतिष्ठा के पुनः स्थापन का व्रत धारण कर ऋषि का आत्मा पवित्र, निर्भय एवं निर्लेप हो चुका था। देश और जाति की दुर्दशा का चित्र उनकी आंखों के सामने नाच रहा था। धर्म-प्राण, परन्तु अवनति के गढ़े में वेग से धंसी जा रही हिन्दू जाति को बचाने का एक मात्र उपाय था धर्म के सच्चे स्वरूप का प्रचार ।

प्रचार के प्रारम्भिक समय में वे अपनी लेखनी, वाणी और योग-सामर्थ्य का कुछ-कुछ प्रयोग कर इनके प्रभाव का अनुभव ले चुके थे। वे चाहे प्रचार की दिशा की सुनिश्चित रूप रेखा नहीं बना पाये हों, परन्तु आत्म-विश्वास की दृढ़ भूमि पर उनके पैर टिक चुके थे। रही-सही शंकाओं का श्री-गुरु चरणों में बैठ समाधान कर उन्होंने हरिद्वार कुम्भ के महान् मेले में जाने की अनुमति मांगी। पाखण्ड का विशाल समुद्र उनकी दृष्टि के आगे नाच रहा था—वहां एकत्रित होने वाले यति-जतियों की करतूतों से भली भांति परिचित जो हो चुके थे। पर्व की तिथि से एक मास पूर्व ही पहुँच कर हृषीकेश और हरिद्वार के मध्य हरिद्वार से तीन कोस पर स्थित सप्तसरोवर नामक तीर्थ पर आपने डेरा डाला। ८-१० छप्पर और चारों ओर बाड़ा, साथ में १५-१६ संन्यासी और ब्राह्मण थे। वस्त्र गेरुवे, गले में रुद्राक्षमाला जिसमें स्फटिक का एक मनका। और इस डेरे के बीचों-बीच फहरा रही थी 'पाखंड खंडन' शब्दों से अंकित भगवा पताका!

अद्भुत संन्यासी—डेरा लगा और प्रवचनों का तान्ता लग गया। मूर्तिपूजा, भागवत; अवतारवाद, तीर्थ, तिलक, छाप, कंठी, चक्रांकन के प्रबल खण्डन की चर्चा मेले में बिजली की भांति कौंध गई। सबके मुंह से एक ही बात सुनाई देती थी—संन्यासी के अद्भुत-पन की। संन्यासी होकर धर्म का खंडन! धर्म के ठेकेदार उन्हें नास्तिक कह कर, कलियुग को दोष दे-देकर और गाली भी देकर अपने मन का गुब्बार निकालते। परन्तु साधारण-जन के सन्तप्त हृदय उपदेशामृत पी-पी कर परम शांति लाभ करते—उनके ज्ञानचक्षु खुलने लगे। धीरे-धीरे प्रशंसकों, भक्तों और अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई। कुछ संस्कृतज्ञ उत्तर देने का भी प्रयत्न करने लगे, पर महर्षि का-सा उक्ति प्रवाह संगठन, और लक्ष्य की एकाग्रता कहां से लाते! निरुत्तर हो जाते। काशी के प्रसिद्ध पंडित विशुद्धानन्द सरस्वती भी आये! यजुर्वेद

के मंत्र 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्०' का अर्थ करने लगे—ब्राह्मण ईश्वर के मुख से उत्पन्न हुए, आदि। महर्षि ने टोका—मुख से तो खँखार भी उत्पन्न होता है। फिर ठीक अर्थ बताया—ब्राह्मण समाज में मुख के समान हैं आदि। जनसमाज कृतकृत्य हो उठा। गुण-कर्मस्वभावानुसार वैदिक वर्ण-व्यवस्था का अनायास ही प्रतिपादन हो गया।

इस अवसर पर कोई विशेष शास्त्रार्थ नहीं हुआ। परन्तु धर्मचर्चा खूब हुई। दादूपंथी स्वामी महानन्द संस्कृतज्ञ थे। आप महर्षि के उपदेश से प्रभावित होकर वैदिक धर्म के अनुयायी और प्रचारक बने। देहरादून के आर्यसमाज मन्दिर में उन्हीं की स्मृति में महानन्द पुस्तकालय स्थापित है।

बहुत से श्रद्धालु फल, मेवा, मिष्टान आदि से सत्कार करते थे; महर्षि सारी सामग्री दीन-दरिद्रों में बांट दिया करते थे।

भागवत के खण्डन में लिखी पुस्तकों की हजारों प्रतियां बंटवाई गईं। स्वामी विशुद्धानन्द और गोसाइयों के झगड़े में पड़ने से आपने निषेध कर दिया—उन्हें भला ऐसे सांसारिक झगड़ों से क्या मतलब था! निर्मला साधु सन्तसिंह को अनार्षग्रन्थ 'चित्सुखी' का अर्थ तो बता दिया परन्तु साथ ही कह दिया कि अनार्ष होने से उन्हें यह ग्रन्थ मान्य नहीं है।

सर्वमेधयज्ञ—और फिर आन पहुँचा नाटक का सबसे अधिक लोम हर्षण दृश्य! हरिद्वार के कुम्भ पर एकत्रित लाखों गृहस्थ साधुओं की दशा देखकर महाराज का भावनाप्रवण हृदय दयार्द्र हो उठा। दयानन्द ने विचार किया-जिन साधु-सन्तों (?) के चुँगल से भोली जनता की रक्षा करनी है, वे आदर्श को देखे बिना भला अपन सुखविभव को क्योंकर छोड़ेंगे? और जबतक ये अपना स्वार्थ नहीं छोड़ते, जनता

को धर्म लाभ कैसे होगा ? लोभवश साधु-सन्तों में खुद ही अनेक वर्ग-प्रतिवर्ग विद्यमान हैं ।

यों तो वे अपने घर का वैभव छोड़कर ही मुक्तिपथ पर अग्रसर हुए थे—परन्तु गुरु विरजानन्द को जीवन-अर्पित कर तो वे और भी निश्चित हो चुके थे। अब मुक्ति का परमानन्द भी आकर्षण की वस्तु न रह गया था। वस्त्र, पुस्तक,धन – जो कुछ भी उनके पास था—छोड़कर ही मन निश्चिंत हुआ । केवल एक मात्र एक लंगोटधारी होकर कुटी से निकल पड़े । प्रचार के लिए अथवा यों कहिए पाखंड के अभेद्य दुर्ग पर विजय प्राप्त करने की नई योजना बनाकर उसे क्रियारूप में परिणत करने की इच्छा से वे गंगातट पर विचरने लगे। इस समय वे मौन रहते थे, और केवल संस्कृत में भाषण करते थे । यह घटना मेला समाप्ति के १०-१२ दिन पश्चात् की है।

इस समय स्वामी जी ने पं० दयाराम के हाथ, महाभाष्य की एक प्रति ३४) रु० तथा मलमल का एक थान—ये सब वस्तुएँ विरजानन्द जी के लिए भेजी थीं।

इस प्रकार आवश्यकताओं के बन्धन से छूट वे अब निर्द्वन्द्व हो पन्थाइयों का सामना करने लगे । सारे तन पर भस्म रमा एक कौपीन धारण कर मौनावलम्बन कर लिया। व्याख्यान-वादविवाद भी बन्द कर दिया परन्तु यह मौन अधिक दिन नहीं चला। हरिद्वार में ही एक दिन आपकी कुटी पर किसी ने चिल्ला-चिल्ला कर कहना शुरू किया-'निगम कल्पत्तरोर्गलितं फलम्' वेद से भागवत उत्तम है। असत्य को वे सहन न कर सके और मौन छोड़ भागवत का खण्डन करने लगे।

गंगातट विचरण

विचार धारा—हरिद्वार से चलकर स्वामीजी महाराज ५-६

दिन के लिए हृषिकेश गये । फिर वहां से लौटकर कनखल होते हुए लंढौरा पहुँचे । २॥ वर्ष के गंगातट विचरण की यह पहली मंजिल थी।

प्रचार-पर्यटन की इस अवस्था में ऋषि दयानन्द ने आर्यजाति के एक एक रोग को नष्ट करना और धर्म के सच्चे स्वरूप को प्रकाशित करना अपना लक्ष्य बनाया । इस समय वे प्रायः संस्कृत में ही व्याख्यान दिया करते थे । जहां कहीं जाते नीचे लिखी आठ गप्पों का खंडन करते (१) अठारह पुराण (२) मूर्तिपूजा (३) शैव, शाक्त, रामानुज आदि सम्प्रदाय (४) तन्त्रग्रन्थ, वाम मार्ग आदि (५) भांग, शराब आदि मादक द्रव्य (६) पर स्त्री गमन (७) चोरी (८) छल अभिमान झूठ आदि । इसके अतिरिक्त ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य सबको समानरूप से गायत्री-जाप व यज्ञोपवीत धारण करने के समानाधिकार का प्रचार करते थे ।

कार्य-क्रम—कार्य क्रम का प्रधानरूप खण्डनात्मक था । आवश्यकतानुसार शास्त्रचर्चा और शास्त्रार्थ भी करते थे । लोगों को सन्ध्या गायत्री सिखाते – कहीं कहीं मनुस्मृति और उपनिषद् भी पढ़ाते । यज्ञ कराते और यज्ञोपवीत धारण कराते । गङ्गातट निवासी सहस्रों जनों ने आपके इस पर्यटन में आत्मिक लाभ प्राप्त किया । परन्तु यह सब करते हुए वे निर्द्वन्द्व रहते, जब चाहते बिना बताये, कहे-सुने चल पड़ते । गर्मी-सर्दी सबमें एक रस, एकमात्र एक कौपीनधारी और भस्म रमाकर रहते ।

कुछ अमर घटनाएं—हिन्दू जनता ने स्वयं धर्माधर्म के विषय में विचार करना छोड़ दिया था । वह पण्डितों व पुरोहितों की गुलाम हो गई थी । इस लिये महर्षि ने, जैसा कि हम ऊपर लिख

चुके हैं, सामान्य व्याख्यान-शैली के साथ-साथ शास्त्रार्थ को भी साधन बनाया। मुख्य मुख्य स्थानों पर जाकर व्याख्यान दिये। वहां के पंडितों को मूर्तिपूजा, मृतकश्राद्ध, वर्ण-व्यवस्था आदि विषयों पर शास्त्रार्थ के लिए ललकारा। बहुत जगह तो पण्डितों को सामने आने का साहस ही नहीं हुआ। अनूपशहर आदि में पण्डितों ने अपनी पराजय स्वीकार की और मूर्तियां गंगा में बहा दीं। इसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा। देखादेखी सब लोगों ने मूर्तियां बहा दीं तथा कण्ठियां तोड़ दीं। कुछ लोगों से यह न सहा गया, उन्होंने महर्षि को पान में जहर दे दिया। महर्षि ने न्योली क्रिया द्वारा वह विष निकाल दिया। जब उनके भक्त सय्यद मुहम्मद तहसीलदार ने अपराधी को कठोर दण्ड देने के लिए इच्छा प्रकट की तो आपने जो उत्तर दिया वह उनकी अमर ज्योति को सदा जगाए रखेगा। आपने कहा—"मैं दुनियां को कैद कराने नहीं आया, वरन् कैद से छुड़ाने आया हूँ।" ऐसी घटना केवल अनूपशहर में ही नहीं हुई प्रत्युत शास्त्रार्थ से पराजित हुए ब्राह्मणों ने अनेक स्थानों पर ऐसे कुत्सित उपायों का अवलम्बन किया। मथुरा तथा कर्णवास आदि स्थानों पर उन्हें गुन्डों से पिटवाने तथा वेश्या आदि द्वारा भरी सभा में अपमानित करने की कोशिश की गई। परन्तु सूर्य पर फैंका हुआ थूक सदा फैंकने वाले पर ही गिरता है। प्रयाग आदि अनेक स्थानों पर उन्हें विष देने के असफल व सफल प्रयत्न हुए। सदा सतर्क रहने के कारण वह बचते रहे। नीचे की पंक्तियों में यही वर्णन विस्तार से किया गया है।

निराहार रहे—महर्षि इन दिनों कई बार निराहार भी रहते-लंढौरा में तीन दिन के उपवास के पश्चात् तीन बैंगनों से क्षुधा निवृत्ति करनी पड़ी। शुक्रताल होते हुए मीरापुर जिला मुजफ्फरनगर पहुँचे। यहां एक पंडित से दो दिन तक शास्त्रार्थ किया। फिर मुहम्मद पुर जिला बिजनौर में एक पेड़ के नीचे बसेरा किया। परीक्षि-

तगढ़ होते हुए गढ़ मुक्तेश्वर पहुँचे। वहां भी तीन दिन निराहार रहे और अन्त में एक मांझी की रोटी में से आधी लेकर गुजारा किया। गढ़ मुक्तेश्वर में गंगा की रेती में पड़े रहते थे। यहां से क्षत्रियों की बस्ती कर्णवास में पहुँचे। यह स्थान अनूपशहर से १२ मील दूर गंगा के दक्षिण तट पर स्थित है। महर्षि के जीवन में इस स्थान का भी विशेष महत्व है। पहली वार यहां आप केवल एक ही दिन रहे और दो भक्त विद्यार्थियों को भागवत तथा कौमुदी के स्थान पर अष्टाध्यायी पढ़ने का उपदेश दिया

फरुखाबाद—हरिद्वार से लगभग १ मास पश्चात् ज्येष्ठ सं० १९२४ (सन् १८६७) में महर्षि दूसरी वार फरुखाबाद पहुँचे और लाला जगन्नाथ रईस के स्थान पर ठहरे। यहां प्रायः प्रश्नोत्तर रूप में ही उपदेश देते रहे। एक प्रश्न के उत्तर में आपने कहा—सूर्य और गंगा जड़ पदार्थ हैं। एक दिन समाधिस्थ थे—ला० जगन्नाथ और मन्नीलाल दर्शनार्थ पधारे। समाधि भंग होने पर प्रश्न के उत्तर में महर्षि ने बताया कि गायत्री जप से बुद्धि शुद्ध होती है।

अनूपशहर—तीन दिन के पश्चात् महर्षि अनूप शहर पहुँचे- इन दिनों कुछ रुग्ण थे—आठ दिन ठहरे। तुलसी दल, काली मिर्च घुटवा कर पी और मूंग की दाल में सौंठ डालकर पथ्य किया। यहां बूंदी राज के गुरु रामदास वैरागी रहते थे—वे मूर्तिपूजक नहीं थे, अतएव आप के मित्र बन गये।

आठ दिन पश्चात् ला० गौरीशंकर कायस्थ की बांसों की टाल से उठकर वे नगर के समीपतर नर्मदेश्वर के समीप सती की मढी में आ विराजे। मढी के समीप ही नवलगंज पहलवान का अखाड़ा था। यह पहलवान तथा उसकी बहिन सदाचार के लिए प्रसिद्ध थे। यह पहल-

वान श्री चरणों का भक्त हो गया। रात को उन पर कम्बल भी डाल दिया करता था। एक दिन कुछ वामी गुंडों ने शराब के नशे में महाराज से छेड़छाड़ करनी चाही; परन्तु नवलगंज को आता देखकर वे नौ-दो ग्यारह हो गये। यहां एक बुद्धा नाम का सुपठित ब्राह्मण भी आपका भक्त बना—आपने उसका नाम बुद्धिसागर रखा।

अनूपशहर से आप फिर वापस गढ़ मुक्तेश्वर की ओर आये और फिर सती की मढी में ही लौट आये। इन दिनों आप विशेष खण्डन नहीं करते थे। विशेष आग्रह ब्राह्मणों के उत्थान पर था: अतएव ब्राह्मणों को सन्ध्या, गायत्री, अग्निहोत्र करना सिखाते थे और मथुरा जाकर दंडी जी से व्याकरण पढ़ने का अनुरोध करते थे। किसी से कुछ नहीं चाहते थे। जो कोई जैसी भोज्यसामग्री लाता प्रसन्नता से स्वीकार कर लेते थे। यदि कुछ बच रहती तो भिक्षुकों को दे देते थे। बहुत सवेरे उठकर नित्य कर्मों से निवृत्त होते और आगन्तुकों से बातचीत करने बैठ जाते थे।

चक्राङ्कित नन्दराम का पलायन—अनूपशहर से आप जिला बुलन्द शहर के चांसी स्थान पर आविराजे। यहां नन्दराम ब्राह्मण चक्रांकित सम्प्रदाय का प्रचार कर रहा था। आपके आगमन का समाचार सुन बीस-पच्चीस ब्राह्मण और कुछ जाट नन्दराम को साथ ले महाराज की सेवा में पहुँचे। परन्तु बात भी न होने पाई थी कि नन्दराम हतप्रभ हो चुपके से खिसक गया और गंगा की परली बड़ी धार पार कर अहार पहुँचा। उसकी पोल खुल जाने से चक्रांकित धर्म में कोई व्यक्ति दीक्षित नहीं हुआ।

प्रथम शिष्य टीकाराम—चांसी से थारपुर (ताहिरपुर) और वहां से महर्षि राम घाट गये। यहां कर्णवास का निवासी एक सुविज्ञ

ब्राह्मण टीकाराम रहता था। पं० टीकाराम अपने एक साथी केशवदेव ब्रह्मचारी से आपकी प्रशंसा सुन, उसको साथले, आपकी सेवामें पहुँचा—बहुत आग्रह पर पण्डित टीकाराम ने गायत्री मन्त्र सुनाया, उसके शुद्ध उच्चारण पर महर्षि प्रसन्न हुए और उसे सन्ध्या का पाठ स्वयं लिखकर दिया। अब इनका धर्मालाप प्रतिदिन का नियम बन गया। पं० टीकाराम के संशय दूर होने लगे, मूर्तिपूजा पर से विश्वास उठ गया। उसने देव मूर्तियां गंगा के अर्पण करदीं।

कर्णवास में—पं० टीकाराम इतने सोत्साह हुए कि अपने यजमान ठा० गोपाल सिंह को आपका पूरा विवरण जा सुनाया और बताया कि मैं किस प्रकार उनका शिष्य बन गया हूँ और अब तुम्हारे मन्दिर में पुजारी का कार्य नहीं करूंगा। ठा० गोपालसिंह भी इस अद्भुत संन्यासी के आश्चर्योत्पादक विवरण से प्रभावित हुए और पं० टीकाराम को रामघाट भेजा जिससे कि वह महर्षि को कर्णवास में ले आये।

इधर महर्षि स्वयं ही कर्णवास पहुँच, गंगा के पक्के घाट पर विराजमान थे। उनके आने का समाचार फैलते ही दर्शकों का तांता बन्ध गया। भव्य-दर्शन प्रथम मिलन में ही भक्ति का बीज अंकुरित करता। आपकी ख्याति आस-पास के गांवों में भी फैल गई।

प्रथम शास्त्रार्थ—यहां महाराज कई मास रहे। लोगों में श्रद्धा के भाव बढ़ते देख पंडित भगवानदास आदि पंडित मन ही मन कुढने लगे। इन्हीं पंडित भगवानदास ने आरम्भ में आपके भोजन का भार सम्भाला था परन्तु उन्हें कण्ठी, तिलक आदि के धारण का निषेध करते देख यह जल गया। फिर भोजन देना भी बन्द कर दिया। आश्विन में गंगा स्नान का मेला हुआ। इससे लोगों में आप की ख्याति और भी बढ़ी। अब पण्डितों से न रहा गया। उन्होंने अनूपशहर

निवासी पंडित अम्बादत्त पर्वती को शास्त्रार्थ के लिए तय्यार कर लिया; शास्त्रार्थ हुआ। पण्डित अम्बादत्त ने सत्यप्रियता के कारण महर्षि के कथन की सत्यता स्वीकार की और मूर्ति-पूजा को अवैदिक एवं त्याज्य घोषित कर दिया।

इस विजय से महर्षि की ख्याति द्विगुणित हो उठी। क्षत्रिय तो भारी संख्या में उनके अनुगत हुए और यज्ञोपवीत धारण कर स्वामी-उपदिष्ट पद्धति से नित्य कर्म करने लगे।

अहार व चासी में—कर्णवास से महर्षि अहार गये। वहां दो दिन हीरावल्लभ की कुटी में ठहरे। अहार से चासी पधारे। ये दिन कार्तिक-स्नान के थे। आपके डेरे पर भक्तों और श्रोताओं की भीड़ लगी रहती थी। पास ही में एक वैरागी का डेरा था। उसे यह सब बहुत खलता था—पर डर के मारे बोल न सकता था। आप उन दिनों पहले पहल लाने वाले का भोजन कर लेते थे—यह वैरागी इस बात को ताड़ गया। वह प्रतिदिन सबसे पहले दो-चार जले-भुने टिक्कड़ आपके सामने रख देता। वे उन्हें खा लेते और चुप रहते। धीरे-धीरे आप उसकी बात को ताड़ गये। वैरागी की इस वृत्ति को अनुभव कर वे कुटिया को छोड़ अन्यत्र चले गये।

बल परीक्षा—जहांगीराबाद (जिला बुलन्दशहर) निवासी ओंकारदास एक समृद्ध और व्यायामशील पुरुष था। मेले में आकर वह भी श्री चरणों का भक्त बन गया। एक दिन चरण दबाने के बहाने इसने महर्षि के बल की परीक्षा की। उसने देखा आप के पैर लोहे की लाट हैं—पूरा बल लगा कर भी वह अपनी उंगलियां पैरों में न धंसा सका।

यज्ञोपवीत का नियम—पण्डित गंगाप्रसाद भक्त ने आपकी शिक्षा के अनुसार अनेक लोगों को यज्ञोपवीत धारण कराये थे। एक दिन

उसे आप से यह सुन कर आश्चर्य हुआ कि यज्ञोपवीत उतरवाये भी जा सकते हैं। उसने पूछा कब ? महर्षि ने कहा जब कोई अधर्म करे तब।

जगत् की सत्यता का चपत द्वारा मण्डन—खंदोई ग्राम के छत्रसिंह जाट ने एक बार नवीन वेदान्त पर वार्तालाप करते हुए अंत में कहा—महाराज आप जो चाहें कहें, परन्तु सत्य तो यही है कि जगत् मिथ्या है। महर्षि ने वाणी से कुछ उत्तर न देकर उसे एक चपत लगा दिया। उसे क्रोध आया। आपने कहा—चौधरी जी ! जब जगत् मिथ्या है और ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ दूसरा नहीं है तो वह कौन है जिसने आपके चपत लगाया ? छत्रसिंह इस अद्भुत युक्ति से सीधा हो गया। उसने उस दिन से नवीन वेदान्तवाद को छोड़ दिया।

धुनिए का कल्याण—एक धुनिया नित्य चाव से आपके उपदेश सुना करता था। एक दिन श्रद्धान्वित हो उसने पूछा—मुझ जैसे अज्ञजन के कल्याण का भी कोई उपाय है ? महर्षि ने उसे 'ओ३म्' का जाप और अपने व्यवहार में सच्चाई बरतने का उपदेश दिया। कहा—इसी से तुम्हारा कल्याण होगा।

श्राद्ध जीवित पितरों का ही मान्य था—चासी में महर्षि ने शफीपुर के मायाराम जाट से कहा था कि श्राद्ध जीवित पितरों का ही उचित है। इसकी पद्धति पं० ज्वालाप्रसाद को लिखवा दी थी। पं० लेखराम जी इनसे मिले भी थे—परन्तु पद्धति के सम्बन्ध में कुछ नहीं पूछा। इस घटना से यह सिद्ध है कि मृत पितरों के श्राद्ध का उन्होंने कभी विधान नहीं किया। हस्तरेखा विज्ञान व ज्योतिष के जन्मपत्री बनाने आदि को गप्पाष्टक कहा करते थे। चासी से महाराज रामघाट गये। वहां से बैलोन होकर फिर कर्णवास आये। मार्गशीर्ष सं० १९२४ (सन् १८६७) में वे फिर रामघाट पर विराजमान दिखाई देते हैं।

कृष्णानन्द से शास्त्रार्थ—इस प्रवास में कृष्णानन्द वाममार्गी से शास्त्रार्थ हुए। ये अच्छे संस्कृतज्ञ प्रसिद्ध थे। इन्कार करने पर भी इसे महर्षि से शास्त्रार्थ करने को बाध्य होना पड़ा। किसी ने कृष्णानन्द से पूछा—महाराज ! महादेव पर जल चढ़ा आऊं ? महर्षि बोल पड़े महादेव तो कैलास पर है यहां तो पत्थर है। कृष्णानन्द ने अवतार वाद के समर्थन में भगवद्गीता का 'यदा यदा हि धर्मस्य' श्लोक उपस्थित किया। महर्षि ने कहा—ईश्वर तो निराकार है, वह देह धारण नहीं कर सकता। कृष्णानन्द उत्तर न दे सकने के कारण घबरा उठा। इस प्रकार तीन दिन तक बातें होती रहीं। कृष्णानन्द के निरुत्तर होने से जनसमूह पर भारी प्रभाव पड़ा। इस दृश्य का साक्षी ब्रह्मचारी क्षेमकरण, जो घोड़े पर मूर्तिपूजा का भारी बोझ लादे हुये है—अपनी मूर्ति को गंगा में प्रवाहित कर शान्तिलाभ करता है। यही ब्रह्मचारी क्षेमकरण पीछे संन्यासी बना।

बेलौन में—महर्षि, खेरा नामक स्थान पर एक पीपल के पेड़ के नीचे उतरे। यहां वे गायत्री का उपदेश देते, उसका जाप सिखाते; गायत्री पुस्तक की प्रतियां जो पण्डित इन्द्रमणि ने इनके पास बहुत संख्या में लिख कर रख दीं थी, बांटा करते थे। जिस प्रति को देते उस पर १००० लिख देते—जिसका अभिप्राय गायत्री का १००० वार जाप करने का था।

प्रश्नों के उत्तर में यहां आपने कहा—श्री राम और कृष्ण केवल प्रतापी राजा थे। गोपियों की रासलीला को उन्होंने मिथ्या बताया और गङ्गा को एक नदी।

कर्णवास में यज्ञोपवीत-यज्ञ

पं० हीरावल्लभ की न्यायप्रियता—बेलौन में ३-४ दिन

ठहर कर आप कर्णवास पहुँचे। पिछली वार पं० अम्बादत्त हार चुके थे—वे अपना कलंक मिटाने के हेतु अनूपशहर से पं० हीराबल्लभ को बुला लाये और पौष मास में यह शास्त्रार्थ रचा गया। पं० हीरावल्लभ बड़े ठाठ से आये—साथ में था देवमूर्तियों का सिंहासन। उनका निश्चय था—दयानन्द को हराकर मूर्तियों को भोग लगवाने का। ५ दिन तक शास्त्रार्थ चला, छठे दिन पं० हीरावल्लभ ने हथियार डाल दिये। पण्डित जी बहुत न्यायप्रिय सिद्ध हुए, आपने अपने निश्चयानुसार, हार जाने पर, नहीं-नहीं मूर्तिपूजा के प्रति वस्तुतः श्रद्धा के भाव न रहने पर मूर्तियों को गंगार्पण कर दिया। उनका अनुकरण और भी सैकड़ों मनुष्यों ने किया।

इस सफलता के पश्चात् महर्षि की यशः-पताका का गौरव इतना बढ़ा कि चारों ओर से शुभ समाचार सुनाई दिये। महाराज के कर कमलों से यज्ञोपवीत धारण करने वालों की संख्या बढ़ती गई। विधि पूर्वक यज्ञ सम्पन्न किया गया—लगभग ४० व्यक्ति शिक्षित और दीक्षित हुए। क्षत्रियों के कुल-गुरुओं ने भी अपने शिष्यों का अनुकरण कर मूर्ति पूजा छोड़ दी और कण्ठी तोड़ डाली।

नौमुस्लिम की शुद्धि—धर्मपुर निवासी एक नौमुस्लिम मुसलमान रईस को शुद्ध होने के सम्बन्ध में आपने कहा—यदि धर्म का आचरण करोगे तो शुद्ध हो जाओगे।

ग्रहण में भोजन— माघ कृ० १५ सं० १९२४ (सन् १८६८) को सूर्य ग्रहण था। हजारों नर-नारी कर्णवास में स्नान के लिए एकत्रित थे। महर्षि ने पूछने पर बताया ग्रहण का सूतक कोई वस्तु नहीं है, जब भूख लगे खाना चाहिए। जो लोग सूतक मानने वाले थे उनके साथ बड़ा मनोरञ्जन तब हुआ जब कि ग्रहण का समय अज्ञात

होने के कारण पहले तो वे स्नान-भोजन के बैठे रहे और जब स्नान करके भोजन करने लगे तो ग्रहण पड़ गया।

खंडन-मंडन बखेड़ा नहीं—यहां पं० इन्द्रमणि ने महर्षि से प्रश्न किया कि आप अवधूत संन्यासी होकर खण्डन-मण्डन के बखेड़े में क्यों पड़े? महर्षि ने उत्तर दिया—मेरे लिए यह ऋषि-ऋण चुकाना है, बखेड़ा नहीं। ऋषि-सन्तान को कुरीतियों के कुचक्र से छुड़ा सन्मार्ग प्रदर्शित करने का मैंने प्रण कर लिया है।

यज्ञोपवीती विरुद्ध सत्कर्मी—महर्षि इन दिनों संस्कारों पर बल देते थे और कहते थे द्विजमात्र के लिए यज्ञोपवीत संस्कार आवश्यक है—इसके बिना वैदिक कर्म करने का अधिकार नहीं है। एक और प्रश्न के उत्तर में आपने कहा—पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि सत्कर्म करने वाले अनुपवीत मनुष्य से अशुभ कर्म करने वाला उपवीत पुरुष श्रेष्ठ हो जाता है—उत्तमता तो कर्म पर ही निर्भर है।

स्त्री को गायत्री जप का अधिकार— हंसा ठकुरानी ठा० गोपालसिंह की ९० वर्षीया वृद्धा ताई थी। वह ५-६ ग्रामों की स्वामिनी होकर भी बड़े संयम का जीवन बिता रही थी। जौ की रोटी और मूंग की दाल का भोजन वह स्वयं अपने हाथ से बना कर खाती थी। परिवार में उसका बड़ा सन्मान था। जब उसके बेटे-पोते सब महाराज के शिष्य बन गये तो उसने भी श्रीदर्शनों की इच्छा प्रकट की। आपके आदेशानुसार वह उनकी सेवा में उपस्थित हुई। आपने उसे ओ३म् नाम व गायत्री मन्त्र के जाप का उपदेश देते हुए मूर्तिपूजा छोड़ देने का उपदेश दिया। चिरकाल पश्चात्, यह पहली वार अवसर हुआ था कि एक स्त्री को गायत्री के जप का अधिकार मिला हो। यह श्रद्धालु माता अपने अन्तिम समय तक महर्षि के उपदेश पर दृढ़ रही।

कुरान पर चर्चा—यहां के दरोगा अलफखां ने कुरान के संबंध में बातचीत की। परन्तु आप के उत्तर सुनकर वह दुबारा नहीं बोला।

कलक्टर की भेंट—बुलन्दशहर के कलक्टर की महर्षि के प्रति भक्ति थी। एक दिन वह भेंट करने कुटी पर पहुँचा। कुटी से दूर रह कर एक आदमी को भेजकर उसने भेंट की आज्ञा चाही। आपने कहला भेजा, अभी तो अवकाश नहीं है। यह पूछने पर कब अवकाश होगा—महर्षि ने पुछवाया आपको कब अवकाश होगा। कलक्टर महोदय ने उत्तर में कहलवाया कि चार घण्टे पश्चात् मुझे अवकाश ही अवकाश है। महर्षि यह सुनकर कुटी से बाहर निकल आये। शिष्टाचार आदि के पश्चात् कलक्टर साहब को मनुस्मृति के आधार पर राजधर्म का उपदेश दिया और कहा जिस मनुष्य पर एक परिवार का बोझ है उसे तो सिर खुजलाने का भी अवकाश नहीं मिलता और एक आप हैं जो सहस्रों नरनारियों का बोझ लेकर भी कहते हैं चार घण्टे के पश्चात अवकाश ही अवकाश है!

जीवन-चर्या—महर्षि इन दिनों रात्रि के दो बजे उठकर गंगातट पर दूर निकल जाते और शौचादि से निवृत्त हो समाधिस्थ हो जाते। समाधि खुलने के पश्चात् व्यायाम करते और फिर कुटी के सम्मुख तख्त पर विराजमान होते। एक घण्टा दिन चढ़ने पर आगन्तुकों की भीड़ लग जाती। आप शङ्कासमाधान करते और उपदेश देते। शरीर पर रज लगाते और संस्कृत बोलते थे। एक लंगोट के अतिरिक्त कोई वस्त्र अथवा पात्र नहीं रखते थे। शीतकाल में भी वस्त्र न ओढ़ते थे, रात्रि में केवल पियार ऊपर डाल लेते थे। ईंटों का तकिया करते थे।

व्यक्तित्व—और इस प्रकार था उनका योग-साधन से तप्त,

सुदीप्त, सुडौल शरीर—जिस का व्यक्तित्व, सौन्दर्य और ओजस्विता देखने व अनुभव करने की ही वस्तु थे।

रतिराम नाम के पहलवान को अपने बल का बड़ा घमण्ड था। एक दिन वह उधर आ निकला—दूर से आपको देखकर अवज्ञा पूर्वक बोला—अरे, यह बाबा तो बड़ा हृष्ट-पुष्ट है। महर्षि ने उधर दृष्टि डाली। आपके नेत्रों में ऐसी ज्योति थी कि पहलवान की आंखें नीची हो गईं—वह श्री चरणों में लोटता दिखाई दिया।

पं० कमलनयन आदि पन्द्रह बीस पण्डित अति क्लिष्ट प्रश्न पूछने के अभिप्राय से आपके स्थान पर पहुँचे। आप आसन पर नहीं थे—ये प्रतीक्षा में बैठ गये। महर्षि पहुँचे और कुछ देर ध्यानस्थ हो गये। थोड़ी देर पश्चात् उन्होंने आगन्तुकों की ओर दृष्टिपात कर, प्रश्न पूछने की प्रेरणा की। परन्तु उनके व्यक्तित्व का ऐसा आतंक छा गया कि बेचारे पण्डित अपने सब प्रश्न भूल गये। महर्षि ने उपदेश देना आरम्भ किया और वे 'सत्य वचन, महाराज' ही कहते रहे। लौटते समय वे परस्पर कहने लगे, दयानन्द का यह अद्‌भुत जादू है, वशीकरण मंत्र है कि उस के सामने हमारी जबानों पर ताले लग गये! कौन जाने, यह निश्चय ही सिद्ध पुरुष है।

योग-बल से द्वन्द्व-विजय—यहां एक ऐसा अवसर हुआ कि ग्रीष्म शीत आदि द्वन्द्वों पर उनकी विजय का रहस्य समझने में भक्तों को सहायता मिली। एक दिन प्रातः काल अत्यन्त शीत पवन बह रहा था। कड़ाके की सर्दी में सर्वसाधारण का यह साहस न था कि गदेले और लिहाफ से बाहर अंगुली भी निकालते। परन्तु आप के कुछ भक्त ऐसे नियम के पक्के थे कि वे ऋषि-वचन-सुधा के पान के अवसर को कभी हाथ से न जाने देते थे—गर्मी, सर्दी, धूप, वर्षा की उन्होंने कभी परवाह नहीं की। आप भी उपदेश के कार्य से कभी

विरत न होते थे। उस दिन भी प्रतिदिन की भांति महाराज पद्मासन लगा उपदेश देते रहे। भक्तजन रुई और ऊनी वस्त्र पहने हुए भी ठिठुर रहे थे—आप विवस्त्र भी अविचल थे। ठाकुर गोपालसिंह के पूछने पर आपने बताया कि ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास के कारण शीत का कोई प्रभाव उनके शरीर पर नहीं है। आप ने उसी समय दोनों हाथों के अंगूठों को दोनों घुटनों पर रख कर दबाया, लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब देखा कि महाराज के मस्तक व शरीर से पसीना चू रहा है! महाराज के योगबल में उन्हें पूरा विश्वास हो गया।

अभ्यास से सिद्धि—इस प्रकार कर्णवास में अपनी दिनचर्या व्यक्तित्व, प्रवचन, वार्तालाप और शास्त्रार्थ आदि अनेक प्रकार से सर्वसाधारण का मार्ग प्रदर्शन कर रहे थे कि एक दिन बिना किसी को सूचना दिए महाराज कर्णवास से आगे चल पड़े। इन दिनों गङ्गातट पर कहां-कहां विचरण करते रहे कुछ पता नहीं। परन्तु एक रात छिटकती चांदनी में, चमकते बालू के ढेर पर, कड़कड़ाते शीत के समय हम उन्हें समाधिस्थ पाते हैं। दो युरोपियन उस रात सम्भवतः शिकार के प्रयोजन से उधर आ निकले। एक साधु को ऐसे शीत में, नंगे शरीर, समाधिस्थ देख वे अपना काम भूल आश्चर्य चकित हो उसे देखने लगे। महाराज की आंख खुलने पर इन की बातचीत हुई। इनमें से एक बदायूँ का कलक्टर और दूसरा उस का मित्र पादरी था। कलक्टर साहब ने शिष्टाचार से पूछा कि आप को शीत नहीं सताता! उनका मित्र पादरी बीच में ही बोल उठा—अजी हां, माल खा कर मुटा गये हैं, इन्हें जाड़ा पाला क्या लगता! महर्षि हंसे और कहने लगे, महाशय हम दाल-रोटी के खाने वाले क्या माल खायेंगे—माल तो आप खाते हैं, मांस, अंडे और मदिरा। माल खाने से शीत रुकता है तो मेरे साथ कुछ देर बैठिये। इस पर वह लज्जित हो गया। आप ने बताया शीत न लगने का एक बड़ा कारण अभ्यास है। जैसे आप

का भी मुख सदा खुला ही रहता है, उसे ढकने की आवश्यकता नहीं पड़ती वैसे ही अभ्यासवश मेरा समूचा शरीर ही नग्न रहता है।

सोरों में विचरण

बलदेव गिरि भक्त बने—एटा जिलान्तर्गत सोरों का नाम संस्कृत में शूकरक्षेत्र है। यह एक प्रसिद्ध तीर्थ है। बराह का मन्दिर पुष्कर के अतिरिक्त यहां पर ही स्थित है। सं० १९२५ के आरम्भ में स्वामीजी महाराज इस क्षेत्र में पधारे। और लगभग ३ मास इधर रहे। गढ़ियाघाट सोरों के समीप ही है! आपका गढ़ियाघाट में आगमन सुन अम्बागढ़ (सोरों) के प्रतिष्ठित निवासी गोसाईं बलदेवगिरि आपके दर्शनार्थ पहुंचे। आपकी प्रतिष्ठा तो उनके आगे-आगे चल ही रही थी। बलदेवगिरि के साथ चक्रांकित पं० नारायण तथा अन्य पण्डित भी शंका समाधान के लिए आये थे। नारायण पंडित से शास्त्र-चर्चा हुई, वे निरुत्तर हो गये। ग साईं बलदेवगिरि पर महाराज के वार्तालाप, विचारशैली, विद्या, तप और तेज का इतना प्रभाव पड़ा कि वे अम्बागढ़ से प्रति दिन वहां धर्मचर्चा के लिए आने लगे। आपके भोजन की व्यवस्था भी उसने स्वयं संभाल ली।

ठाकुर का मान-मर्दन—यहीं एक दिन एक उजड्ड ठाकुर से इनका पाला पड़ा। सोरों चक्रांकितों का गढ़ था—और महाराज इस मत का विशेष रूप से खण्डन करते थे। निम्बार्क सम्प्रदाय का एक ठाकुर तीन साथियों सहित आया और अशिष्टता से महाराज के बराबर बैठ गया। बलदेवगिरि उस समय वही पर विद्यमान थे—उन्होंने रोका पर वह न माना। महाराज ने भी समझाया पर वह न बदला। महर्षि उठकर दूसरी मढी में चले गये। पर उसे तो अपने बल का घमण्ड था। अब वह बलदेवगिरि से ही भिड़ बैठा। उसके आदमी

बलदेवगिरि पर लपके। गिरि दण्ड-बैठक पेलने वाला दांव-पेचों का भी पूरा पण्डित पहलवान था। उसने एक का पकड़ा हाथ और दूसरे का झटका पांव, दोनों गिर पड़े। इनमें से एक की लकड़ी हाथ में आगई। इतने में और साथी भी आ पहुँचे। अब तो सबकी खूब आवभगत हुई। ठाकुर का भी जूड़ा पकड़ लिया और सब को नीचे धकेल दिया; वे फिसल कर गंगा की दलदल में जा फंसे। महर्षि ने बलदेवगिरि के शौर्य की खूब प्रशंसा की।

बलदेवगिरि के आग्रह पर महर्षि सोरों में आये और अम्बागढ़ में बलदेवगिरि के अतिथि बने। यहां १०,००० ब्राह्मण रहते थे; चक्रांकित सम्प्रदाय का जोर था; इन ब्राह्मणों को चक्रांकितों के जाल से निकालना ही महर्षि का उद्देश्य था।

शास्त्रार्थ—सोरों पहुँचते ही पंडित-दल में खलबली मच गई, शास्त्रार्थ करने का निश्चय हुआ। पंडित खमानी के नेतृत्व में वे सामने आये परन्तु दो चार बातों में ही निरुत्तर हो गये। खिज कर कोलाहल करने लगे परन्तु बलदेवगिरि के सामने शरारत चल नहीं सकती थी। इस शास्त्रार्थ के कारण पंडित गोविन्दराम चक्रांकित ने तो तत्काल ही महर्षि की शिक्षा ग्रहण करली।

पं० अंगद शास्त्री भी शिष्य बने—सोरों के समीप ही बदरिया ग्राम है। यहां के प्रसिद्ध व्याकरण शास्त्री पं० अंगदराम गुरु विरजानन्द जी से कौमुदी पढ़ चुके थे। उनकी इस क्षेत्र में अच्छी धाक थी। महर्षि की प्रशंसा सुन कर वे सोरों पधारे और शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट की। मूर्ति-पूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। पंडित अंगदराम आप के तर्क का खंडन नहीं कर सके। भागवत की चर्चा भी चली। आप ने इस ग्रन्थ की व्याकरण की अशुद्धियां भी प्रदर्शित कीं।

"*कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः*" में विस्तार के स्थान पर वंश अथवा वार्ता के अर्थ में *विस्तर* और नाप अर्थ में *विस्तार* होता है। आप के इस प्रतिपादन को पंडित अङ्गदराम ने स्वीकार किया। अन्त में पंडित अङ्गदराम इतने प्रभावित हुए कि उसी क्षण सबके सामने अपने शालिग्राम को गंगा की भेंट कर दिया। उन्हें देख आज बलदेवगिरि ने भी अपनी देव-मूर्तियों को गंगार्पित कर दिया।

सहपाठी का रोष—इन्हीं दिनों इनके सहपाठी पंडित युगल-किशोर यहां आये और आप से मिले। उनके गले में कण्ठी, माथे पर तिलक और शालिग्राम आदि को देख कर अङ्गद शास्त्री ने महाराज से कहा—इनसे यह सब क्यों नहीं छुड़वाते। महाराज ने कहा—ये मथुरा निवासी हैं, इसी पर इनका पेट चलता है। पं० युगलकिशोर इस पर रुष्ट हो चले गये और मथुरा में दंडी विरजानन्द जी से शिकायत की—कि दयानन्द तो अधर्म का प्रचार कर रहा है। दंडी जी ने कहा—हे युगलकिशोर! शालिग्राम क्या होता है? "शालीनांग्रामः स शालीयो ग्रामः" जब तुम्हारा शब्द (शालिग्राम) ही अशुद्ध है तो उसकी पूजा का क्या फल? कंठी, तिलक आदि का शास्त्रीय प्रमाण ही क्या है। पं० युगल किशोर क्या कहते! उन्होंने कहा—यदि ऐसा ही है तो लो और झट कण्ठी तोड़ कर फैंक दी।

पं० अङ्गद शास्त्री के मूर्तिपूजा छोड़ने का प्रभाव सोरों क्षेत्र में अद्भुत हुआ। सहस्रों मनुष्यों ने उनका अनुकरण किया। और संध्या-गायत्री का जाप आरम्भ कर दिया। वृन्दावन के रंगाचार्य प्रति वर्ष सोरों आकर लोगों को चक्रांकित किया करते थे; उन्होंने इधर आना ही बन्द कर दिया।

स्वा० कैलाशपर्वत से सन्धि प्रस्ताव—गढ़िया घाट पर

ही आगरा से पुराने परिचित स्वा० कैलाश पर्वत से भेंट हुई। लोगों ने उन्हें महर्षि के आन्दोलन को शान्त करने के लिए काशी से बुलाया था। आप उन्हें वहां देख कुटिया में गये और हंसी में कहा—इतना बड़ा कैलाश पर्वत कुटिया में कैसे समा गया। कैलाश पर्वत ने बताया कि स्वामी जी ने रामानुज, बल्लभ, निम्बार्क और माधव सम्प्रदायों का खंडन करने के लिये उनकी सहायता चाही थी। बदले में कैलाश-पर्वत ने उनसे मूर्ति पूजा और पुराणों का खंडन न करने की मांग की। महर्षि ने कहा—यही तो सारे झगड़े की जड़ और पाखंड के प्रचारक हैं—भला इनका खण्डन कैसे छोड़ा जा सकता है।

स्वामी कैलाशपर्वत का सोरों में बराह मन्दिर था। मूर्ति पूजा के खंडन के प्रबल वेग के कारण उसका कुपित होना स्वाभाविक था। उसने 'धर्म-संरक्षिणी' नामक एक लघु पुस्तक लिख कर अपने मत की पुष्टि करना और इस आंधी को रोकना चाहा, पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। सैकड़ों पुरुषों ने स्वा० कैलाश पर्वत के मन्दिर को त्याग दिया। यही एक ऐसा अवसर था जहां स्वा० कैलाश पर्वत ने महर्षि के विरुद्ध रोष प्रदर्शित किया और अपशब्दों से अपनी जिह्वा को भी कलुषित किया। महर्षिजी ने फिर भी उनका अपमान नहीं किया। कैलाश पर्वत भी वैसे सदा महर्षि की विद्या, वाग्मिता, तप, और त्याग की प्रशंसा करते रहे।

अपने व्यवहार से आदमी स्वयं भी शंकित हो जाता है। बलदेव गिरि को ऋषि दयानन्द के प्रति भक्ति का स्वामी कैलाश पर्वत को भली भाँति ज्ञान था। ऋषि के प्रति अपने अशिष्ट व्यवहार के समय ही किसी ने कैलाश पर्वत को कह दिया कि बलदेव गिरि आपको पीटने को फिरता है। कैलाश पर्वत ने पुलिस में रिपोर्ट कर दी और रक्षा के लिये कांस्टेबिल बुला लिये। जब बलदेवगिरि को कैलाशपर्वत

की इस भीरुता का ज्ञान हुआ तो उसने बड़ी कठिनता से उसके मन का यह भ्रम दूर किया।

इन्हीं दिनों एक नग्न साधु चिदानन्द आया। वह संस्कृतज्ञ था और मूर्ति पूजा की सिद्धि का दम भरता था। महर्षि ने पत्र लिखकर उसे चर्चा चलाने का उपक्रम किया परन्तु वह सामने नहीं आया। एक दिन उसे सोरों के मार्ग में महर्षि ने पकड़ा और कहा—मूर्ति पूजा सिद्ध करने वाला मन्त्र बोलो। पर उसने आपके सम्मुख मुंह नहीं खोला। एक घण्टा बीत गया—पर वह बुत की तरह चुप रहा। विवश हो महर्षि लौट आये।

कासगंज के पंडित अयोध्याप्रसाद और चेतराम भी महाराज के अनुगत हो गये। इनकी प्रेरणा से ही भागवत के पंडित सुखानन्द आपके पास आये। ज्योतिष पर विचार हुआ। इस प्रसंग में महर्षि ने 'शन्नो देवी' मन्त्र की ऐसी अपूर्व व्याख्या की कि पं० सुखानन्द मुग्ध हो गया। वह फिर छः दिन तक उनके पास जाता रहा और आपका अनुगत हो गया। इसने अपनी देव मूर्तियां भी गंगा को भेंट करदीं।

महाभारत का संशोधन—अम्बागढ़ निवास के समय पं० अंगदराम महाभारत का पाठ किया करते थे। आपके साथ विचार भी होता था। कहते हैं कि ऋषि ने इस समय आर्ष—अनार्ष तथा शुद्धाशुद्ध श्लोकों पर चिन्ह लगवाये थे। आपकी इच्छा संशोधित महाभारत प्रकाशित करने की थी। परन्तु दुःख है कि उनका यह संशोधित ग्रंथ प्राप्त नहीं हुआ।

पं० अंगदराम ने महर्षि के उपदेशों को श्लोकबद्ध भी किया था; उसका एक श्लोक निम्न प्रकार है:—

रुद्राक्ष—तुलसीकाष्ठ-माला-तिलक धारणम् ।
पाखंडं विजानीयात् पाषाणादिकार्चनम् ॥

"अपने मुंह मिया मिट्ठू"—पीलीभीत वाले अंगद शास्त्री उन दिनों सोरों आये। इन्होंने कर्णवास के प्रवास में महर्षि के नाम संस्कृत में एक पत्र लिखा था जो आत्मप्रशंसा से भरा था। एक श्लोक का नमूना यह है:—

शेषः पातालके चास्ति स्वर्लोके च बृहस्पतिः,
पृथिव्यामंगदः साक्षात् चतुर्थो नैव विद्यते।

अर्थात् पाताल में शेषनाग और स्वर्ग में बृहस्पति के समान ही पृथिवी पर अंगद शास्त्री मैं हूँ। हमारे समान चौथा है ही नहीं।

स्वामी जी ने इनको अपने शिष्य अंगद शास्त्री से भिड़ा दिया। पीलीभीत वाले शास्त्री का मान-मर्दन हुआ।

बरेली के पंडित जगन्नाथ को स्वामीजी ने बताया कि *'इतिहास पुराणानि धर्मशास्त्राणि श्रावयेत्'* में *'पुराणानि'* का अर्थ प्राचीन है, १८ पुराण नहीं।

विरोधियों का द्वेष—जहां भक्त थे वहां द्वेषी और अमित्र भी टकर ही जाते थे। कासगंज के पं० दुर्गादत्त ने महर्षि की निन्दा में ही अनेक श्लोक रचकर अपने मन की भडांस निकाली।

एक दिन महाराज उपदेश कर रहे थे। सभा-मण्डप खचाखच भरा था कि एक जाट क्रोध में भरा मोटा लट्ठ लिये सभा को चीरता सभा में घुस पड़ा। और अबे तबे कहता महाराज पर बरस पड़ा। डंडा दिखा कर ऋषि से पूछने लगा—बता, कहां मार कर इससे तेरा अंत करूं ?" सभा में खलबली मच गई। महाराज ने सबको शांत

रहने का संकेत करते और क्रोधी जाट को प्रदीप्त नेत्रों से देखते हुए कहा—"यदि धर्म प्रचार करना मेरा अपराध है तो इसका अपराधी मेरा मस्तिष्क है। यदि तू मुझे अपराधी समझता है तो इस सिर को फोड़।" परन्तु महाराज के प्रदीप्त नेत्रों ने उसके नेत्रों का हिंस्र भाव विलुप्त कर दिया था। डंडा उसके हाथ से छूट गया। श्रीचरणों में गिर पड़ा और रो-रो कर अपने अपराध के लिये क्षमा-प्रार्थना करने लगा।

इसी आधार पर महर्षि वैरागियों से सदा सावधान रहते थे। एक रात कुछ गुण्डों ने एकत्र हो आपको गंगा में फेंक देने का षड्यन्त्र रचा। वे रात में आपके शयनस्थान पर पहुँचे। अचानक ही उस स्थान के निकट एक साधु सो रहा था। उसे उठा कर गंगा में फैंक दिया। जब वह चिल्लाया तो इन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई—फिर उसे किसी प्रकार निकाला।

कानपुर के समीप वैरागियों ने ऐसा ही काण्ड रचा था। वहां विरजानन्द नाम के एक साधु को दयानन्द समझ रात को सोते हुए गंगा में डाल दिया था। वह तैरना जानता था। अतः तैर कर पार हो गया।

इस प्रकार सोरों में विचरते हुए लगभग ३ मास व्यतीत हो गये। एक दिन फिर मौज आई, सूर्योदय से पहले ही किसी से कुछ कहे सुने बिना सोरों से प्रस्थान कर दिया।

कर्णवास में घातक आक्रमण

राव कर्णसिंह का मदमर्दन—ज्येष्ठ संवत् १९२५ (लगभग जून सन् १८६८) में इस वार जब स्वामीजी कर्णवास पहुंचे तो जेठ के दशहरे का स्नान पर्व समीप था। सहस्रों नर-नारियों से घाट भरा

पड़ा था। कर्णवास के निकटवर्ती ग्राम बरौली का ठाकुर कर्णसिंह भी दलबल सहित स्नानार्थ आया था। यह बड़गूजर क्षत्रिय था और चक्रांकित सम्प्रदाय के प्रसिद्ध गुरु रंगाचार्य का शिष्य।

एक दिन महाराज उपदेश कर रहे थे कि यह ठाकुर अपने शस्त्र-धारी अनुचरों के साथ सभास्थल पर पहुँचा। आते ही महाराज को प्रणाम कर बोला—हम कहां बैठें ?

महर्षि—जहां आपकी इच्छा हो।

कर्ण—(घमंड व अकड़ के साथ) हम तो जहां आप बैठे हैं वहां बैठेंगे।

महर्षि—(शीतल पाटी के दूसरे सिरे की ओर खिसक कर) आइये, बैठिये।

आगे इनकी बात गंगा को लेकर चली। महर्षि ने गंगास्तुति के श्लोकों को गप्प बताया। गंगा को जल बताते हुए कहा मोक्ष गंगा-जल से नहीं, कर्मों से होता है। रामलीला चल रही थी। ठाकुर उसमें चलने का निमन्त्रण दे बैठा। महर्षि ने कहा—तुम कैसे क्षत्रिय हो जो आप अपने पूर्वपुरुषों का स्वांग बनाकर नचवाते हो। फिर उसके तिलक को भिखारियों का तिलक बताया और पूछा—भुजाएं क्यों जला रखी हैं।

ठाकुर उत्तर तो क्या देता; क्रोध के आवेश में तलवार निकाल बैठा। दयानन्द ने भयभीत होना कभी सीखा ही न था। शांति से चक्रांकित मत का खण्डन करते रहे और बोले यदि सत्य कहने में सिर कटता है तो इसकी मुझे परवाह नहीं है। तुम्हें यदि शस्त्रार्थ करना है तो जयपुर आदि के राजाओं से भिड़ो और शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु रंगाचारी को बुला लाओ। परन्तु प्रतिज्ञा लिख लो कि जो

हार जाय वह अपना मत छोड़ दे। कर्णसिंह क्रोध के आवेश में महाराज को गालियां देता रहा और महाराज पद्मासन लगाये सुनते एवं हंसते रहे।

कहते हैं कि ठाकुर ने महाराज पर तलवार चलाई परन्तु आपने तलवार छीन और पृथ्वी पर टेक कर तोड़ डाली। फिर कहा कि कहे तो अब इसे तेरे शरीर में घूंस दूं। इधर ठाकुर किसनसिंह आदि खड़े हो गये। कर्णसिंह बहुत घबराया और लज्जित होकर चला गया।

सभास्थ अनेक सज्जनों ने इस घटना की रिपोर्ट थाने में लिखाने की सलाह दी। महाराज ने कहा—जब वह क्षत्रियत्व को पूरा न कर सका तो हम क्यों अपने ब्राह्मणत्व से पतित हों ? दूसरे, हमें उससे कुछ भी हानि नहीं पहुँची, सन्तोष करना ही हमारा धर्म है। 'धर्म एव हतो हन्ति' इत्यादि श्लोक पढ़कर बोले—उसके लिए इतनी लज्जा ही पर्याप्त दंड है, यदि बुद्धिमान् है तो फिर ऐसा कर्म न करेगा।

यह था ! महात्मा का महात्मापन ! मृत्यु उपस्थित रहते शान्त रहना, प्राणघातक पर भी क्रोध न करना, अपकार के बदले अपकार का ख्याल करना ही नहीं, अपितु उपकार की भावना, संसार भर में किसी से भी द्वेष न रखना, दयानन्द सरीखे यति-ब्रह्मचारियों का ही काम है। ऐसी परिस्थिति में वैसा धैर्य, गम्भीरता, और प्रतिहिंसा का अभाव योगिवर्य, वेदज्ञ, ऋषि दयानन्द-सरीखे महात्माओं में ही सम्भव है।

कर्णसिंह के चले जाने पर महाराज पूर्ववत् शान्ति से उपदेश देते रहे।

कर्णसिंह दैवी विपत् में—घर पहुँचते ही कर्णसिंह का एक बहुत अच्छा घोड़ा बीमार होकर मर गया। वर्षा के कारण रामलीला

भी अधूरी रही। स्वयं कर्णसिंह को भयंकर शूल उठा जिसके कारण उसे बहुत पीड़ा हुई। एक पंडित ने उससे कहा कि यह सब तुम्हारे एक महात्मा को दुर्वाक्य कहने का परिणाम है। इस पर उसने कई रुपये का मिष्टान्न महाराज की सेवा में भेजा और क्षमायाचना की परन्तु ऋषि दयानन्द ने यह कह उसे लौटा दिया कि इसने हमारा कोई अपराध नहीं किया।

कर्णसिंह को धूर्तता फिर सूझी—परन्तु प्रतीत होता है कि धूर्त का यह श्मशान वैराग्य ही था। शरत् पूर्णिमा को वह पुनः गंगास्नान को गया। वहां महाराज को उसी निर्द्वन्द्व भाव से विचरते और अपना कार्य करते देख उसके मन में छिपे ईर्ष्या-द्वेष के भाव उभड़ आये। वह स्वयं तो उन पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सका, पर उसने पहले तो कुछ वैरागियों को भड़काया कि वे उन का सिर काट लें वह धन व्यय करके उनको छुड़ा लेगा—परन्तु जब वे नहीं माने तो अपने सेवकों द्वारा इस जघन्य कार्य को कराने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि"—महर्षि उन दिनों वस्त्र पहनते ही न थे; रात्रि को भी जाड़े में पियार से शरीर ढक लेते थे। उनके भक्त, उनके सो जाने पर, कम्बल डाल दिया करते थे। फिर भी कम्बल उतर जाया करता तो, महाराज उसे फिर न ओढते थे, अतएव भक्तों ने कैथलसिंह नामक व्यक्ति को इस पहरे पर नियुक्त कर दिया था कि वह महाराज को रात को कम्बल उढ़ा दिया करे।

उस दिन रात को दो बजे कर्णसिंह के तीन सेवक तलवार लेकर महर्षि का सिर छेदन करने की इच्छा से उधर आये। परन्तु उन्हें कुटी के भीतर आने का साहस नहीं हुआ। खटका सुनकर महाराज की नींद खुल गई, कैथलसिंह सोता ही रहा। कर्णसिंह के सेवकों ने लौटकर

उससे कहा हमारी हिम्मत नहीं होती। कर्णसिंह ने उन्हें फिर भेजा परन्तु उनके साहस ने फिर भी साथ नहीं दिया। इस बार कर्णसिंह का क्रोध उबल पड़ा उसने उन्हें खूब गालियां सुनाईं। जैसे-तैसे कुटी के द्वार पर वे आये और आवाज दी—कौन है कुटी में ? महर्षि यह सुनकर खड़े हो गये और कुटी के द्वार पर पहुँचकर इस जोर से हुँकारा दिया कि घातक लोग सारे औसान भूल गये। भगदड़ में वे एक दूसरे पर गिर पड़े, उनके हाथ से तलवारें छूट गईं; जैसे-तैसे जान बचाकर भागे। इस हलचल में कैथलसिंह भी जाग पड़ा—उसने महाराज से कहा आप अन्यत्र चले जाइये। परन्तु महाराज तो दृढ़ ईश्वर विश्वासी थे। गीता का प्रसिद्ध श्लोक '*नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः*' पढ़ते हुए महर्षि ने उत्तर दिया—कैथलसिंह ! मुझे कोई नहीं मार सकता; हमारा रक्षक मनुष्य नहीं दैव है। घबरा मत; मैं उसका शस्त्र लेकर उसी का हनन कर डालूंगा।"

कैथलसिंह डर गया था। उसने महाराज के भक्त क्षत्रियों को जगा कर सारा वृत्त सुनाया। अब क्या था; भक्तगण तत्काल कुटी पर पहुंचे। ठाकुर किशनसिंह ने ऊंची आवाज में कर्णसिंह को गालियां देनाशुरु किया और ललकार कर यहा-यदि क्षत्रियका वीर्यहै तो हथियार बांध कर हमारे सामने आ। महाराज के बार-बार समझाने पर भी भक्तों का क्रोध शान्त न हुआ। उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि यदि कर्णसिंह यहां रहा तो उसे पीटे बिना न छोड़ेंगे। महाराज तो कहते रहे कि हम नहीं चाहते कि तुम हमारे लिए लड़ो। कर्णसिंह के श्वसुर ने ठा० किशनसिंह आदि के विचार जानकर कर्णसिंह को मेले से तत्कालचले जानेकी सलाहदी। और वह अपना डेराडंडा-सम्भाल कर चलता बना।

कहते हैं कि कर्णसिंह घर आते ही बीमार और विक्षिप्त-सा हो गया। रोगमुक्त होने पर भी उसे मद्य-मांस की लत पड़ गई। एक

बड़ी रकम का मुकद्दमा भी हार गया: उसकी बड़ी दुर्दशा हुई। नियुक्त घातक लोगों ने पीछे सारी घटना स्वीकार की और कहा पूर्व कई बार अभ्यासी होने पर भी स्वामी जी के आतंक के मारे हम उन पर हमला न कर सके।

इस के ४-५ दिन पश्चात् महाराज कर्णवास से अम्बागढ़ चले गये। वहां से सरदोल (श्री महेशप्रसाद मौलवी आलिम फाजिल के अनुसार 'सरावल') पहुँचे। यहां के जमींदार ठा० हुलाससिंह व कतिपय अन्य क्षत्रियों ने स्वामी जी की शिक्षा ग्रहण की। सरदोल से स्वामी जी शहबाजपुर गये।

व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया—शहबाजपुर में महाराज के भक्त बलदेवगिरि, पं० अयोध्याप्रसाद व नारायण पण्डित दर्शनों को पहुँचे। सम्भवतः इन्हीं के मुख से आश्विन कृष्ण १३ सं० १९२५ को दंडी गुरु विरजानन्द जी का मृत्यु समाचार महाराज को मिला। महाराज सुन कर सन्न हो गये और फिर बड़े दुःख के साथ कहा—'आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया'। दयानन्द के जिस हृदय को सगे सम्बन्धियों का पार्थिव-पार्थक्य नहीं हिला सका वह अपने गुरु के इस सर्वथा अवश्यम्भावी बिछोह से एक बार हिल उठा! सच्चे गुरु-शिष्य के सम्बन्ध की अलौकिकता ही इसका सम्भावित कारण है।

भक्त की सतर्कता--शहबाजपुर में भी दो वैरागियों ने महाराज के प्राणहरण का दुष्ट संकल्प किया। घुणाक्षरन्याय से ये वैरागी इस कार्य में शस्त्र (तलवार) की सहायता के लिये ठाकुर गङ्गासिंह के पास पहुँच गये। यह ठाकुर महर्षि का श्रद्धान्वित भक्त था। इस ने वैरागियों को खूब फटकारा और उसी समय श्रीचरणों में

उपस्थित हो सावधान किया। महाराज ने उदासीन भाव से कहा उस की क्या सामर्थ्य है कि हमें मारे। ठाकुर फिर भी रात भर पहरा देता रहा। इसी ठाकुर ने यहां एक चक्रांकित ठाकुर को महर्षि के सन्मुख अशिष्टता करने पर डांट कर भगा दिया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि महाराज की रक्षा के सम्बन्ध में भक्तगण पर्याप्त जागरूक रहते थे।

कादिर गंज-नरदौली—शहबाजपुर से ऋषिदयानन्द कादिर गंज पधारे और वहां से चलकर नरदौली में १० दिन रहे। २०-२० कोस से दर्शनार्थी आये। पंडित और पंडितमन्य भी अनेक पहुँचे, पर शास्त्रचर्चा में सभी परास्त हुए। ला० लीलाधर, पं० मूलचन्द और पं० प्राणनाथ आदि अनेक प्रतिष्ठित सज्जनों ने आप की विचारधारा को स्वीकार किया। महाराज ने अनेक लोगों को सन्ध्योपासना की पुस्तक पढ़ाई और विधि बतलाई।

ककोड़े का मेला—ला० लीलाधर की प्रेरणा पर महर्षि यहां से चार कोस पर स्थित गंगातटवर्ती ककोड़े में पहुँचे। उन दिनों यहां गंगा स्नान का मेला था; पं० प्राणनाथ आप के साथ था। पश्चिम की ओर ब्राह्मणों के स्थान पर आप का डेरा लगा। उस दिन आप और पंडित प्राणनाथ दोनों को निराहार रहना पड़ा, कारण कि किसी ने भोजन को नहीं पूछा। अगले दिन पं० प्राणनाथ भोजन की व्यवस्था के लिए नरदौली लौटे। वहां से पं० मूलचन्द स्वामीजी के लिए भोजन लाये परन्तु इधर सोरों से बलदेवगिरि, पं० अंगदराम आदि भक्त मेले में स्वामीजी के पास पहुँच चुके थे। उन्होंने भोजन की व्यवस्था के अतिरिक्त डेरे पर कनात तथा स्वामीजी के बैठने के लिए ऊंची जगह बना कर उस पर गद्दे डलवाकर प्रवचन की सुविधा-भरी व्यवस्था भी कर दी थी।

स्वास्थ्य का रहस्य—संतोष—राय बालमुकुन्द डिप्टी कलक्टर मेले में गये थे। उन्होंने यहां एक पादरी से हुए महर्षि के वार्तालाप को सुना था। एक देसी पादरी दुभाषिये का काम कर रहा था। इस प्रश्नोत्तरमाला में आपने बताया कि नंगे रहने में उन्हें सुख रहता था। कपड़ों पर धूल गिरने से मैले होने की चिन्ता थी; मृत्तिका-लिप्त शरीर के मैले होने की चिन्ता ही क्या हो सकती थी। दूसरी बात यह बताई कि उनके स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट होने का कारण सन्तोष था, माल खाना नहीं। 'मेरे साथ जंगल में दिन रात रहकर देखलो मैं क्या माल खाता हूँ' पादरी के व्यंग पर महर्षि ने कहा।

एकलव्य की मूर्तिपूजकता?—बरेली के पण्डित उमादत्त से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। जब वह निरुत्तर हो गया तो उसने महाभारत से एकलव्य भील के द्रोणाचार्य की मूर्ति के पूजन और दुर्योधन के उदाहरण दिये। महर्षि ने कहा अज्ञानी भील और महामूढ़ दुर्योधन के कर्म प्रामाणिक नहीं माने जा सकते।

व्यंग में उपदेश—व्यंग में सर्वजनहित की बात कहने का महाराज का एक अनूठा ढंग था। कायमगंज के एक पं० श्यामलाल यहां स्वामीजी से मिले। पूछने पर उन्होंने अपनी आजीविका कथा-पुराण बांचना बताई। पुनः पूछने पर उसने बताया कि आजकल वह ब्रह्मवैवर्त्त पुराण का कृष्णखंड बांच रहा है। महर्षि ने व्यंग-मिश्रित उपदेश दिया—२०दिन तक यह शरीर वहां पहुँच जायगा; कथाको शीघ्र समाप्त करलो ताकि तुम्हारी हानि न हो। महर्षि के ये व्यंग उनके दयार्द्र हृदय में छुपी सहानुभूति को भी प्रकट करते हैं। वे जानते थे कि आर्थिक कठिनाइयों के कारण साक्षर ब्राह्मण भी अपनी आजीविका के हेतु पाखण्ड-मंडन में लगे हुए हैं।

त्रिकाल सन्ध्या का निषेध—मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष सं०

१९२५ (सन् १८६८ ई०) में महाराज कायमगंज पधारे। यहां आप हरिशंकर पांडे के शिवालय में ठहरे और लगभग बीस दिन रहे। आपने त्रिकाल सन्ध्या का निषेध कर दो काल सन्ध्या का उपदेश दिया। वे हवन में यव डालने का निषेध करते थे, कहते थे—स्वयं तो लोग हलवा पूरी खाते हैं और हवन में यव डालते हैं ! यव तो पशुओं का खाद्य है। सन्ध्या गायत्री और बलिवैश्वदेव का विधान करते थे। एक ब्राह्मण ने कहा हम सत्यनारायण की कथा के लिए रुपये की मिन्नत मानते हैं और काम सिद्ध हो जाता है, आप उसका क्यों खण्डन करते हैं। महाराज ने उत्तर दिया क्या पांच रुपये सत्य-नारायण की कथा के लिए रखाकर लखपति होना सम्भव है। नहीं; विद्या, धन आदि सब श्रमसाध्य हैं, मिन्नतों से नहीं मिलते। यदि मनौती से मनोरथ-सिद्धि होती हो तो ईश्वर उत्कोच लेने वाला सिद्ध होगा। यहां अपने उपदेशों में आपने अधिक स्त्री-प्रसंग से शरीर दुर्बलता रूप हानि बताकर संयम और ब्रह्मचर्य का उपदेश किया। यह भी कहा, जन्म के समय बालक का नाड़ि-छेदन महिलाएं स्वयं करें; नीच कर्मा स्त्रियों से कराना ठीक नहीं।

पक्षी हैं जो ऊंचा बैठते हैं—मौलवी मुहम्मद अली टूबान से मनुष्योत्पत्ति सम्बन्धी वार्तालाप में महाराज ने प्रश्न किया कि खुदा ने आदमहव्वा के मन में प्रेम उत्पन्न कर उनका वियोग क्यों नहीं रोका जो उन्हें दुःख सहना पड़ा। मौलवी कुछ उत्तर न दे सका। मौलवी महर्षि के पांडित्य पर मुग्ध हुआ कि ये बुतपरस्त नहीं है।

एक दिन पादरी अनलन, हरप्रसाद व कई दूसरे पादरी वार्तालाप के लिए आए और बाग की डौल पर बैठ गये। लोगों ने कहा इनका स्वामी जी से ऊंचे स्थान पर बैठना अशिष्टता है। स्वामी जी ने यह कह कर कि पक्षी (कौआ आदि) भी तो ऊंचे पर ही बैठते हैं—व्यङ्ग में टाल दिया। महर्षि ने इन्हें बताया कि पाप क्षमा नहीं हो सकते।

बस्ती में जाने में संकोच—कायमगंज से कम्पिल होते हुए महाराज शकरुल्लापुर (परगना शम्साबाद जि० फर्रुखाबाद) पहुँचे। यहां के रईस चोखेलाल ने महाराज को अपने बाग में ठहरने का आग्रह किया। परन्तु इनके बाग का द्वार बस्ती की ओर था और इसमें पहुँचने के लिए बस्ती में से होकर जाना पड़ता था। महर्षि को बस्ती में जाने से संकोच था। निदान पं० चोखेलाल ने तुरन्त बाग की दीवार तोड़कर सड़क की ओर से दरवाजा निकाला।

महर्षि ने यहां शान्तिपर्व से अनेक शिक्षाप्रद कथाएं सुनाईं। पं० चोखेलाल की स्त्री वन्ध्या थी और वे स्वयं संग्रहणी के रोगी थे। उन्होंने निर्दिष्ट चिकित्सा से निरोग होकर स्वामी जी की अनुमति से दूसरा विवाह किया और फिर कई सन्तान हुईं। इनके बहनोई पक्के मूर्तिपूजक थे, परन्तु महाराज की विद्या और सत्य संकल्प की सदा प्रशंसा किया करते थे। इन्होंने पीछे अपने पुत्र पं० गंगाधर को सत्यार्थ-प्रकाश और वेद भाष्य भूमिका पढ़वाए। वे कहा करते थे-"मेरे समान अनेक मनुष्य जो सांसारिक विषयों में डूब कर अपना कर्त्तव्य भूले हुए थे, महाराज के उपदेश से मनुष्यत्व को प्राप्त हुए हैं।"

पहली पाठशाला-कासगंज में—'श्री मद्दयानन्दप्रकाश' के अनुसार स्वामी जी ज्येष्ठ सं० १९२५ में कासगंज पधारे थे। कासगंज-निवासी भक्तों के आग्रह पर उन्होंने कहा—अभी तो मैं गंगा तट पर प्रचार कर रहा हूँ, इससे दूर नहीं जाना चाहता, परन्तु यदि पाठशाला स्थापित करने का प्रबन्ध हो तो जा सकता हूँ। कासगंज के भक्तों ने नगर में आकर इस प्रस्ताव पर विचार विमर्श किया और व्यवस्था ठीक हो जाने पर पण्डित सुखानन्द जी आदि एक सौ के लगभग सज्जन स्वामी जी को बलदेवगिरि जी की बग्घी में लिवा ले गये।

नगर के समीप बग्घी ठहरा ली गई। यहां से नगर निवासी बड़ी संख्या में एकत्र हो समारोह पूर्वक महाराज को नगर में ले गये। सोरों-द्वार से प्रविष्ट हो यह जलूस बाजार से होता हुआ नगर के दूसरी ओर पहुँचा। पं० मुकुन्दराम के उद्यान में महाराज उतरे। चन्दा करके महाराज के हाथ से पाठशाला की स्थापना की गई। आप सोरों, कर्णवास आदि स्थानों से कभी कभी इस पाठशाला को देख जाया करते थे।

उग्र तपस्विजीवन—गंगातट पर विचरण करते हुए महर्षि उग्र तपस्या का जीवन बिता रहे थे। कौपीन, वह भी केवलमात्र एक और एक अधोवस्त्र—यही उन की सम्पत्ति थी। इसी कारण स्नान भी वे एकान्त में करते थे। स्नान के उपरान्त कौपीन धोकर सूखने डाल देते और सिद्धासन लगा बालू पर बैठ जाते। कौपीन सूखने पर अपने आसन पर आ विराजते। पौष-माघ की कड़ाके सर्दी, बैशाख-ज्येष्ठ की कड़ी धूप, शरीर को झुलसा देने वाली लूएं और वर्षा ऋतु की फुहारें व झड़ियां—सब महर्षि ने विवस्त्र शरीर पर झेलीं। रात्रि का समय प्रायः समाधिस्थ होकर ही बिताते।

भोजन कभी मांगने नहीं गये; रूखा-सूखा जो मिल गया उसी पर सन्तोष किया। किसी की दी भिक्षा में कभी दोष नहीं देखा और न नमक-मसाले की कमी-बेशी की चर्चा की। सत्संग में परनिन्दा, व्यक्तिगत गुणावगुण कथन आदि का कभी प्रसंग नहीं आया। चर्चा होती थी केवल धर्म की और पाखण्ड के खण्डन की।

उन के प्रेमी और शिष्यों की मण्डली बढ़ रही थी। जहां-तहां वे विद्यमान थे, परन्तु महाराज अपने जाने-आने की सूचना कभी किसी को नहीं देते थे। वे सर्वथा निर्मोह और निस्पृह थे। बड़े-बड़े सम्पन्न ठाकुर और रईस, पण्डित और साधारणजन उनके शिष्य एवं भक्त थे।

इन में से अनेक उन पर अपना जीवन तक अर्पण करने को तय्यार थे। उधर विद्वेषी विरोधी भी थे, जो जब तब कटुवाक्य सुनाने से न चूकते थे। परन्तु महाराज ऐसे निर्लेप और वीतरागद्वेष थे कि सब के साथ समान बर्ताव करते थे—उन से सब समान आदर पाते थे।

२॥ वर्ष तक इस गंगा तट पर परि-भ्रमण में उग्र तपस्वि-जीवन व्यतीत करते हुए ऋषि दयानन्द ने दयार्द्र हो गंगातटवर्ती हजारों नर नारियों को अपने पावन उपदेश से तो पवित्र किया ही. जनेऊ देकर द्विज भी बनाया, सन्ध्या, सिखाई और गायत्री का जाप सिखाया।

फर्रुखाबाद में तीसरी बार

पौष संवत् १९२५ (सन् १८६८) में महाराज तीसरी बार फर्रुखाबाद पधारे और आप ला० जगन्नाथ के विश्रान्त घाट पर ठहरे। जगन्नाथजी पिछले प्रवास में उनके भक्त बन गये थे। उन्होंने महाराज से सन्ध्याविधि सीखी। पीछे सब गृह्यानुष्ठान आपकी उपदिष्ट पद्धति से ही करने लगे थे। उनके पुत्र का नामकरण संस्कार व नाम पुरुषोत्तम नारायण भी महर्षि ने ही रखवाया था। उनकी माता की अन्त्येष्टि क्रिया भी महाराज की निर्दिष्ट प्रणाली से सम्पन्न हुई थी।

इस प्रवास में महाराज साधारण धर्म की शिक्षा के अतिरिक्त अवैदिक क्रियाओं का तीव्र खण्डन और सन्ध्योपासन तथा अग्निहोत्रादि पञ्च महायज्ञों के लिए प्रेरणा आदि विषयों पर प्रवचन करते रहे।

यज्ञोपवीत-संस्कार की धूम—ला० द्वारकाप्रसाद, गिरधारीलाल व जगन्नाथ आदि कई सज्जनों ने इस समय विधिवत् यज्ञोपवीत लिया। इनका संस्कार घाट पर बनाई गई यज्ञवेदी पर सम्पन्न हुआ जिसमें पर्याप्त सामग्री से हवन और महर्षि द्वारा निर्दिष्ट प्रणाली से यज्ञोपवीत धारण कराया गया। बा० दुर्गाप्रसाद और ला० जगन्नाथ

के यज्ञोपवीत संस्कार उनके घर पर ही हुए। ला० जगन्नाथ के यज्ञोपवीत से पहले ११ दिन तक ब्राह्मणों ने घाट पर गायत्री जप और हवन किया। स्वयं लालाजी ने छः मास में १ लाख गायत्री जप सम्पूर्ण किया।

हमारा शुक्र अस्त नहीं होता—ला० जगन्नाथ के यज्ञोपवीत पर पण्डितों ने कहना शुरू किया, गणेश आदि के पूजन के बिना शुक्रास्त के समय किया गया संस्कार निश्चय अनिष्टकारी होगा। महर्षि ने उत्तर दिया गणेश आदि का पूजन तो वेद विरुद्ध है ही; इसके न होने से अनिष्ट नहीं हो सकता, और हमारा शुक्र ("तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म" के अनुसार) तो ब्रह्म है, वह कभी अस्त नहीं होता।

भोजन कब भ्रष्ट होता है?—साध सम्प्रदाय को मानने वाले फर्रुखाबाद में अधिक पाये जाते हैं। ये लोग ईश्वर को निराकार मानते हैं, मुर्दे जलाते हैं, पर हिन्दुओं की तरह संस्कार नहीं करते। शव को गाते-बजाते श्मशान ले जाते हैं। द्विज इनके हाथ का भोजन नहीं करते। महाराज ने यहां सुखवासीलाल साध का लाया कढ़ी-भात प्रेम पूर्वक ग्रहण किया! महाराज ने कहा—भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है; प्रथम तब जब किसी को दुःख देकर प्राप्त किये धन से क्रय करके वह प्राप्त हो, द्वितीय तब जब कि वह मलिन हो अथवा उसमें कोई मलिन वस्तु गिर जाय।

इन्हीं साधों ने एक बार कहा—हम भी मूर्तिपूजा नहीं करेंगे; ईश्वर को निराकार मानते ही हैं, परन्तु वेद को नहीं मानते। महर्षि ने इसका जो उत्तर दिया उससे वे रुष्ट होगये, परन्तु सुखवासीलाल बराबर सत्संग से लाभ उठाते रहे।

पं० गंगाराम का साहस भङ्ग—बरतिया के गंगाराम

महर्षि से शास्त्रार्थ के बहुत इच्छुक थे। पर महाराज के सम्मुख आने का उन्होंने साहस नहीं किया। इसका कारण यह हुआ कि उन्होंने अपने पुत्र और एक शिष्य को महर्षि की थाह लेने भेज दिया था। जिस समय ये दोनों महर्षि के स्थान पर पहुँचे तो महाराज पं० गङ्गादास को मनुस्मृति पढ़ा रहे थे। महर्षि ने नमस्कार के उत्तर में 'आयुष्मान् भव' से आशीर्वाद देने के अतिरिक्त उनसे बात आरम्भ नहीं की। इस पर उन्होंने व्यंग से महर्षि को अहङ्कारी बताया, पर महाराज ने अपना कार्य समाप्त करने के पश्चात् इन्हें समझाया कि कार्य में प्रवृत्ति अभिमान नहीं कहाती; एक कर्त्तव्य समाप्त करके ही दूसरा कार्य प्रारम्भ किया जाता है।

इन दोनों से महर्षि के पांडित्य का अनुमान लगा कर ही पंडित गंगाराम महर्षि के सम्मुख नहीं आये—शास्त्रार्थ से बचते रहे।

पं० श्री गोपाल से शास्त्रार्थ—फर्रुखाबाद के सनातनधर्मियों ने अगत्या मेरठ के प्रसिद्ध पं० श्री गोपाल को शास्त्रार्थ के लिये बुलाया। श्री गोपाल ने मनु० अ० २ श्लोक १७१—"*देवताभ्यर्चनञ्चैव समिदाधानमेवच*" से मूर्ति पूजा सिद्ध करनी चाही। उसका तर्क था कि पूजा मूर्ति की होती है अतः देवता की मूर्ति की पूजा का विधान है। महर्षि ने बताया कि यहां देवता का अर्थ विद्वान् और 'अर्च पूजायाम्' से पूजा का अर्थ सत्कार है। पं० श्री गोपाल उत्तर न दे सके और अपने स्थान को लौट गये। इस शास्त्रार्थ के मध्यस्थ पं० पीताम्बरदास थे।

काशी से व्यवस्था—शास्त्रार्थ में तो पं० श्री गोपाल हार गये। पर चतुर नीतिज्ञ थे। ला० कृष्णलाल और फर्रुखाबाद निवासी सम्प्रति काशीवासी पं० शालिग्राम की सहायता से उन्होंने काशी के पंडितों से मूर्तिपूजा के पक्ष में व्यवस्था लेने का प्रबन्ध किया। पं०

शालिग्राम शास्त्री अपने गुरु पं० राजाराम शास्त्री के पास ले गये। उनके पास एक पुरानी व्यवस्था लिखी रखी थी। पं० श्रीगोपाल इस की प्रतिलिपि लेकर चले आये।

इस व्यवस्था में किसी वैदिक प्रमाण का उल्लेख न था। केवल आधुनिक उपनिषद् देवीय शीर्ष और गोपाल तापिनी का उल्लेख था। विंशति ब्राह्मण का प्रसिद्ध वचन 'अद्भुतशान्तौ देवतायतनानि प्रकम्पन्ते' 'देवप्रतिमा हसन्ति, रुदन्ति, गायन्ति स्विद्यन्ति' आदि का उल्लेख था। लाला कृष्णलाल ने जब महर्षि को यह व्यवस्था दिखाई तो उन्होंने इसका ऐसा खण्डन किया कि लालाजी कुछ बोल न सके। स्वामीजी ने यह भी कहा कि काशी के पंडितों की विद्या कुछ तो देख ली शेष वहां जाकर देख लूंगा।

पीछे ला० पन्नीलाल के आग्रह पर पं० पीताम्बरदास काशी गये। उन्हें वहां बताया गया कि वह कोई नई व्यवस्था नहीं थी। एक पुरानी व्यवस्था थी जिस पर कुछ पण्डितों के हस्ताक्षर थे। वही फर्रुखाबाद लाई गई। यह भी बताया गया कि उस व्यवस्था का आधार चार वेद संहिता नहीं हैं—मूर्ति पूजा तो लौकिक है। पं० पीताम्बरदास से सारा वृत्तान्त जान कर धर्मनिष्ठ ला० पन्नीलाल ने मूर्तिपूजा को त्याग दिया और देवालय बनाने का विचार भी छोड़ दिया।

पाठशाला की स्थापना—अब ला० पन्नीलाल ने महर्षि के परामर्श से संस्कृत पाठशाला की स्थापना की। पं० व्रजकिशोर को ३०) मासिक पर अध्यापक नियत किया गया। यह व्यय लाला पन्नीलाल पर था और विद्यार्थियों के भोजन-वस्त्र का व्यय बाबू दुर्गाप्रसाद देते थे।

पं० श्री गोपाल ने अपनी लाई हुई 'व्यवस्था' का बहुतेरा ढिंढोरा पीटा पर वह महर्षि के सामने शास्त्रार्थको नहीं आया। वैशाख शुक्ला

१४ सं० १६२६ (१६ जून सन् १८६६) को टोकाघाट पर उसने भीड़ जमा कर ली। अन्त में पुलिस के हस्तक्षेप करने पर उसने हुल्लड़ मचाना बन्द किया।

न्यायालय में सत्य ही कहेंगे—ज्वालाप्रसाद नाम का एक मद्यप व मांसाहारी ब्राह्मण उन दिनों पोस्टमास्टर था। एक वाममार्गी इसे पालकी में बिठा कर महर्षि के पास छोड़ गया। यह व्यक्ति नशे में गाली बकने लगा। महर्षि तो उसे कुछ न कह कर परे हट गये; परन्तु उनके भक्त साध लोगों ने उसकी दुर्दशा करदी। लाला जगन्नाथ के यह पूछने पर कि ज्वालाप्रसाद अभियोग चलायेगा तो क्या होगा, महर्षि ने निर्लिप्त भाव से कहा कि हम तो सत्य ही कहेंगे; वह किसी के अनुकूल पड़े वा प्रतिकूल।

हलधर ओझा से शास्त्रार्थ—श्री गोपाल की पराजय से पौराणिक दल खिन्न था। अन्त में प्रेमदास देवीदास खत्री रईस की सलाह से कानपुर से पं० हलधर ओझा को बुलाया गया। यहां तक कहा गया कि हार जीत पर शर्त लगाई जायगी। लाला जगन्नाथ ने सुनकर झट से २५००) रु० ला० देवीदास को भिजवा दिए, परन्तु लाला देवीदास का साहस न हुआ कि शर्त स्वीकार करते।

यह शास्त्रार्थ ज्येष्ठ शुक्ला १० सं० १६२६ (जुलाई १८६६) को महर्षि के स्थान पर हुआ। इस में शिष्टाचार आदि के पश्चात् प्रथम मूर्तिपूजा पर प्रश्नोत्तर हुए। फिर मद्यपान की चर्चा छिड़ गई। पं० हलधर ओझा ने *'सौत्रामण्यां सुरां पिबेत्'* कहकर मद्यपान को शास्त्रीय बताया। महर्षि ने कहा— यहां सुराका अर्थ सोमलता है। मद्यपान का तो सब शास्त्रों में निषेध है। ओझाजी ने संन्यासी का लक्षण पूछा तो महर्षि ने मनुस्मृति का श्लोक *'क्लृप्तकेशनखश्मश्रुः'* (मनु० अ० ६ श्लो० ५२) उद्धृत कर उस का अर्थ कर दिया।

परन्तु महर्षि ने जब उससे ब्राह्मण का लक्षण पूछा तो वे कुछ स्पष्ट न कह सका। महर्षि ने कहा प्रकरण के बाहर मत जाइये तो 'प्रकरण' पर ही भिड़ने लगे। महर्षि ने इस शब्द की सिद्धि में प्रयुक्त 'डुकृञ्' धातु का नाम लिया तो ओझा जी ने 'धातु समर्थ होता है अथवा असमर्थ' प्रश्न को बीच में ला खड़ा किया। महर्षि ने समर्थ और असमर्थ' के अर्थ भी बता दिये और बताया कि महाभाष्य के अनुसार यह अर्थ है। ओझा जी बोले यह वचन महाभाष्य का नहीं है। बस, फिर क्या था, पकड़ में आ गये। महर्षि ने महाभाष्य अ० २ आ० १ में 'सापेक्षोऽसमर्थो भवति' वाक्य दिखला दिया। पंडितमंडली महाराज के पाण्डित्य पर मुग्ध हो गई।

अब ओझाजी का रोष उबला। उन्होंने कहा 'हम जो कुछ कहते हैं वह भाष्यकार के वचन से कम नहीं है।' महर्षि ने कहा अच्छा बताइये 'कलम' किस की संज्ञा है? ओझाजी कोई उत्तर न दे सके तो महर्षि जी ने महाभाष्य खोलकर दिखाया कि 'कथितञ्च' सूत्र के भाष्य में महाभाष्यकार ने 'कर्म, की कलम' संज्ञा की है।

रात्रि का एक बज गया। फिर यह निर्णय हुआ कि यदि महर्षि यह सिद्ध कर दें कि 'समर्थः पद विधि,' सूत्र सर्वत्र लागू होता है तो उन की विजय समझी जाय। शास्त्रार्थ अगले दिन के लिए स्थगित हो गया।

अगले दिन ८ बजे फिर सभा लगी। महर्षि जी ने दीपक और महाभाष्य की पुस्तक मंगा कर 'समर्थः पदविधि' सूत्र की व्याख्या सबको सुनाई और अनेक उदाहरणों से सूत्र की सर्व-व्यापकता समझाई। ओझाजी कोई उत्तर न दे सके। ला० जगन्नाथ के पूछने पर अनेक पण्डितों ने कहा—पंडित हलधर ओझा अपनी प्रतिज्ञा प्रमाणित नहीं कर सके।

ओझाजी मूर्छित से हो गये—यह सब सुनकर ओझाजी मूर्छित से हो गये। उनके साथी उन्हें किसी प्रकार उठाकर ले गये।

समस्त रात्रि के जागरण से ला० जगन्नाथ को ज्वर आ गया तो गुण्डा पार्टी ने प्रसिद्ध किया कि ओझा जी ने मन्त्र मार दिया। यह सुनकर ओझा जी स्वयं ला० जगन्नाथ को देखने गये और कहा जो लोग ऐसा कहते हैं गुण्डे हैं। ओझाजी को अपमान का दुःख तो हुआ ही, आर्थिक लाभ भी उन्हें न हो सका। जो लोग कानपुर से बुलाकर उन्हें लाये थे वे भी उनसे आंख बचाकर निकल गये।

कुछ मनोरंजक घटनाएं—महर्षि ने एक दिन प्रसंग-वश अपना कौपीन निचोड़ कर पहलवानों को दिया और कहा जल की बून्द निकाल कर दिखाओ तो तुम्हारा बल जानें। हर एक पहलवान ने अपने बल की परीक्षा की परन्तु कोई उस में जल की एक बूंद भी न निकाल सका।

एक दिन एक गंवार उन्हें नास्तिक, ईसाईयों का नौकर आदि गालियां देता जा रहा था। महाराज ने सुन कर भी उस से कुछ न कहा। उसका साहस बढ़ा, वह महाराज के आश्रम पर आ कर भी गालियां बकने के इरादे से वहां पहुँचा। परन्तु महाराज ने इस से पहले ही प्रेम भरे शब्दों में उसका स्वागत किया। उसका हृदय पिघल गया। चरणों में लोट-लोट कर क्षमाप्रार्थी हुआ।

परसादी ब्राह्मण फरुखाबाद का प्रसिद्ध गुंडा था। वह लठ लेकर महर्षि के पास पहुँचा। उद्धत स्वर में बोला—बाबा जी! देव-मूर्ति को साक्षात् ईश्वर मानते हो या नहीं? महर्षि ने पूछा ईश्वर का स्वरूप तुम कैसा समझते हो। उस ने कहा—ईश्वर सच्चिदानन्द; भक्तवत्सल और भक्तों के कारण जन्म लेता है। महर्षि ने कहा—क्या रामायण में ईश्वर को अजन्मा नहीं कहा गया। वह बोला—

सुना तो है। इस प्रकार वार्तालाप से वह ऐसा प्रभावित हुआ कि लट्ठ छोड़ कर श्री चरणों का दास बन गया।

कुछ अन्य उत्तर— वार्तालाप के मध्य महाराज द्वारा दिये गये कुछ अन्य महत्वपूर्ण उत्तरों का सार यहां दिया जा रहा है:—

१. *हिंसक जीवों के शिकार* में दोष नहीं है। इनको मारने से मनुष्यों तथा पशुओं की रक्षा होती है।

२. जिसमें मनुष्यों की हानि हो वह *पाप कर्म* है।

३. बूढ़े मनुष्यों को मारने में *कृतघ्नता* का महापाप है। वृद्ध मनुष्य अनुभव से दूसरों को लाभ पहुँचाता है।

४. मद्यप मनुष्य उन्मत्त होकर दूसरों की सामान्य हानि नहीं, प्राण-नाश तक कर देता है—अतएव *मद्यपान* पापकर्म है।

५. मद्यों में से जिसमें जितनी अधिक मादकता है उसमें उतना ही अधिक दोष है।

६. *मनुष्य का कर्त्तव्य*—ईश्वर-प्राप्ति है; वेदानुकूल आचरण, मनूक्त धर्म के दश लक्षणों के पालन और अधर्म त्याग से ईश्वर प्राप्ति होती है। ईश्वर की भांति मनुष्य को दयालु और सत्य व्यवहार-कर्ता होना चाहिए।

रसोई पक्की ही है—फर्रुखाबाद से विचरण करते हुए महर्षि श्रृंगीरामपुर पहुँचे। यहां एक दिन रह कर जलालाबाद पहुँचे। और प्रयागदत्त के बाग में अनार के एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। फिर पं० गयाप्रसाद के अनुरोध से वे सरनदास उदासी की कुटिया में टिके। पण्डित गयाप्रसाद ने अपने घर पर दाल-भात बनवा भोजन के लिए निवेदन किया तो बोले यदि तुम्हारे घर जा सकते तो फिर वहां ठहरते भी क्यों न। उसने दाल-भात को कच्ची रसोई कह पक्की रसोई

लिए प्रतीक्षा की बात कही तो बोले—वह रसोई कच्ची नहीं पक्की ही है, ले आओ।

कन्नौज में—जलालाबाद में केवल एक रात दिन ठहर कर वे आषाढ़ सं० १९२६ (सन् १८६९) में कन्नौज पहुँचे। यहां पंडित हरिशंकर और गुलजारीलाल से उनका शास्त्रार्थ हुआ। इस शास्त्रार्थ में कुछ मनोरंजक बातें हुईं। पं० हरिशंकर से नाम पूछने पर उसने श्लोक पढ़कर कहा—अपना और गुरु का नाम नहीं लेना चाहिए। परन्तु महर्षि ने जब बताया कि संकल्प में तो अपना नाम लेना ही पड़ता है तब निरुत्तर होकर नाम बता दिया। मनुस्मृति में कहीं 'राजा प्रतिमाओं की रक्षा करे' वाक्य है। यहां प्रतिमा का अर्थ महर्षि ने बाट-तौल बताया। पंडित ने अपने समर्थन में पूर्व मीमांसा में भी ऐसे ही वाक्य का अस्तित्व कहा। परन्तु यह कथन असत्य प्रमाणित हुआ। पण्डित हरिशंकर ने पराजय स्वीकार करली। शर्त के अनुसार वह संन्यासी होने के लिए तय्यार हो महर्षि के पास पहुँचा। उन्होंने उसकी सत्यप्रियता की प्रशंसा करते हुए समझाया कि शर्त से संन्यासी नहीं हुआ जाता, संन्यासी ज्ञान से होता है। ये दोनों पण्डित महर्षि के समर्थक हो गये।

एक पण्डित के 'गयादीन' नाम का अर्थ 'दीन (धर्म) गया' करके महर्षि ने टिप्पणी की कि लोग नाम भी ठीक नहीं रखते।

कायस्थों के सम्बन्ध में आपने सम्मति दी कि वे शूद्र नहीं है। यदि वे अपना सम्बन्ध चित्रगुप्त से बताते हैं तो गुप्त होने से वैश्य हो सकते हैं। ये लोग अपना स्वरूप भूल कर मद्य-मांस में प्रवृत्त हो गये; अशास्त्रीय व्यवहार त्यागने पर पुनः उच्च हो सकते है। पं० घासीराम जी ने यहां टिप्पणी दी है कि एक दूसरे अवसर पर महर्षि ने कायस्थों को अम्बष्ठ बताया था। मनु. अ. १० श्लो० ८ में अम्बष्ठ को ब्राह्मण पिता और वैश्य माता की सन्तान कहा है।

गायत्री सब के लिये एक है—स्वामी जी ने एक वैश्य को बताया कि गायत्री मंत्र सब के लिए एकसा है—पृथक् पृथक् नहीं। उसके गुरु ने वैश्यों के लिए गायत्री मंत्र इस प्रकार बताया था—'तत्पुरुषाय विद्महे कुबेराय धीमहि तन्नो धनदः प्रचोदयात्।''

कानपुर का शास्त्रार्थ

'गप्पा बाबा' की धूम—कन्नौज में केवल ७-८ दिन ठहर कर बिठूर और मदारीपुर होते हुए महाराज कानपुर पधारे। यह वर्षा-काल था। भैरों के मन्दिर के समीप बा० दरगाहीलाल वकील के घाट पर आपने आसन जमाया। उनके पधारते ही नगर में हलचल मच गई। दर्शनार्थियों का तांता लग गया। यहां मूर्तिपूजा के संबंध में प्रायः प्रश्नोत्तर हुए। कुछ दिन पश्चात् संस्कृत में एक विज्ञापन छपवाया जिसमें निम्न आठ गप्पों और आठ सत्यों का उल्लेख था। यह विज्ञापन आषाढ़ सं० १९२६ (२० जुलाई सन् १८७९) के लगभग प्रकाशित हुआ। इसका उल्लेख २७ जुलाई सन् १८६९ के शोले-ए-तूर में मिलता है।

आठ गप्प—

१. सब मनुष्यकृत ग्रंथ ब्रह्मवैवर्त्तादि पुराण।
२. देवताबुद्धि से पाषाण आदि की पूजा।
३. शैव, शाक्त, गाणपत्य-आदि सम्प्रदाय।
४. तन्त्र ग्रंथोक्त वाममार्ग।
५. भांग आदि मादक द्रव्यों का सेवन।
६. पर-स्त्रीगमन।
७. चोरी।
८. छल, कपट, और अभिमान, मिथ्याभाषण।

आठ सत्य—

१. ईश्वरकृत ऋग्वेदादि चार वेद और ऋषि कृत दूसरे १७ ग्रन्थ।
२. ब्रह्मचर्याश्रम में रह कर गुरु की सेवा और स्वधर्मानुष्ठान पूर्वक वेदों का अध्ययन
३. वेदोक्तवर्णाश्रम से स्वधर्म अनुकूल सन्ध्या-वन्दनादि अग्निहोत्रादि करना।
४. पंच महायज्ञों का अनुष्ठान, ऋतुकाल में अपनी स्त्री से सहवास, श्रुति, स्मृति, सदाचार के अनुकूल आचरण।
५. शम, दम, तपचरण, यमादि से लेकर समाधि तक उपासना, सत्संगपूर्वक वानप्रस्थाश्रम का अनुष्ठान।
६. विचार, विवेक वैराग्य और परा विद्या का अभ्यास और संन्यास ग्रहण करके सब कर्मों के फल की इच्छा का त्याग।
८. ज्ञान और विज्ञान से सब प्रकार के अनर्थ, मरण, जन्म, हर्ष, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, संग, दोष के त्यागने का अनुष्ठान।
८. अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश तमस्, रजस्, सत्त्व सब क्लेशों की निवृत्ति, पंच महा-भूतों से अतीत होकर मोक्ष के स्वरूप और स्वराज्य की प्राप्ति।

इन आठ गप्पों के कारण महाराज का नाम यहां 'गप्पा बाबा' पड़ गया था। जब कोई उनके सम्मुख कोई ऐसी बात कहता जो उनकी दृष्टि से इन आठ गप्पों के अन्तर्गत होती तो वे कह उठते—"*एतदपि गप्पमस्ति।*"

शास्त्रार्थ का सूत्रपात—कानपुर की विशेष घटना पण्डित हलधर ओझा और लक्ष्मण शास्त्री से महाराज का मूर्तिपूजा-विषयक शास्त्रार्थ है। इस शास्त्रार्थ का प्रेरक कारण ब्रह्मानन्द सरस्वती नामक संन्यासी हुआ। इसने महाराज को नास्तिक, ईसाई बताया और कहा

अंग्रेजों ने ईसाई बनाने के लिए नियत किया है । वह महर्षि के पास आने वालों को अशुद्ध कहकर उनके प्रायश्चित की बात कहने लगा। पंच-गव्य खिला और यज्ञोपवीत बदलवा कर कई एक का प्रायश्चित करवा भी दिया । परन्तु रामचरण अवस्थी ने प्रायश्चित करने से इन्कार कर दिया।

कानपुर के प्रसिद्ध रईस गुरुप्रसाद और पं० प्रयागनारायण ने बहुत सा रुपया लगाकर "कैलाश' और वैकुण्ठ' नाम के मन्दिर बनवाये थे । महर्षि ने उनसे कहा था कि आप लोगों ने रुपया व्यर्थ खो दिया। इससे अच्छा यह होता कि आप *कान्यकुब्ज कन्याओं का जो २०-३० वर्ष से क्वारी बैठी हैं विवाह करा देते या कोई कला-कौशल का कारखाना खोलते जिससे देश और जाति का भला होता।* पाठक देखिये क्रान्तद्रष्टा महर्षि की दूरदृष्टि किस प्रकार समाज व देश के सुधार की उन योजनाओं पर जाती थी जिनको आज भी हम पूर्ण-रूप से नहीं कर पाये हैं।

इस प्रकार ब्रह्मानन्द संन्यासी, पंडित गुरुप्रसाद और पंडित प्रयागनारायण इस त्रिगुट्ट ने, जो महर्षि से जले हुये थे, कानपुर में उन से शास्त्रार्थ रचाने की व्यवस्था आरम्भ की। पंडित हलधर ओझा और लछमण शास्त्रीको उन्होंने इस शुभ कार्य (?) के लिए तय्यार किया महर्षि तो इसके लिए तय्यार थे ही। हलधर ओझा की इच्छानुसार संस्कृतज्ञ असिस्टैण्ट कलक्टर थेन साहब से मध्यस्थ बनने की प्रार्थना की गई जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया। यह शास्त्रार्थ महर्षि के निवासस्थान दर्गाहीलाल के घाट पर ही हुआ। शास्त्रार्थ के अवसर पर बाबू क्षेत्रनाथ घोष सबजज, बाबू काशीनारायण मुन्सिफ, सुलतान मुहम्मद कोतवाल आदि प्रतिष्ठित व्यक्ति उपस्थित थे। कई अंग्रेज भी श्रोता थे । ३१ जुलाई सन् १८६९ के इस शास्त्रार्थ में २०-२५

सहस्र की भीड़ एकत्र थी। स्थानाभाव से छतों और पेड़ों तक पर लोग बैठे थे।

इस शास्त्रार्थ का विवरण पं० घासीराम जी ने निम्न शब्दों में लिखा है :—

हलधर ओझा से दूसरा शास्त्रार्थ

हलधर—आपने जो अष्ट गप्पम् और अष्ट सत्यम् का विज्ञापन दिया है उसमें व्याकरण की अशुद्धि है।

महर्षि—यह बातें पाठशाला के विद्यार्थियों की हैं। ऐसे शास्त्रार्थ पाठशाला में हुआ करते हैं। आज इस विषय पर कहो जिसके लिए सहस्रों मनुष्य इकट्ठे हुए हैं। व्याकरण के विषय में कल मेरे पास आना, मैं समझा दूंगा। इसके पश्चात् हलधर ने ग्रन्थ प्रामाण्य की बात उठाई, और पूछा।

हलधर—आप महाभारत को मानते हैं ?

महर्षि—हां !

हलधर—(श्लोक पढ़कर) एक नीचकुलोत्पन्न पुरुष (भील) ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर उसकी पूजा की और शस्त्रों का अभ्यास किया, उसे यह फल मिला कि वह शस्त्र-विद्या में निपुण होगया, अतः मूर्ति-पूजा विहित सिद्ध होती है।

महर्षि—इससे मूर्ति-पूजा सिद्ध नहीं होती। यह कार्य उस शूद्र ने अज्ञानवश किया था, जैसा कि अज्ञानी लोग आजकल करते हैं और शस्त्रप्रयोग में निपुणता मूर्ति-पूजा का नहीं वरन् उसके निरन्तर अभ्यास का फल था। आप कोई वेद-वाक्य दिखावें जिसमें मूर्ति-पूजा की आज्ञा हो। जैसे देखो अंग्रेज चांदमारी करते हैं परन्तु वह किसी की मूर्ति सामने नहीं रखते।

कुछ देर चुप रहने के पश्चात् ओझा ने पूछा—वेद में प्रतिमा पूजन की यदि आज्ञा नहीं है तो निषेध भी कहां है ?

महर्षि—जब विधि नहीं है तो निषेध ही समझना चाहिए। यदि कोई मनुष्य अपने भृत्य से पश्चिम की ओर जाने को कहे तो यह ही समझा जायगा कि वह पूर्वादि दिशाओं में जाने का निषेध करता है।

तत्पश्चात् वेदों के अनेक मन्त्र उद्धृत करके महाराज ने सिद्ध कर दिया कि ईश्वर निराकार है उसकी मूर्ति नहीं हो सकती।

लक्ष्मण—ईश्वर सर्वव्यापक है, पत्थर में भी, फिर मूर्ति-पूजन में क्या दोष है ?

महर्षि—जब ईश्वर सर्वव्यापक है तो पत्थर में ही क्या विशेषता है और चेतन को छोड़कर जड़ की पूजा में क्या भलाई है ?

इसे सुनकर पं० हलधर और लक्ष्मण शास्त्री ने मौन धारण कर लिया। तत्पश्चात् थेन साहब ने महर्षि से पूछा कि आप किसको मानते हैं। महर्षि ने उत्तर दिया कि मैं केवल एक परमेश्वर को मानता हूं।

थेन—तो फिर आप अग्नि में होम करके अग्नि की पूजा क्यों करते हैं ?

महर्षि—हम अग्नि की पूजा नहीं करते। अग्नि सर्वव्यापक है, जो पदार्थ अग्नि में डाला जाता है वह (सूक्ष्म होकर) सर्वत्र फैल जाता है।

इसके पश्चात् थेन साहब ने अपनी छड़ी उठाई और कुर्सी से उठ खड़े हुए। उनके उठने के साथ ही सब लोग उठ खड़े हुए और शास्त्रार्थ समाप्त होगया। हलधर के साथी गंगाजी की जय बोलते हुए और यह कहते हुए 'हलधर जीत गये' उन्हें गाड़ी में सवार कराकर शास्त्रार्थ स्थल से चले गये।

पं० गुरुप्रसाद ने इस शास्त्रार्थ के परिणाम पर किस प्रकार असत्य का पर्दा डालना चाहा इसका विवरण भी हम पं० घासीरामजी लिखित विवरण से नीचे उद्धृत कर रहे हैं :—

उन दिनों कानपुर से एक उर्दू समाचार-पत्र प्रकाशित हुआ करता था जिसका नाम शोल-ए-तूर था। शुक्ल जी उसके सम्पादक के पास गये जो उनका किरायेदार भी था और उससे कहा कि कल के शास्त्रार्थ का वृत्तान्त छापो और उसमें लिखो कि शास्त्रार्थ में हलधर ओझा जीते और दयानन्द हारे।

सम्पादक ने कहा—शास्त्रार्थ में उच्च राज-कर्मचारी उपस्थित थे, मैं ऐसी मिथ्या बात कैसे प्रकाशित करदूं; कल को कोई दावा हो गया तो क्या होगा? शुक्लजी ने पूछा दावे में क्या होगा? सम्पादक ने उत्तर दिया कि जुर्माना होगा। शुक्लजी ने कहा कि क्यों डरते हो, दस हजार तक जुर्माना मैं दे दूंगा।

अन्त कथा यह है कि शोल-ए-तूर के सम्पादक ने शुक्लजी के आग्रह पर जैसा वह चाहते थे वैसा ही प्रकाशित कर दिया। ('शोल-ए-तूर' जिल्द १० नं० ३१)

महर्षि के भक्त पं० शिवसहाय, जिन्हें महाराज अपना पक्ष लेने में किसी से न डरने के कारण 'शूरवीर' कहा करते थे, 'शोल-ए-तूर, के उस अङ्क को लेकर महाराज की सेवा में उपस्थित हुए और उन्हें वह लेख पढ़कर सुनाया। उन पर उसका क्या प्रभाव होना था। उन्होंने उत्तर दिया कि हम तो इस विषय में कुछ करेंगे नहीं, यदि आप लोग कुछ करना चाहें तो करें, परन्तु ऐसा न हो कि हमें अदालत में जाना पड़े। शिवसहाय ने कहा हम ही कुछ करेंगे।

पं० शिवसहाय पं० हृदयनारायण दत्तात्रेय वकील को साथ लेकर मुन्सिफ साहब के बंगले पर गये और उनसे प्रार्थना की कि आप

शास्त्रार्थ में मध्यस्थ थे । आपकी जो सम्मति हो वह कृपा करके आप लिख दीजिये । इस पर थेन साहब ने अपनी सम्मति इस प्रकार लिख कर उन्हें दे दी :—

* मध्यस्थ का निश्चय

भद्र पुरुषो, उस समय मैंने दयानन्द सरस्वती फकीर के पक्ष में अपना निर्णय दिया था और मुझे विश्वास है कि उनकी युक्तियां वेद के अनुकूल थीं। मेरे विचार में उनकी विजय हुई। यदि आप कहेंगे तो मैं अपने निर्णय के कारण थोड़े दिनों में आपको बतला दूंगा।

हस्ताक्षर—आपका आज्ञानुवर्ती
डब्ल्यु. थेन,

जादू वह जो सर चढ़े—कानपुर के शास्त्रार्थ में पं० हलधर ओझा की हार का दूसरा अकाट्य प्रमाण 'शोल-ए-तूर के ३-८ १८६९ के अंक में प्रकाशित वह विज्ञापन है जो हलधर ओझा के हस्ताक्षरों सहित संस्कृत, उर्दू और हिन्दी में प्रकाशित हुआ था। इस विज्ञापन का हिन्दी अंश निम्न प्रकार था:—

---

* Gentlemen—At the time in question I decided in favour of Dayanand Sarswati, fakir, and believe his arguments are in accordance with Vedas. I think he won the day. If you wish it I will give you my reasons for my decision in a few days.

Cawnpore, 7-8-1869.

Yours obediently
W. Thaine.

मूर्तियां फैंको नहीं, मन्दिर में पहुंचा दो

"जो कि दयानन्द सरस्वती मत के मुताबिक बहुत लोग ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य वगैरः अपना कुलधर्म छोड़कर मूर्ति देवताओं को गंगा जी में प्रवाह कर देते हैं, यह बात बेजा व ना मुनासिब है। इस लिए यह इश्तिहार जारी किया जाता हैं कि जो लोग उनके मत को अख्तियार करें, उनको चाहिये कि मूर्तियों को बराय मेहरबानी एक मन्दिर कैलाश जी जो महाराज गुरुप्रसाद शुक्ल का है उसमें या मन्दिर महाराज प्रयाग नारायण तिवारी में पहुंचा दिया करें; और अगर उनको पहुंचाने की गुंजाइश न हो तो इत्तला करें हम उनको उठा लिया करेंगे। और उनको बहाने व फैंकने में जो पाप है वह संस्कृत में लिखा है। फक्त। दस्तखत—ओझा हलधर

विचारधारा व अभ्यास—कानपुर में महाराज लगभग तीन मास तक विराजमान रहे। इस समय के उनकी विचारधारा के कुछ अंश इस प्रकार हैं:—

१. उनकी इच्छा थी कि महाभारत आदि आर्ष ग्रंथों को प्रक्षिप्त अंशों से रहित विशुद्ध संस्करण के रूप में प्रकाशित किया जाय।

२. बाल-विवाह और बाल-सहवास का घोर विरोध करते थे। वे कहा करते थे कि परिणत वयस् से पहले विवाह और स्त्री-सहवास करने से सन्तान कभी बलिष्ठ नहीं होती। इस सम्बन्ध में वे अपना उदाहरण उपस्थित कर कहा करते थे कि उसके जन्म के समय उनके पिता की आयु ४०-४२ के लगभग थी।

३. देवेन्द्र बाबू के अनुसार विधवा, सम्भवतः बाल-विधवा के विवाह (नियोग ?) का भी वे समर्थन करते और कहते थे कि विधवा का मृत-पति के भाई (देवर) से पुनर्विवाह हो जाना चाहिये।

४. शारीरिक स्वास्थ्य के लिए व्यायाम को आवश्यक बतलाते थे।

५. गायत्री-जाप और प्राणायाम की महिमा बखानते थे। वे कहते थे कि अब भी ऐसे योगी विद्यमान है जो पृथ्वी से एक हाथ ऊपर उठकर वहां ही स्थिर रह सकते हैं।

६. वेदगान का उन्हें अभ्यास था। पं० मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या इन दिनों एक अध्यापक के साथ कानपुर आये थे। एक दिन वे सन्ध्या समय भ्रमण करते गंगा तट की ओर निकल गये। यहां उन्होंने देखा महाराज घाट के एक बुर्ज पर आंखे आधी बन्द किये सामगान् कर रहे हैं।

इसी समय कुछ लोगों ने लाठी और ढेलों से महाराज पर आक्रमण किया। महर्षि ने आक्रमणकारी की लाठी पकड़ कर उसे गंगा में ढकेल दिया। पास के वृक्ष से शाखा तोड़कर आक्रमणकारियों को ललकारा और कहा—मैं निरा साधु ही नहीं हूँ।

७. इसके पश्चात् वे गंगा में तैरने लगे। महाराज तैरने में बड़े निपुण थे। कहते थे कि मालकंगिनी के तैल के सेवन से जल में देर तक रहा जा सकता है।

८. *समाधिस्थ अवस्था में*—यहां पण्डित हृदयनारायण वकील व पण्डित काशीनाथ मुन्सिफ दोनों काश्मीरी ब्राह्मण थे और महर्षि के समीप बहुधा आया करते थे। इन दिनों महर्षि एक ही समय भोजन करते थे और बहुधा यह भोजन पंडित हृदयनारायण के घर से ही आता था। एक रात को जब ये लोग महर्षि के स्थान पर गये तो इन्होंने देखा आप नहा-धोकर सारे शरीर पर मिट्टी लगा ध्यानावस्थित हुए बेठे हैं। उनके शरीर में कोई कम्पन अथवा अंग का संचालन नहीं दीखता था। १५ मिनट तक उसी स्थिति में रहने के पश्चात् उनका ध्यान भंग हुआ। वे ऐसी मधुर और सरल संस्कृत

बोलते थे कि उनके संसर्ग में रहने वाला संस्कृत से अनभिज्ञ, अपढ़ भी उसे समझने लगता था।

कुछ मनोरंजक घटनाएं—इस प्रवास में घटी अनेक मनोरंजक घटनाएं महर्षि के सम्बन्ध में प्रसिद्ध हैं; इनमें से कुछ यहां उद्धृत की गई हैं:—

१. *अहिंसा-प्रतिष्ठा*—एक दिन गंगा में लेटे थे कि मगर निकला पं० हृदयनारायण के लघुभ्राता ने देखा तो महाराज को सावधान किया। महाराज निर्द्वन्द्वभाव से बोले—जब हम उसका कुछ नहीं बिगाड़ते तो वह भी हमें दुःख नहीं देगा। पं० घासीराम जी का लेख है कि यह घटना तथा कठिन शीतताप में भी सुख-सुविधा पूर्वक विचरण करना उनके योगी होने के प्रमाण हैं।

२. *प्रतिवादी हतप्रभ*—एक दिन कुछ पण्डित षड्विंश ब्राह्मण का प्रमाण लेकर शास्त्रार्थ करने आये। महर्षि ने कहा—षड्विंश ब्राह्मण ही लाये होंगे। वे विचारे ऐसे हतप्रभ हुए कि अंगोछे में से पुस्तक ही नहीं निकाल सके।

३. भैरव की मूर्ति के सम्बन्ध में प्रसिद्ध था कि उसकी सवारी को रोकने के अपराध पर सरकारी मैगजीन के एक पहरेदार सिपाही को भैरव ने दे मारा। सुनकर महर्षि ने कहा—"तन्द्रा में गिर पड़ा होगा; हम तो रोज भैरव का खंडन करते हैं।" कुछ दिन पश्चात् यह मूर्ति गंगा प्रवाह में मन्दिर का कुछ भाग गिर जाने से बह गई!

४. *गाली के बदले मिष्टान्न*—महर्षि के डेरे के पास एक गंगा-पुत्र (पन्डा) रहता था। वह नियम पूर्वक महाराज को गालियां सुनाया करता था—महाराज कुछ ध्यान न देते थे। इधर भेंट में चढ़े मिष्टान्न, फल आदि को महाराज आगन्तुकों में ही बांट देते थे। एक दिन गंगा-पुत्र सामने पड़ गया। उसे बुलाया और मिष्टान्न आदि उसे भी मिला।

वह प्रति दिन आने लगा। अब उसे अनुभव हुआ कि ऐसे दयालु महात्मा को गालियां देकर मैं कैसा पापी बना हूँ। उसने महाराज से क्षमा मांगी।

महर्षि की विनोद-प्रियता—गंभीर तर्क-वितर्क का धनी दयानन्द विनोदप्रिय भी खूब था और यह विनोद व्यंग की सीमा में भी प्रायः पहुँच जाता था। ऐसा न हो तो ऐसे महात्माओं को अपना जीवन कितना नीरस और शुष्क प्रतीत हो! इस सम्बन्ध में कुछ घटनाओं का वर्णन इस प्रकार है:—

१. *ऊंट का चारा*—शिवलिंग पर विल्व चढ़ाने वाले ब्राह्मणों से कहा किसी ऊंट को खिलाते तो उसका चारा होता, पाषाण पर चढ़ाने से क्या लाभ हुआ?

२. *पाप मेरा, पुण्य तेरा*—महर्षि के उपदेश से एक सिपाही ने अपनी मूर्ति गंगा में फैंक दीं और माला तोड़ डाली। उसने पूछा यदि पाप हुआ तो? महाराज हंसते हुए बोले—इसमें जो पाप होगा वह मुझे होगा और पुण्य होगा वह तुझे।

३. *यह नरमांस भक्षण ही तो है?*—चक्रांकितों के सम्बन्ध में कहा करते—अपना लिंग शतवार देखते हैं तो इनकी श्री नहीं शर्माती, पर पाषाण का लिंग देखते ही शर्मा जाती है। जिस छाप से शरीर को दग्ध करते हैं उसको धोकर पीना नरमांस खाना ही तो है।

४. *गुठलियों से मुक्ति?* रुद्राक्ष को देखकर कहते—गुठलियों को पहनने से कैसी मुक्ति? मुक्ति तो सत्य ज्ञान से होती है।

५. *म्लेच्छ-राज्य में क्यों आये?* स्वामी कैलाश पर्वत का कानपुर आगमन जान उन्हें प्रेमपूर्वक बुलवाया तो उन्होंने कहलवाया

हम शूद्र के स्थान पर नहीं आवेंगे। महर्षि ने पुछवाया—"तो म्लेच्छ के राज्य में ही क्यों आये ?

६. टका धर्मः—आधुनिक जन्म के परन्तु गुण-लक्षण-हीन ब्राह्मणों के सम्बन्ध में स्वामी जी कहा करते थेः—

टका धर्मष्टका कर्म टका हि परमं पदम् ।
यस्य गृहे टका नास्ति हा टकाटकटकायते ॥

तीन मास पश्चात् एक दिन प्रातः काल बिना किसी को सूचना दिए दूसरा लंगोट तक डेरे पर ही छोड़ महाराज आगे बढ़ गये।

पाखण्ड का दुर्भेद्य-गढ़-काशी

रामनगर में—कानपुर से चलकर महर्षि शिवराजपुर, फतेपुर और मिर्जापुर आदि स्थानों में विचरण करते हुए प्रयाग पधारे। यहां किसी शिवसहाय नामक पंडित की लिखी वाल्मीकीय रामायण की टीका महर्षि के हाथ लगी। शिवसहाय बड़ा अभिमानी था। महर्षि ने इसकी रचना में अनेक अर्थदोष एवं शब्ददोष दिखाये। इस पर वह इनसे शास्त्रार्थ के लिए उद्यत हो गया। परन्तु महर्षि की वाग्मिता के सम्मुख उसकी एक न चली। वह परास्त होकर गंगा के तट के सहारे रामनगर की ओर चल पड़ा। महर्षि को मौज आई तो वे भी उसके पीछे चल पड़े।

महर्षि ने देखा शिवसहाय काशी नरेश के पास आकर छिप गया है। इस समय सं० १९२६ (सन् १८६९) का आश्विन मास चल रहा था। महर्षि ने वह रात राजवाटिका के समीप रेती में ही बिताई। प्रातः काल नित्यकर्म से निवृत्त हो उन्होंने शिवसहाय की टीका के खण्डन से ही अपना प्रचार आरम्भ किया और इस टीकाकार के लिए

कहा कि वह राजा के महल में जाकर छिप गया है। परन्तु शिवसहाय फिर सामने नहीं आया। वह जैसे-तैसे घर की ओर भाग गया। इसके पश्चात् महाराज ने काशी नरेश की हस्तिशाला के समीप एक वृक्ष के नीचे अपना आसन लगाया।

काशी-नरेश का व्यवहार— काशी-नरेश ईश्वरी प्रसाद-नारायणसिंह, साधु, संन्यासी और परमहंसों के प्रति भक्ति-भावना के धनी थे—अपने राज्य में पधारने पर महर्षि के भोजन आदि की व्यवस्था उन्होंने अपने स्वभावानुसार की—प्रतिदिन (आठ आना) नियत कर दिया और पशमीने का एक बहुमूल्य अलवान भेंट के लिए भेजा। महर्षि ने अलवान अस्वीकृत कर दिया। महाराज के भेजे राजपण्डित भी महर्षि की सेवा में पहुँचे। उनके मुख से यह सुनकर कि महर्षि मूर्तिपूजा का खण्डन करते हैं, महाराजा रुष्ट होगये। कहते हैं कि महाराजा अपने हाथ से पार्थिव-लिंग बनाया करते थे; उन्हें ऐसा करते देख महर्षि ने उनसे पूछा था कि आप यह कुम्हार का-सा खेल क्या कर रहे हैं ?

महाराजा ने एक बार इस आशय से कि महर्षि प्रतिमा-पूजन का विरोध छोड़ दें—उन्हें राज्य से १००) रु० मासिक वृत्ति दिये जाने की इच्छा प्रकट की। महर्षि के सम्मुख भला यह भी कोई प्रलोभन था? महर्षि का उत्तर था कि यदि महाराजा अपना सारा राज्य भी मुझे देदें तो भी मैं मूर्तिपूजा का खण्डन नहीं छोड़ूंगा। अतएव महाराजा की प्रबल इच्छा हुई कि महर्षि को शास्त्रार्थ में हराया जाय।

परन्तु महाराजा उन्हें अपमानित अथवा तंग नहीं करना चाहते थे। एक बार ५०-६० वैरागियों ने एकत्र होकर महर्षि को गालियां दीं जब महाराजा को इस घटना का ज्ञान हुआ तो उन्होंने इस घटना पर वैरागियोंको डांटते-डंपटते स्पष्ट कह दिया कि जबतक वह रामनगर में हैं

तब तक वे हमारे अतिथि हैं; उनसे शास्त्रार्थ भले ही कोई करे, उद्दंडता नहीं कर सकता ।

विश्वास उठ चला—महर्षि की चर्चा के साथ मूर्तिपूजा की चर्चा सर्वत्र चल रही थी। पंडित मण्डली में खलबली मची हुई थी। मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में शंकाएं तो जनसाधारण और पंडितमण्डली में पहले भी विद्यमान थीं—परन्तु प्रकटरूप से इसका प्रतिवाद करने का नैतिक बल नहीं था। महर्षि द्वारा इस आन्दोलन का आरम्भ कर देने पर अब शनैः शनैःऐसे जन भी अपनी सहमति व्यक्तिगत और सार्वजनिक रूप से करने लगे।

एक दिन बाबू अविनाशीलाल खत्री, और मुंशी हरवंशलाल, पं० ज्योतिस्वरूप उदासी को साथ ले रामनगर में महर्षि के दर्शनों को पधारे। महाराज अपने आसन पर वृक्ष के नीचे बैठे, कुछ पंडितों से मूर्तिपूजा पर वार्तालाप कर रहे थेः वार्तालाप दो घंटे तक होता रहा। पं० ज्योतिःस्वरूप जी से इसपर अपना मन्तव्य प्रकट करने के लिए कहा गया तो कहने लगे दयानन्दजी ठीक ही कह रहे हैं; मैं क्या कहूँ !

महाराजा ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह जी ने स्वामी निरञ्जनानन्दजी से इस सम्बन्ध में अपनी-शंका का समाधान किया। पूछा-वेद में मूर्तिपूजा व रामलीला का विधान है या नहीं; दयानन्द कहते है कि नहीं है। स्वामी निरञ्जनानन्द जी ने स्पष्ट शब्दों में बताया कि वेद में तो इनका विधान नहीं है, परन्तु लोकरीति चली आई है।

कुछ भी हो मूर्तिपूजा के खण्डन-मण्डन की आंधी से काशी की मण्डली और जनसाधारण सभी के मनों में उथल-पुथल मच रही थी। तब महर्षि लगभग १ मास का समय रामनगर में बिताकर कार्तिक कृष्णा २ अथवा ३ संवत् १९२६ (सन् १८६९ ई०) को काशी पधारे।

वे पहले गोसाईं जी के बाग में उतरे और फिर दुर्गाकुण्ड पर स्थित अमेठी के राजा के बाग में चले गये।

काशी की महिमा—महर्षि के आगमन का समाचार विद्युत्-वेग से नगर भर में फैल गया। चिरकाल से काशी नगरी का हिन्दू जाति के मन में विशेष स्थान रहा है। काशी में मरा सीधा स्वर्ग को जाता है—यह कहावत प्रसिद्ध है। शिवजी के त्रिशूल पर स्थित काशी नगरी की स्वयं शिवजी महाराज अपने अगणित गणों सहित रक्षा करते हैं, विद्या और असीम पाण्डित्य के धनी हजारों पण्डित और शास्त्री ही मानो शिव के गण हों। महर्षि भी मानो अपने समग्र पाण्डित्य, वाद-विवाद-शक्ति और तर्कनासरणि को पारसमणि की परख से खरा जांचने के लिए इस नगरी में आने को लालायित ही थे। पर काशीवासी पंडित और गुण्डे दोनों को ही आश्चर्य था इस एक मात्र कौपीनधारी के विलक्षण साहस पर! न इस के पास धन-बल था, न जन-बल; फिर भी एकाकी, निर्भय इस अप्रतिम, दुर्भेद्य, पाखंड-गढ़ की ओर बढ़ता चला! सत्य का अन्वेषण, सत्य का अंगीकार और सत्य के निश्छल प्रचार—यही उस की एक मात्र टेक थी। यही उस के अनुपम चरित्र-बल का कारण था। इस शास्त्र के सामने वह सारे धन-जन और विद्या बल को नगण्य मानता था। अब तक के प्रचार और भ्रमण में महर्षि को अनुभव हो गया था कि जब तक काशी अपराजिता है, तब तक पौराणिक धर्म को हारा हुआ नहीं मान सकते जो पण्डित हारता, वह काशी की ओर व्यवस्था के लिए दौड़ता।

अब महर्षि की ललकार से काशी के पण्डितों की सुखनिद्रा टूट गई थी। ऋषि की गुरू गम्भीरवाणी प्रभाव-शून्य कैसे रहती! दुर्गा के दर्शन को जो कोई जाता, वह उनके उपदेश सुनने के लिए अवश्य रुकता और सुनकर मूर्तिपूजामें विश्वास रखना असम्भव हो जाता।

अधिकांश तो दर्शन किये ही बिना घर लौट आते। बेचारे पेट के पुजारी भी चिन्तित हो उठे। महर्षि की दुर्गा के मन्दिर में उपस्थिति उन्हें खलने लगी।

दिन और सप्ताह बीत रहे थे! मूर्ति पूजा का खण्डन दिन-दूना रात चौगुनी बढ़ रहा था। काशी-नरेश कैसे चुप रह सकते थे। पंडितों के सम्मुख अपना मन्तव्य कह सुनाया। जनता का लाखों रुपया मूर्ति-पूजा पर व्यय कराने वाले पण्डितों का विद्याबल भला और क्या काम आता। 'दयानन्द अज्ञ है, 'व्याकरण के अतिरिक्त कुछ नहीं जानता' 'वह ईसाई है' अंग्रेजों का गुप्तचर है'—आदि बहाने अब किस काम के—आज तो वह छाती पर चढ़ कर मूंगदल रहा है, इस का कुछ उपाय होना ही चाहिए।

अन्त में पंडितों ने १५ दिन तय्यारी करने के पश्चात् शास्त्रार्थ करने का निश्चय प्रकट किया। कार्तिक शुक्ला १२ संवत १९२६ (१६ नवम्बर सन् १८६९) मंगलवार का दिन शास्त्रार्थ के लिए नियत हो गया।

तय्यारी और जांच—काशी के पंडितों ने दो प्रकार की तय्यारी की। एक वर्ग ने अपने सिद्धान्तों, विशेषतः मूर्ति-पूजा, के लिए प्रमाण-संग्रह का कार्य करना आरम्भ किया और दूसरा वर्ग जनता में महर्षि के उद्देश्य के विरुद्ध भ्रमजाल फैलाने और गुण्डापन को उकसाने में संलग्न हो गया।

शास्त्रार्थ के लिए उत्तरदायी दिग्गज पंडितों ने शास्त्रार्थ-केसरी के सम्मुख आने से पहले उस के विद्याबल की जांच भी करनी आरम्भ की। अपने विद्यार्थी भेज कर उन से प्रश्न किये गये और स्वयं भी प्रछन्न रूप से पहुँच कर उन की युक्तियों के बलाबल की जांच की। इनमें राम शास्त्री, बाल शास्त्री और सम्भवतः राजाराम शास्त्री थे।

महर्षि के आसन पर कार्य-योजना में कोई अन्तर नहीं था। उन्हें नई खोज तो करनी नहीं थी, धूर्त और गुण्डेपन को भी मन में स्थान नहीं था। इन दिनों पण्डित ज्योतिःस्वरूप उदासी से निरन्तर १४ दिन तक नवीन वेदान्त पर विचार-विमर्श होता रहा। पं० ज्योतिः-स्वरूप ने महर्षि की सारी बातें स्वीकार कीं। उन की शास्त्रार्थ से पहले की यही सब तय्यारी थी। इन्हीं पंडितजी ने काशिराज की सभा में बड़े विश्वास के साथ कहा था—दयानन्द से शास्त्रार्थ करने से पहले मुझ से शास्त्रार्थ कर लो।

शास्त्रार्थ का दिन आया। भक्त बलदेव ने अशंका प्रकट की—महाराज! काशी गुंडों की नगरी है, आप एकाकी हैं, यदि फरुखाबाद होता तो दस-बीस मनुष्य आपके भी होते! भक्त का अभिप्राय समझ महाराज हंसे और बोले—योगियों का निश्चित सिद्धान्त है कि सत्य का सूर्य अन्धकार की महती से महती सेना पर अकेला विजय पाता है। जो पक्ष-पात रहित हो ईश्वरानुकूल सत्य का उपदेश करता है उसे भय कहां? सत्पुरुष डर कर सत्य को नहीं छिपाते, जान जाय तो जाय परन्तु सत्य रूप ईश्वर की आज्ञा न जाय—ऐसी है हम सरीखों की भावना। महर्षि की इस सत्यनिष्ठा से भक्तों का विश्वास जमा—वे निश्चिन्त होने लगे। महाराज ने क्षौर कराया, स्नान किया, सुन्दर शरीर पर सुन्दर मृत्तिका का लेप किया, पद्मासनस्थ हो ईश्वर का ध्यान किया और फिर भोजन किया।

काशीनरेश ने शास्त्रार्थ के लिए ही उद्योग नहीं किया, अपितु ऋषिको नीचा दिखाने की धारणा के अनुकूल तय्यारी की। कलक्टर की इच्छा के विपरीत शास्त्रार्थ का दिन रविवार के अतिरिक्त कोई सा दूसरा दिन रखा। कलक्टर व दूसरे राज्याधिकारियों की उपस्थिति में गड़बड़ की सम्भावना जो नहीं थी। महाराजा, महर्षि के विद्या-बुद्धिबल

से परिचित थे, यदि महर्षि मूर्तिपूजा का खण्डन न करते तो वे उन्हें अपना गुरु मानते—ऐसी धारणा भी प्रकट कर चुके थे। मूर्ति-पूजा के सम्बन्ध में महर्षि को नीचा दिखाना उन के कार्य-क्रम का निश्चित अंग था।

भोजपुर थाने के थानेदार रघुनाथप्रसाद ने शान्ति व व्यवस्था की दृष्टि से निष्पक्ष प्रबन्ध करने का पूरा प्रबन्ध किया। ५० हजार जनों की भीड़ को सम्भालना और न्याय से शास्त्रार्थ होने देना उनका कर्त्तव्य था। दालान की खिड़की में महर्षि का आसन लगाया गया और उन के सामने प्रतिपक्षी पंडित था। एक तीसरा आसन काशी-नरेश के लिए था–शेष पंडितों के लिए नरेश के पास बैठने का प्रबंध था।

महर्षि पर आतंक बिठाने की दृष्टि से पंडित लोग ताम-झामों पर सवार हो, चंवर डुलाते और जय बुलाते हुए सभा-मण्डप में पहुँचे। काशीनरेश पधारे और पण्डित लोग राजा को आशीर्वाद देने के बहाने कोतवाल के निश्चित किये नियम के विरुद्ध महर्षि को घेर कर बैठ गये; व्यवस्था उन्होंने जान बूझ कर बिगाड़ दी। महर्षि के पक्ष-पोषक पं० ज्योतिस्वरूप आदि विज्ञजनों और दूसरे सहायकों को पहले तो बाग में घुसने ही न दिया गया; पीछे कोतवाल के कहने पर आकर महर्षि के पास बैठ जाने पर भी बहाने से काशीनरेश ने उन्हें महर्षि से दूर कर दिया। राजा ने कोतवाल के आक्षेप पर भी ध्यान न दिया। इसी अव्यवस्था में शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। दो अंग्रेज पादरी भी शास्त्रार्थ में उपस्थित थे। पौराणिकों के २७ पंडितों से लोहा लेने वाले अकेले महर्षि थे। २७ पंडितों में स्वामी विशुद्धानन्दजी, बाल-शास्त्री, शिव-सहाय, माधवाचार्य, वामनाचार्य, ताराचरण, जयनारायण-तर्क वाचस्पति, राधामोहन तर्कवागीश, अम्बिकादत्त आदि प्रमुख थे।

काशी-शास्त्रार्थ—यहां हम इस शास्त्रार्थ का विवरण 'श्री-

मद्यानन्द प्रकाश' से उद्धृत करते हैं :—

सबसे प्रथम पं० ताराचरण जी नैयायिक स्वामी जी के सम्मुख हुए। स्वामी जी ने उनसे पूछा, कि "क्या आप वेदों को मानते है ?" ताराचरण जी ने कहा, जो भी वर्णाश्रम धर्मी हैं वे सभी वेद को प्रामाणिक मानते हैं।"

तब स्वामीजी ने कहा:—'वेद में पाषाण आदि की मूर्तियों के पूजने का यदि विधान है तो प्रमाण दीजिये,नहीं तो अप्रमाणता स्वीकार कीजिये।

ताराचरणजी–'वेद में मूर्तिपूजन प्रमाण है अथवा नहीं है, यह उसे कहा जाय, जो एक वेद को ही प्रमाण मानता हो।'

स्वामी जी:—'अन्य ग्रन्थ प्रमाण हैं अथवा अप्रमाण इस पर फिर विचार किया जायगा। इस समय मुख्य प्रमाण तो वेद ही है। वेदोक्त कर्म ही मुख्य कर्म हैं, दूसरे ग्रन्थों के बताये कर्म गौण हैं। वे वेदानुकूल होने ही से माने जा सकते हैं। इसलिए यदि वेद में प्रतिमा-पूजन की आज्ञा नहीं है तो उसका पूजन नहीं करना चाहिए।'

ताराचरण जी:–'तो फिर मनुस्मृति को वेद-मूलक कैसे मानते हैं ?'

स्वामी जी:—'सामवेद के ब्राह्मण ने कहा है कि जो कुछ मनु ने वर्णन किया है वह औषधियों का भी औषध है।' (१)

विशुद्धानन्द जी ने कहा, "रचना की अनुपपत्ति—असिद्धि होने से अनुमान द्वारा वर्णित प्रधान, जगत् का कारण नहीं है;

---

(१) देवेन्द्र बाबू के नोटों में इस शास्त्रार्थ के वर्णन में कुछ भिन्नता है। इसके लिए नीचे लिखे नोटों पर ध्यान दीजिए:—

(क) *पं० ताराचरण वेद का कोई प्रमाण नहीं दे सके तो बा० प्रमदा-दास मित्र के सुझाव पर राजसभा के पंडित को हटा कर दूसरे*

व्यास के इस सूत्र को वेद-मूलक सिद्ध कीजिए ।

स्वामी जीः—'उपस्थित वाद के भीतर यह प्रश्न नहीं आता।'

विशुद्धानन्द जीः—'प्रकरण से बाहर है तो क्या हुआ ? यदि तुम्हें इसका समाधान आता है तो कह दो।'

स्वामी जीः—'इसका पूर्वापर पाठ देख कर समाधान किया जा सकता है।'

विशुद्धानन्द जी—(उपालम्भ पूर्वक) 'यदि सब कुछ स्मरण नहीं था तो काशी में शास्त्रार्थ करने आये ही क्यों थे ?'

स्वामी जीः—क्या आपको सब कुछ कण्ठाग्र है ?

विशुद्धानन्द जीः—हां, हमें सब कुछ स्मरण है ।

स्वामी जीः—तब बताइये धर्म के कितने लक्षण हैं ?

विशुद्धानन्द जीः—वेद में कहे फलसहित कर्म ही धर्म हैं ।

पंडित को अवसर दिया गया । तब स्वामी विशुद्धानन्दजी उठे ।

(ख) विशुद्धानन्द जी ने मौन धारण कर लिया, परन्तु बालशास्त्री ने कहा, हां उपस्थित हैं ।

स्वामी जी—धर्म के लक्षण कहिए ।

बालशास्त्री ने अपना बनाया हुआ एक संस्कृत वाक्य पढ़ा ।

स्वामी जी—यह किसी शास्त्र का वचन नहीं है, यह आपका रचा हुआ है ।

इस पर पंडित शिवसहाय आगे बढ़े

शिव०—मुझे सब शास्त्र उपस्थित है (और मनु का 'धृतिः क्षमा...श्लोक पढ़ा)

स्वामीजी (स्फूर्ति से) आप अधर्म के लक्षण कहिये ।

विशुद्धानन्द के समान यह पंडित भी निरुत्तर होकर पीछे हट गया ।

स्वामी जीः—यह तो आपका वाक्य है। कोई शास्त्रीय प्रमाण दीजिये।

विशुद्धानन्द जीः—धर्म का लक्षण प्रेरणा कहा गया है।

स्वामीजीः—यह तो ठीक है कि प्रेरणा धर्म का लक्षण है, परन्तु प्रेरणा कहते हैं श्रुति-स्मृति की आज्ञा को। सो श्रुति-स्मृति की प्रेरणा में धर्म के कितने लक्षण हैं यह बताईये ?

विशुद्धानन्द जीः—धर्म का एक ही लक्षण है।

स्वामीजीः—शास्त्र में तो धर्म के दस लक्षण कहे हैं तब आप एक कैसे कहते हैं ?

विशुद्धानन्द जीः—धर्म के दस लक्षण किस ग्रन्थ में हैं ? स्वामी जी ने मनुस्मृति में वर्णित धृति आदि धर्म के दस लक्षणों वाला श्लोक पढ़कर सुनाया। इस पर विशुद्धानन्द जी तो अवाक् हो गये, परन्तु बाल शास्त्री कहने लगे हमने सम्पूर्ण धर्मशास्त्र अध्ययन किया है। इस विषय में पूछना हो तो हमसे पूछिये।

स्वामी जी ने कहा बहुत अच्छा, आप अधर्म के लक्षण बताइये।

बाल शास्त्री को इसका उत्तर कुछ भी नहीं सूझा, इसलिये वे मौन हो गये ?

अपने मुखिया सेनापतियों के पांव उखड़ते देख सारे पण्डित एकबार ही चिल्ला कर पूछने लगे, बताओ वेद में प्रतिमा शब्द है अथवा नहीं।

स्वामी जी ने शांत भाव से उत्तर दिया, वेद में प्रतिमा शब्द तो है।

फिर उन लोगों ने क्रम से पूछा यदि वेद में प्रतिमा शब्द है तो किस प्रकरण में ? और आप इसका खण्डन क्यों करते हैं।

स्वामी जी ने उत्तर में कहा प्रतिमा शब्द यजुर्वेद के ३२ वें अध्याय के तीसरे मन्त्र में है। यह सामवेद के ब्राह्मण में भी विद्य-

मान है । परन्तु पाषाण आदि की प्रतिमा के पूजन का विधान कहीं भी नहीं है, इसलिए मैं इसका खण्डन करता हूँ ।

उनके पूछने पर स्वामी जी ने उन प्रकरणों का विस्तार पूर्वक वर्णन कर दिया जिसमें प्रतिमा शब्द आया है । इस पर उच्छृंखल पंडित चुप हो गये ।

इतने काल में बाल शास्त्री जी को विश्राम मिल गया और वे फिर प्रश्न पूछने लगे । परन्तु दो तीन प्रश्न करके फिर मौन हो गये । इसके पश्चात् विशुद्धानन्दजी ने स्वामी जी से पूछा, "वेद कैसे उत्पन्न हुए हैं ?"

स्वामीजीः—वेद का प्रकाश ईश्वर ने किया है ।

विशुद्धानन्द जीः—वेदों का प्रकाश किस ईश्वर से हुआ है ? न्याय-वर्णित ईश्वर से या योग कथित ईश्वर से अथवा वेदांत प्रतिपादित ईश्वर से ?

स्वामी जीः—क्या आपके निश्चय में अनेक ईश्वर हैं ।

विशुद्धानन्दजीः—ईश्वर तो एक ही है परन्तु वेदों के प्रकाशक ईश्वर का क्या लक्षण है, यह बताइये ।

स्वामीजीः—उसका लक्षण है सच्चिदानन्द ।

विशुद्धानन्द जीः—ईश्वर और वेद में क्या सम्बन्ध है ?

स्वामी जीः—वेद और ईश्वर में कार्य-कारण का सम्बन्ध है ।

विशुद्धानन्द जीः—जैसे मन में और सूर्य आदि में ब्रह्म बुद्धि करके प्रतीक उपासना कही है वैसे ही शालीग्राम आदि में ईश्वर भावना करके पूजने में क्या हानि है ?

स्वामी जीः— शास्त्र में मन आदि में ब्रह्मोपासना करने का तो विधान है, परन्तु पाषाणादि में उपासना करने का वचन किसी भी शास्त्र में नहीं मिलता ।

यह उत्तर सुनकर विशुद्धानन्द जी को तो अपनी बातों को विराम देना पड़ा परंतु माधवाचार्य ने पूछा, "उद्बुध्यस्वाग्ने" इस मन्त्र में जो 'पूर्त' शब्द पड़ा है उसका आप क्या अर्थ करते हैं ? और मूर्तिपूजन अर्थ क्यों नहीं है ?

स्वामी जीः— यहां 'पूर्त' शब्द से कूआं, तड़ाग, वापी और उद्यान आदि लोक—हितकर कार्यों का ग्रहण किया जाता है। पूर्त शब्द पूर्ति का वाचक है। इससे मूर्तिपूजा का ग्रहण कदापि नहीं हो सकता। विशेष जानना चाहते हो तो इस मन्त्र का निरुक्त और ब्राह्मण देख लीजिये।

मूर्ति-पूजन के पक्ष में माधवाचार्य निरुत्तर हो गये और किंचित विश्राम लेकर फिर पूछने लगे—"पुराण शब्द वेदों में आया है कि नहीं ?"

स्वामीजीः—पुराण शब्द तो वेद के अनेक स्थलों पर विद्यमान है, परन्तु वह है पुरातन काल का वाची, सनातन अर्थ का बोधक। उससे ब्रह्मवैवर्त और भागवतादि पुराण ग्रन्थों का ग्रहण नहीं हो सकता।

विशुद्धानन्द जीः —वृहदारण्यक उपनिषद् में 'पुराण' शब्द आया है वह आपको प्रमाण है कि नहीं ? यदि प्रमाण है तो बताओ, वहां 'पुराण' किसका विशेषण है ?

स्वामी जीः—वृहदारण्यक का 'पुराण' शब्द मुझे प्रमाण है परन्तु वह किसका विशेषण है यह, पुस्तक दिखाइये बता दूंगा ! तब जो पुस्तक लाकर स्वामी जी को दिखाने लगे वह वृहदारण्यक नहीं था, किन्तु गृह्यसूत्र का एक ग्रंथ था। माधवाचार्य ने उस ग्रंथ का पन्ना पकड़ कर कहा, इसमें पुराण शब्द किसका विशेषण है ?

स्वामी जीः—पाठ तो पढ़िये।

माधवाचार्य जी ने 'ब्राह्मणानीतिहासपुराणानीति' यह पढ़ कर सुनाया।

स्वामी जीः—यहां पुराण शब्द 'ब्राह्मण' शब्द का विशेषण है। इसका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण पुरातन अर्थात् सनातन हैं।

बाल शास्त्री जी—क्या कोई ब्राह्मण नूतन भी है?

स्वामीजीः—ब्राह्मण नवीन तो नहीं हैं, परन्तु किसी को सन्देह करने का अवकाश ही न मिले इसलिए यह विशेषण रखा गया है।

विशुद्धानन्द जीः—इस पाठ में ब्राह्मण और पुराण इन दो शब्दों के बीच इतिहास शब्द व्यवधान रूप पड़ा है, इसलिए 'पुराण' शब्द विशेषण नहीं हो सकता।

स्वामी जीः—यह कोई भी नियम नहीं है कि व्यवधान होने पर विशेषण न हो सके। देखिये, भगवद्गीता के 'अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे, इस श्लोक में विशेषण कितना दूर पड़ता है।

विशुद्धानन्द जीः—"इतिहास पुराणानि" इस पाठ में यदि इतिहास शब्द का 'पुराण' शब्द विशेषण नहीं है तो क्या इससे यहां नवीन इतिहास ग्रहण करोगे?

स्वामी जीः—'इतिहासपुराणः पंचमो वेदानां वेद" छान्दोग्य के इस पाठ में 'पुराण' शब्द 'इतिहास' शब्द का विशेषण है।

इस पर वामनाचार्य आदि अनेक पंडित कहने लगे कि यह पाठ उपनिषद् में नहीं है। स्वामी जी ने उनको बलपूर्वक कहा मैं लिख देता हूँ और आप भी लिख दीजिये कि यदि ऐसा पाठ उपनिषद में निकल आये तो आपकी हार समझी जाय और यदि न निकले तो आपकी जय।

यह सुन कर सबके मुख बन्द हो गए और कितनी ही देर तक सारे सभा स्थल में एक सन्नाटा सा छाया रहा।

जब देर तक किसी ने कोई प्रश्न न किया तो महर्षि दयानन्द ने सब पण्डितों को ललकार कर कहा, आपमें से जो व्याकरण जानते हैं वे बतायें कि व्याकरण में कहीं 'कलम' संज्ञा की गई है अथवा नहीं ?

बाल शास्त्री जीः—संज्ञा तो नहीं की है, किन्तु एक स्थल में एक भाष्यकार ने उपहास अवश्य किया है।

स्वामी जीः—आप अपने कथन की पुष्टि में कोई प्रमाण उपस्थित करें और बतायें कि भाष्यकार ने कहां उपहास किया है ?

यह कथन सुनकर बाल शास्त्री चुप हो गये और दूसरे पंडितों को भी मौन मुद्रा किंचिन्मात्र भंग न हुई।

कूट नीति का प्रयोग—दोपहर ३ से ७ बजे तक निरन्तर चार घण्टे बीत गये। पौराणिक दल के सभी महारथी मिलकर और अलग-अलग दयानन्द-अभिमन्यु पर प्रहार करते रहे; परन्तु उनके सभी प्रमाण एवं युक्तियों के अस्त्र महर्षि की युक्तियों और अकाट्य प्रमाणों के सामने कुण्ठित होते गये—वे न्याययुद्ध में महर्षि को अजेय समझने लगे।

इस समय सूर्य अस्त हो चुका था। अन्धेरा धीरे-धीरे घना होता जा रहा था। इसी समय पं० वामनाचार्य ने दो पुराने पन्ने, जो अत्यन्त अस्पष्ट लिखे हुए थे, निकाल कर कहा कि ये वेद के पन्ने हैं। इनमें लिखा है कि 'यज्ञ की समाप्ति पर दसवें दिन पुराणों का श्रवण करे। (यज्ञ समाप्तौ सत्यां दशमे दिवसे पुराणपाठं शृणुयात्'।) वामनाचार्य ने कहा यहां पुराण शब्द विशेषण नहीं हो सकता।

महर्षि ने कहा पढ़कर सुनाइये। विशुद्धानन्द जी ने पन्ने पकड़ कर महर्षि की ओर किये और कहा आप ही पढ़ लीजिये। महर्षि ने पन्ने विशुद्धानन्द जी को लौटा दिए और कहा आप ही पढ़ लीजिए। विशुद्धानन्दजी ने पन्ने फिर लौटाते हुए महर्षि से कहा कि मैं चश्मे के बिना नहीं पढ़ सकता, इसलिए आपको ही पढ़ना होगा।

महर्षि ने पन्ने हाथ में ले लिए। दीपक के धुंधले प्रकाश में पहले वे पुस्तक का नाम देखने का यत्न करने लगे; वेद के नाम, अध्याय अथवा मन्त्र संख्या का वहां कुछ पता न था। अभी दो मिनट भी न हो पाये थे कि विशुद्धानन्द ने कहा हमें देर होती है। और दयानन्द की पीठ पर हाथ फेर कर बोले—"ओ, हो ! हार गये।" और यह कहते ही उन्होंने ताली बजाई। दूसरे पंडितों और महाराजा ने भी उनका साथ दिया। "दयानन्दः पराजितः" कहते हुए सबके सब चलते बने। महर्षि ने विशुद्धानन्द का हाथ पकड़ कर बैठ जाने का बहुतेरा अनुरोध किया—पर वह तो उनकी कूटनीति का एक बड़ा दांव था; बैठकर और महर्षि को उचित समय देकर वे भला अपने दांव की विफलता क्यों होने देते।

पचास हजार की भीड़ में हुल्लड़ मच गया। ताली और 'दयानन्द हार गया' के कोलाहल के अतिरिक्त महर्षि पर ईंटों, कङ्करों, ढेलों, गोबर और जूतों की वर्षा भी हुई। परन्तु पं० रघुनाथ प्रसाद कोतवाल ने महर्षि को खिड़की के भीतर कर किवाड़ बन्द कर दिये और उपद्रव-कारी गुण्डों को सिपाहियों ने सम्भाल लिया। इस राजकीय सहायता के बिना महर्षि की रक्षा निश्चय ही संदेहास्पद थी। कुछ भी हो, रघुनाथप्रसाद कोतवाल की निष्पक्षता की खूब प्रशंसा रही। महर्षि ने शास्त्रार्थ से पहले अपने प्रामाण्य-ग्रन्थों की सूची देने से इन्कार कर दिया था, जिस पर पण्डितों ने शास्त्रार्थ करना ही अस्वीकार कर दिया। तब इन्हीं रघुनाथप्रसाद ने महर्षि से अनुरोधपूर्वक उनके

प्रामाण्यग्रन्थों की सूचि दिलवाई। फिर पंडितों के महर्षि को घेर कर बैठने की जो अव्यवस्था की उसकी भी उसने निन्दा की। और अन्त में गुण्डों से महाराज की रक्षा की। अस्तु।

विफल प्रयत्न—शोक है कि यह सारा आयोजन, जिस पर इस वार सारे भारत की आंखें केन्द्रित होगईं थी; जिस पर महर्षि को विश्वास था कि मूर्तिपूजा के वेद-विहित होने न होने का विद्वन् मण्डली से अन्तिम निर्णय हो जाएगा; जिसके लिए काशी के दिग्गज पण्डितों का सारा विद्याबल और काशी-नरेश के कौशल व धन का भारी भाग व्यय हुआ—वह यों ही, उच्छृङ्खलता में ही, समाप्त होगया। मूर्ति-पूजा और पुराण के वेद-प्रामाण्या का प्रामाण्य वास्तविक प्रश्न वैसा ही अनुत्तरित रह गया।

पंडित ही नहीं, सिद्ध भी—इस भारी गड़बड़ और हुल्लड़ अपमान और निरादर में भी महर्षि का मन एक मिनट के लिए भी विचलित नहीं हुआ; उन्हें अपने साथ हुए अन्याय के कारण दुःख तो हुआ परन्तु इससे किसी प्रकार की घबराहट, अशान्ति अथवा चिड़चिड़े-पन का कोई लक्षण महर्षि की मुख-मुद्रा पर लक्षित नहीं हुआ। वे पूर्ववत् शान्त थे। आपने पं० जवाहरदास से इतना अवश्य कहा 'बड़ी आशा थी कि इतने विद्वानों के एकत्र होने पर शास्त्रार्थ न्याय-पूर्वक होगा। शास्त्रार्थ तो कई दिन होने को था, एक दिन के लिए होने की बात नहीं थी। 'पण्डितों ने यह बहुत ही अन्याय किया है।'

काशीवासी सन्त ईश्वरसिंह ने आनन्दोद्यान से आते क्षुब्ध जन-समुदाय में विद्यार्थियों, पण्डितों और साधारणजनों से महर्षि के सम्बन्ध में प्रयुक्त अपशब्द सुने थे। उनका विचार हुआ कि देखें—दयानन्द की मुखमुद्रा और चित्त की अवस्था इस व्यवहार के पश्चात् कैसी है! वे तत्काल महाराज के आश्रम को गये।

पहुँचने पर उन्होंने देखा महाराज चांदनी में टहल रहे थे। ईश्वरसिंहजी का उन्होंने सदा की भांति मुस्कराते हुए स्वागत किया। आत्मा-परमात्मा सम्बन्धी वार्तालाप होता रहा। ईश्वरसिंहजी को महाराज के मुखमण्डल पर विषाद की थोड़ी भी कालिमा नहीं दीख पड़ी। लोगों के अन्याय का भी नाम उस समय उन्होंने नहीं लिया। तब उन्होंने महाराज के प्रति अगाध श्रद्धान्वित हो कहा—'महाराज आज तक मैं आपको वेद का महान् पंडितमात्र समझता था, आज आपके हृदय को राग-द्वेष से मुक्त अनुभव कर मुझे पूर्ण विश्वास हुआ कि आप वीतराग महात्मा और सिद्ध पुरुष हैं।

शास्त्रार्थ के पश्चात्—इस दिन के पश्चात् एक मास तक महर्षि काशी में ही विराजमान रहे। वे रण-स्थल छोड़ कर भागने वालों में से नहीं थे। धर्म के ठेकेदार पंडितों ने व्यवस्थाएं प्रकाशित कीं कि दयानन्द के पास जाने वाला, पापी और पतित होगा, उसका जाति बहिष्कार किया जायगा। इससे इनके समीप आने वालों की संख्या अवश्य कम हुई—परन्तु फिर भी वह संख्या पर्याप्त रही। महर्षि का प्रताप और प्रभाव बढ़ता गया। महर्षि पंडितों को फिर भी शास्त्रार्थ के लिए ललकारते रहे; परन्तु पंडित अब वह गलती क्यों दोहराते ? दुबारा शास्त्रार्थ नहीं हुआ।

'दशमेहनि किंचित्पुराणमाचक्षीत' इस जिस सन्दिग्ध वाक्य को दयानन्द-भीष्म का शिखण्डी बनाया गया था, महाराज ने अगले ही दिन एक मुद्रित विज्ञापन द्वारा उसकी पोल जनता के सम्मुख रखदी। काशी-शास्त्रार्थ नाम से पुस्तकाकार में भी सारा विवरण टिप्पणी सहित छापकर बांटा गया। परन्तु काशी के पण्डितों में महर्षि के सम्मुख फिर से खड़ा होने का साहस ही नहीं था।

समाचार पत्रों की सम्मतियां—इस शास्त्रार्थ के परिणाम

तथा अन्य वर्णन के सम्बन्ध में तत्कालीन कुछ पत्रों की सम्मतियां निम्न प्रकार हैं:—

"क्रिश्चियन इन्टैलिजैन्सर"—(मार्च १८७०) में शास्त्रार्थ में उपस्थित किसी प्रसिद्ध व्यक्ति (A. F. R. H.) के वर्णन का कुछ भाग इस प्रकार है:—"जब मैं नवम्बर मास में काशी लौट कर आया तो मेरा उनसे साक्षात्कार हुआ। भरतपुर के महाराज के साथ मैं उनसे मिलने गया।"......यह सुन कर विशुद्धानन्द प्रभृति पंडित गण बोले कि समस्त वेद उन सबके ही कण्ठस्थ हैं। तब दयानन्द ने कई प्रश्न किये, किन्तु वे दयानन्द के प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सके।...... दयानन्द ने उस उल्लिखित अंश को ध्यान से देखने के अभिप्राय से दोनों पत्रों पर दो मिनट भी दृष्टिपात नहीं किया था कि इतने में पण्डित गण......चले गये।

हिन्दू पैट्रियट—(१७ जनवरी १८७०)......सभा में दयानन्द के साथ पंडितों का बहुत देर तक वाक्-युद्ध रहा। शास्त्र के सम्बन्ध में पंडितों की तीक्ष्ण दृष्टि होने पर भी वे लोग निस्सन्देह दयानन्द से पराजित हो गये थे अर्थात् उन्हें न्यायानुसार पराजित करना असंभव समझ कर पंडितों ने अन्याय युक्त विचार का आश्रय ग्रहण कर लिया था।......हमने देखा दयानन्द की मूर्ति ऋषि के समान है उनका मुख सर्वदा प्रफुल्लित और प्रकृति अत्यन्त सरल है।...... उन्होंने वेद प्रतिपादित विशुद्ध ब्रह्मवाद को प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से एक वेद-विद्यालय की स्थापना करने का भी संकल्प किया है।

रुहेलखण्ड समाचार पत्र—(कार्तिक सं० १९२६) "स्वामी दयानन्दजी मूर्तिपूजा के विरुद्ध हैं। उनका शास्त्रार्थ कानपुर के पंडितों से भी हुआ था और अब उन्होंने काशी के पण्डितों को भी जीत लिया है।"

"ज्ञान प्रदायिनी" पत्रिका लाहौर—(चैत्र सं० १९२६) इसमें सन्देह नहीं कि पण्डित लोग मूर्ति-पूजा की आज्ञा वेदों में नहीं दिखा सके ।

तत्त्व-बोधिनी पत्रिका—(ज्येष्ठ सं० १७९४ बंगाली सं०) "वेद से प्रतिमा पूजन-व्यवस्था देकर कोई पण्डित स्वामी दयानन्द जी को नहीं हरा सका, इसलिए स्वामी जी को बड़ा वेदवेत्ता समझना चाहिए ।.......'इस विषय में काशीनरेश की पंडित सभा तथा अन्य देशों के विद्वान् भी उपस्थित थे परन्तु किसी ने भी वेदों से प्रतिमा-पूजन न दिखाया

प्रत्नकम्रनन्दिनी—(दिसम्बर १८६९) इस पत्रिका के सम्पादक पं० सत्यव्रतसामाश्रमी शास्त्रार्थ में उपस्थित थे । उन्होंने इस शास्त्रार्थ का विवरण अपनी पत्रिका के उक्त अंक में प्रकाशित किया । वह वर्णन ऊपर लिखे वर्णन से मिलता है ।

"पायोनियर"—(२० नवम्बर १८६९) में A. K. M. नाम से लिखे लेख में लिखा है :—"धर्म के विषय में शीघ्रता से परिणाम निकालने से उसकी बातों की सत्यता व असत्यता सिद्ध नहीं होती ।... हमें यह आशा कभी न थी कि महाराजा और लगभग सभी प्रतिष्ठित नागरिकों की उपस्थिति में विषय का निर्णय ऐसी उतावली और ऐसे असभ्य व्यवहार से पण्डितों के अनुकूल जबर्दस्ती कर लिया जायगा ।" "विषय का नियम और क्रमबद्धता से अन्तिम निर्णय करने के लिए दूसरी सभा होनी चाहिए ।"

राजपंडित द्वारा ऋषि का समर्थन—यहां यह ध्यान देने योग्य बात है कि राजपण्डित तारानाथ तर्करत्न ने एक प्रतिष्ठित बंगाली सज्जन बाबू चन्द्रशेखर से निज में स्पष्ट कह दिया था कि मैं भली भांति जानता हूँ कि यह पौराणिक प्रपंच ठीक नहीं है, दयानन्द

जो कहते हैं सो ठीक है, परन्तु...राजा की प्रसन्नता के लिए...यही कहना पड़ता है कि मैं दयानन्द को शास्त्रार्थ में हरा दूंगा।

आगे चल कर हम देखेंगे कि मंगलवार ८ अप्रैल सन् १८७३ को हुगली में बड़े असमंजस के पश्चात् इन्हीं राजपण्डित ने स्वामीजी से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ किया। शास्त्रार्थ के पश्चात् आपने मूर्तिपूजा को मिथ्या स्वीकार किया अपनी विवशता भी आजीविका-वश प्रकट की।

स्वामी कैलाश पर्वत—काशी के पण्डितों ने दयानन्द का धूर्तता से मुकाबला किया; इससे उनका अपयश और दयानन्द का यश बढ़ेगा।

बाल शास्त्री—गोस्वामी घनश्यामदास मुलतान निवासी ने बाल शास्त्री से इस सम्बन्ध में पूछा तो उत्तर मिला—'हम गृहस्थ हैं और वह यति संन्यासी हमारे पूज्य, उनका हमारा शास्त्रार्थ कहां बन सकता है।"

शास्त्रार्थ ठीक नहीं हुआ—हरे कृष्ण व्यास, जयनारायण तर्क पञ्चानन, शिवकृष्ण वेदान्त सरस्वती आदि ने कहा—शास्त्रार्थ तो ठीक नहीं हुआ, परन्तु..........दयानन्द हार गया। (—?)

नरेश का पश्चात्ताप—काशी-नरेश इस समय तो यह कुटिल चाल चल गये, परन्तु कई वर्ष पश्चात् जब महर्षि फिर काशी में पधारे तो बड़े आग्रह से उन्हें राजगृह में बुलाया। अनुनय-विनय से महर्षि दयाद्र हो उठे और पधारे। काशी-नरेश ने बड़े सम्मान से स्वागत किया उन्हें स्वर्ण सिंहासन पर बिठाया, आप रजत-सिंहासन पर बैठे। अपने हाथों महर्षि के गले में फूलों की माला डाली, चरण-वन्दना की और विनीत भाव से कहा—"मैं बहुत दिनों से मूर्तिपूजा करता

चला आता हूँ। उसके प्रति मेरा अनुराग और श्रद्धा है। इसलिये आपके उसका प्रतिवाद करने पर मुझे बहुत कष्ट हुआ। शास्त्रार्थ के समय यदि आप मेरे किसी आचार से क्षुब्ध हुए हों तो मुझे क्षमा करें।" महर्षि ने नरेश को क्षमादान किया।

स्वामी जी के हितचिन्तक पं० जवाहरदास ने इस सम्बन्ध में स्वामीजी को सम्मति दी थी कि वे नरेश-निमन्त्रण पर राज प्रसाद में न जावें। महर्षि एक बार रुके भी परन्तु अत्यन्त आग्रह पर फिर चले ही गये। पं० जवाहरदास जी का विचार था कि महर्षि न जाते तो नरेश स्वयं उनके पास आते।

रामस्वामी का घमण्ड—शास्त्रार्थ के अतिरिक्त कुछ अन्य घटनाएं भी यहां हुईं। रामस्वामी एक गर्वीले पण्डित थे। वे स्वामी जी का मुंह भी नहीं देखना चाहते थे और उनके सन्मुख देववाणी (संस्कृत) में बात करने को पाप कहते थे। इन्होंने हारने वाले की नाक काट लेने के लिए छुरी रखना शास्त्रार्थ करने की शर्त उपस्थित की। स्वामीजी ने कहा–एक नहीं दो रखो, दूसरी जीभ काटने के लिए परन्तु शीघ्र ही इसका घमण्ड दूर हो गया। निरुत्तर हो चलता बना।

गंगा में डुबोने का यत्न—महर्षि ने काशी में मुसल्मानी मत का भी खण्डन किया। इससे मुसल्मान चिढ़ गये। एक दिन वे गंगातट पर अकेले थे—मुसल्मानों की एक टोली उधर आ निकली। उसमें से दो व्यक्तियों ने महाराज की बगलों में हाथ देकर उन्हें अधर उठा लिया और गंगा में फैंकना चाहा। महर्षि उनका दृढ़ संकल्प ताड़ गये। उन्होंने दोनों को अपनी भुजाओं में कस कर गंगा में छलांग मारी और फिर स्वयं डुबकी लगा दूसरे पार जा निकले। वे दोनों वहीं डुबकी खाते छोड़ दिये।

पान और भोजन में विष—एक मनुष्य भोजन लेकर आया—महाराज ने कहा मैं भोजन कर चुका हूँ। इस पर उसने पान लेने का आग्रह किया। महाराज ने पान ले लिया। पीछे खोल कर देखा तो उसमें विष था। वह मनुष्य इतनी देर में भाग गया था।

प्रयाग के कुम्भ मेले में

मिर्जापुर होते हुए माघ शुक्ला ५ सं० १९२६ (सन् १८७० ई०) को महर्षि प्रयाग पधारे यहां कुम्भ का मेला था। उनके आगमन का समाचार शीघ्र ही सर्वथा फैल गया। इस समय भी महाराज पहले की भांति एक मात्र कौपीनधारी थे। काशी-शास्त्रार्थ के कारण उनका नाम पहले से भी अधिक व्याप्त हो चुका था।

बाबू देवेन्द्रनाथ ठाकुर से भेंट—बाबू देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि ब्राह्म समाज के नेताओं ने इस मेले में ही पहले पहल महर्षि का साक्षात्कार किया। उनके आने के समय महर्षि लेटे हुए थे, सूचना पाकर उठ बैठे। दोनों महानुभावों में देर तक प्रेमालाप होता रहा। महाराज ने उनसे '*वैदिक पाठशाला*' स्थापित करने का प्रस्ताव किया। ठाकुर महाशय ने उत्साह प्रकट करते हुए कहा—आप कलकत्ता पधारें, उस समय इस विषय पर परामर्श होगा।

वैदिक पाठशाला का स्वरूप—प्रतीत होता है कि उस समय महर्षि के मन में एक ऐसी संस्था की स्थापना का विचार उत्पन्न हो रहा था जो वैदिक धर्म की स्थापना में उनकी सहायक हो। ऐसी संस्था का रूप इस समय तक वे वैदिक पाठशाला के रूप में देख रहे थे। १७ जनवरी १८७० के 'हिन्दू पैट्रियट' का एक उद्धरण हम पृष्ठ १४९ पर उद्धृत कर चुके हैं—उसी लेख के सम्पादक ने वैदिक पाठशाला के विचार का समर्थन किया है। इसके पश्चात् पत्र के

लेखक महोदय ने महर्षि से भेंट करके वैदिक पाठशाला के स्वरूप के सम्बन्ध में उनके विचार जानने का यत्न किया—इन विचारों का सारांश १४ फरवरी १८७० के 'हिन्दू पैट्रिअट' के अंक के आधार पर इस प्रकार है:—प्रथमतः संस्कृत साहित्य की शिक्षा देने के लिये एक योग्य पंडित रखना चाहिए। सरस्वती महाशय (महर्षि दयानन्द) का विचार एक ऐसी शिक्षण-विधि के प्रचार करने का है जिससे वेदों का अर्थ स्पष्टतया समझ में आजाय और इसलिए उनकी इच्छा है कि पंडित उन गिने-चुने सर्वश्रेष्ठ विद्वानों में से निर्वाचित किये जांय जिन्हें वे जानते हैं......इन महापुरुष (विरजानन्द जी) के कुछ शिष्य हैं, जिन्हें यदि उदारतापूर्वक वेतन दिया जायगा तो वह प्रसन्नता से प्रस्तावित विद्यालय के अध्यापक पद को ग्रहण कर लेंगे। वेतन ७५) से १००) मासिक तक होना चाहिये।" दो वर्ष में संस्कृत साहित्य में पूर्ण प्रवेश करने के पश्चात् १००) रु० मासिक पर एक दूसरा पंडित रखा जाय जो वैदिक साहित्य की शिक्षा दे। इस विद्यालय में देशीय ज्वद्यालयों के पण्डितों और संस्कृत कालेज की उच्च श्रेणी के छात्रों को प्रविष्ट होने की प्रेरणा की जा सकती है।......नवद्वीप और दूसरे समाजों के छात्रों के प्रवेश की सम्भावना से पुस्तकादि क्रय तथा अन्य सारी आवश्यकताओं को पूरा करने की व्यवस्था भी होनी चाहिए। आरम्भ में इतना चन्दा कर लेना चाहिये जिससे १००) रु० मासिक पंडित को दिया जा सके और १० छात्रों की शिक्षा का आवश्यक व्यय चल सके।"

पं० मोतीराम से धर्मालाप—महाराज के पूर्व परिचित पं० योतिःस्वरूप उदासी भी तीस-चालीस मनुष्यों सहित महर्षि के दर्शनार्थ पधारे। हाथरस के प्रसिद्ध विद्वान् पं० हरजसराय और स्वामी विशुद्धानन्द दोनों गुरुभाई थे। अपने विद्यार्थियों में स्वामी जी से

शास्त्रार्थ की डींग हांकते रहने पर भी और निमन्त्रण प्राप्त करके भी वे शास्त्रार्थ से बचते रहे ।

मिर्जापुर निवासी पं० मोतीराम अच्छे विद्वान् थे । इनका वासुकी मन्दिर की ओर के घाट पर स्वामीजी से अचानक साक्षात्कार हुआ। पीछे इनमें धर्मचर्चा हुई । महर्षि ने उन्हें समझाया—प्रतिमा-प्रतिष्ठा और आवाहन के मन्त्रों के नाम से जो मन्त्र पढ़े जाते हैं उनमें प्रतिष्ठा और आवाहन के सम्बन्ध में एक भी शब्द नहीं है।

माधव बाबू का काया पलट—यहां की एक प्रसिद्ध घटना माधवचन्द्र चक्रवर्ती के कायापलट होने की है। यह बंगाली ब्राह्मण हिन्दू धर्म और ईश्वर से आस्था खोकर नास्तिक एवं मुसलमानी मत की ओर झुक गया था । मद्य-मांस के सेवन और वेश्यागमन के कारण आचारहीन था । पी० डब्ल्यू० डी० में ओवरसियर पद पर रहकर पुष्कल धन राशि का स्वामी था । तीक्ष्ण-बुद्धि और अंग्रेजी-फारसी पढ़ा था । अपने आपको बड़ा तार्किक समझता था ।

इसने १०१ प्रश्न लिख रखे थे— जिनके उत्तर वह प्रत्येक धर्मनेता से चाहता था । बा० देवेन्द्रनाथ ठाकुर से भी उसका सन्तोष न हुआ था। सुविख्यात महर्षि दयानन्द का प्रयाग में आगमन सुन वह उनकी सेवा में भी पहुँचा । महर्षि से टक्कर लेकर वह थोड़ी ही देर में लड़-खड़ा गया—उसका गर्व खर्व हो गया; अविश्वास का अन्धकार छिन्न-भिन्न होगया—घोर नास्तिक से ईश्वर का पूर्ण विश्वासी बन गया। महर्षि ने स्वयं अपने हाथों से उसे सन्ध्या और बलिवैश्वदेव की विधि लिखकर दी ।

माधव बाबू का काया पलट होगया । अब वह ब्राह्ममुहूर्त में उठ सन्ध्याहवन और गायत्री का जाप करने लगे । इनके इस परिवर्तन पर मित्र चकित थे एक वार उन्होंने अपने मित्र शरच्चन्द्र चौधरी

ग्वालियर निवासी को अपने ग्वालियर प्रवास में उनके घर ठहरने की सूचना दी। शरच्चन्द्र मत्स्यमांस भोगी सुरापायी को घर नहीं ठहरने देना चाहते थे। पर माधव बाबू तो आ ही गये। पश्चात् शरच्चन्द्र को अपने मित्र के विचार एवं व्यवहार में परिवर्तन देख अत्यधिक आश्चर्य एवं आनन्द हुआ। माधव बाबू इन्हीं दिनों एक मुकद्दमे में महर्षि की आज्ञानुसार सत्य कह कर मुकद्दमा हार गये। परन्तु इस हार पर भी उन्होंने अपूर्व शांति अनुभव की।

इन्हीं माधव बाबू ने महर्षि को उनके प्राणहरण की चेष्टा में लग्न मुसल्मानों से बचाया था।

महाराज के संसर्ग एवं उपदेश से इन दिनों प्रयाग के अनेक लोग ईसाई होने से बचे थे।

खड़े होकर गायत्री जाप—शरत बाबू ने उक्त माधव बाबू को खड़े होकर गायत्री जाप करते देखा था। इसका कारण पूछने पर माधव बाबू ने कहा—महर्षि का यही आदेश है, सन्ध्योपासना के पश्चात् खड़े होकर गायत्री का जाप करने से पूर्वकृत दुष्कृतों का मालिन्य नष्ट हो जाता है।

प्रवृत्ति और निवृति मार्ग--एक साधु से वार्तालाप तथा उसी दिन व्याख्यान देते हुये महर्षि ने बताया—निवृत्ति मार्ग का जीवन पशु-जीवन से भी बुरा है। दूसरों को निवृत्ति का उपदेश और स्वयं उदरपूर्ति के लिये जहां-तहां भीख मांगना' भला इसमें क्या भलाई है। क्रियात्मक जीवन ही जीवन है, और वेदविहित कर्म करना ही निवृत्ति मार्ग है।

विदुषी बाजी बढ़नगरी—इन दिनों संगम पर रहती थी—वह महर्षि से धर्मालाप करके संतुष्ट हुई थी।

देश की दरिद्रता पर आंसू—"श्रीमद्दयानन्द चरित्र" के अनुसार गंगा तट पर बैठे महर्षि ने एक दिन देखा कि एक स्त्री मरे हुए बालक का निर्जीव शरीर तो पानी में प्रवाहित कर गई, परन्तु उसका कफन धो कर वायु में सुखाती और रोती हुई घर को चली गई।

इस दृश्य से महर्षि का मन भर आया। उन्होंने देखा भारतदेश इतना निर्धन है—कफन के कपड़े को वह अपने से अलग नहीं कर सकता। ऋषि ने निश्चय किया *"मैं इन्हीं लोगों की भाषा में प्रचार करके इनके दुःख दूर करने के साधन उपस्थित करूंगा"*।

मिर्जापुर में—प्रयाग कुम्भ मेले में प्रचार करने के पश्चात् ऋषि मिर्जापुर पधारे यहां आप रामरत्न लड्ढा के उद्यान में उतरे। यहां पहले पहल पं० मोतीराम मिले जो प्रयाग के कुम्भ पर धर्मालाप कर चुके थे।

महर्षि का द्वार यथा पूर्व मित्र, शत्रु, जिज्ञासु सबके लिए खुला रहता था। प्रातःकाल से रात्रि के १२ बजे तक उन के पास दर्शकों का तांता लगा रहता था। यहां के कलक्टर श्री जेंकिन्सन आपका यश सुन चुके थे। उन्होंने महाराज से भेंट की इच्छा प्रकट की थी—परंतु स्थान परिवर्तन हो जाने से वे दर्शनों से वंचित रहे। इनकी प्रेरणा से यहां के रईस चौधरी गुरु चरण महर्षि की सेवा में आने जाने लगे और भक्त बन गये। सेठ रामरत्न तो प्रयाग में ही दर्शन कर चुके थे, आप भी महर्षि के अनुयायी बने।

गीता प्रक्षिप्त नहीं—इनके गुरु बाबा बालकृष्ण ने महाभारत की टीका लिखी थी और इस में भगवद्गीता को प्रक्षिप्त बताया था। महर्षि ने इस बात को असत्य बताया और इस टीका में भी अनेक दोष दिखाये। बाबा बालकृष्ण ने स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने का साहस नहीं किया।

'प्रतिमा' का अर्थ—मिर्जापुर के कुछ पण्डितों ने जिनमें गोविन्द भट्ट और पंडित जयश्री भी थे—स्वामी जी को शास्त्रार्थ के लिए पत्र भेजा। इस शास्त्रार्थ में 'न तस्य प्रतिमाऽस्ति' आदि यजुर्वेद के मन्त्र के अर्थ के सम्बन्ध में जयश्री से शास्त्रार्थ हुआ। स्वामी जी ने प्रतिमा का अर्थ मूर्ति किया और इसका अन्य अर्थ करने में अनेक दोष दिखाए जयश्री उत्तर देने के स्थान पर क्रोध में आगये। जयश्री के एक साथी ने ताली बजा दी। स्वामी जी ने इसे झगड़े का संकेत समझा। वे खड़े हो गये और बाग के किवाड़ बन्द करने की आज्ञा दी। पंडित सरयूप्रसाद शुक्ल ने बीच में पड़कर झगड़ा शांत किया। ताली बजाने वाले ने क्षमा मांग ली।

'*सर्वधर्म्मान्*—परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' गीता के इस श्लोक का अर्थ महर्षि ने बताया—'सब अधर्मों को छोड़ कर।' 'शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्' व्याकरण के इस नियम के अनुसार यहां 'सर्व' का अकार 'अधर्म्मान्' के अकार का रूप होगया है।

गुण्डों की दुष्टता—गुण्डों ने यहां भी दुष्टता करनी चाही। यहां के बूढ़े महादेव के मन्दिर का पुजारी छोटूगिरि गुसाईं बहुत हृष्ट-पुष्ट और मूर्ति पूजा के खंडन के कारण महाराज से चिढ़ने लगा था। एक दिन उसने अपने कुछ साथियों समेत पहुँच कर महर्षि के साथ अशिष्ट व्यवहार करना आरम्भ किया। पहले तो उनकी जंघा से जंघा मिलाकर बैठ गया और कहने लगा 'बच्चा अभी तू कुछ पढ़ा नहीं है' आदि कुवाक्य। फिर पास रखे बताशों की ओर हाथ बढ़ाया। महर्षि ने कहा—'खालो, झूठन मत छोड़ना।' इस पर भी वह नहीं माना। महाराज ने देखा, यह दुष्टता पर उतारू है। वे सिरहाने का पत्थर लेकर खड़े होगये और ललकार कर बोले—"है कोई, किवाड़ बन्द करदो, मैं अकेला ही इनसे निपट लेता हूँ।" अबतो वे सब भय से कांपने लगे और हाथ जोड़ कर खड़े हो गये।

महाराज ने तब शान्ति पूर्वक समझाया मूर्तिपूजा अवैदिक है।

हुंकार से बेहोश—इसी प्रकार एक दिन महर्षि पं० रामप्रसाद से कुछ शास्त्रीय बातें कर रहे थे। छोटूगिरि के समझाये-बुझाये दो गुंडे वहां आकर दुष्टता दिखाने लगे। शिष्टता से रोकने पर वे नहीं रुके तो महर्षि ने ऐसा असह्य हुंकार नाद किया कि वे दोनों बेहोश हो गये—सूत्र-पुरीष भी वस्त्रों में निकल गया। पं० रामप्रसाद ने इन्हें जल के छींटे देकर चेतावनावान् किया और तब महाराज ने उचित उपदेश देकर विदा किया।

मृत्यु का पुरश्चरण—एक ओझा के कहने में आकर एक धनी सेठ ने ऋषिदयानन्द की मृत्यु का पुरश्चरण करवाना आरम्भ कर दिया। दैवयोग से सेठ के गले में ही फोड़ा निकल आया जिस से उस को चलना फिरना भी दूभर हो गया। एक दिन ओझा ने सेठ से कहा पुरश्चरण समाप्ति का दिन आरहा है, बलि के सामान की तय्यारी करा दीजिए। बेचारा सेठ स्वयं आपत्ति में फंसा था बोला—दयानन्द का सिर तो जब गिरेगा तो गिरेगा—पहले तो मेरा ही गिरा जा रहा है। कृपया पुरश्चरण एक दम बन्द कर दें।

वैदिक पाठशाला—जैसा कि हम पहले लिख चुके हैं महर्षि मन ही मन स्थान स्थान पर वैदिक पाठशालाएं स्थापित करने की योजना बना चुके थे। यहां उनके अनुरोध से चौधरी गुरुचरण रईस ने पाठशाला की स्थापना एवं संचालन का भार स्वीकार किया। मथुरा जाकर स्वामीजी अपने सहपाठी पं० युगलकिशोर तथा एक दूसरे पंडित बलदेवप्रसाद को अध्यापक नियत करके लाए। एक तीसरा पंडित भी रखा गया विद्यार्थियों के भोजन व पुस्तकों का व्यय मिलाकर १४०) मासिक का व्यय होता था जो चौ० गुरुचरण देते थे। विद्यार्थियों को इस शर्त पर भर्ती किया जाता था कि ६ मास से पहले पाठशाला

न छोड़ेंगे। जो विद्यार्थी सूर्योदय से पहले नहीं उठता था या प्रति दिन संध्या-अग्निहोत्र नहीं करता था उसे दिन भर निराहार रहकर गायत्री जाप करना होता था। इस पाठशाला के लिए आवश्यक ग्रंथ महर्षि काशी जाकर स्वयं ले आये थे। पाठशाला की स्थापना ज्येष्ठ सं० १९२७ (सन् १८७०) में हुई। उस समय विद्यार्थियों की संख्या ३०-३५ हो गई थी।

अंगरेजी भाषा का अभ्यास—कहते हैं कि मिर्जापुर में स्वामी जी ने एक बंगाली बनवारीलाल को अंग्रेजी सीखने और मैक्समूलर कृत वेदों का अंग्रेजी अनुवाद सुननेके लिए नौकर रखा था।

'अद्वैतमत खण्डन' की रचना—मिर्जापुर से महर्षि फिर काशी पधारे और दुर्गाकुंड के निकट लाला माधोराम के बाग में निवास किया। इस बार भी पूर्ववत् मूर्ति-पूजा आदि अवैदिक विधानों के खंडन में लगे रहे। काशी के पंडितों को शास्त्रार्थ के लिए ललकारा परन्तु कोई सम्मुख नहीं हुआ।

इस प्रवास में शंकराचार्य के नवीन वेदान्त के खंडन में 'अद्वैतमत खंडन' नाम की पुस्तक लिखकर प्रकाशित की। लगभग दो मास रह कर वे पश्चिम की ओर गंगा के किनारे-किनारे प्रचार करते चले गए।

पाठशाला के नियम—काशी से लौटकर सोरों आए और यहां से कासगंज पधारे। यहां पाठशाला की स्थापना का वर्णन पहले किया जा चुका है बा० देवेन्द्रनाथ मुख्योपाध्याय के लेखानुसार यह पाठशाला इस यात्रा के समय ज्येष्ठ सं० १९२७ में स्थापित की गई।

इस पाठशाला के निम्न लिखित नियम निश्चित किये गये थे:—

१—केवल वही विद्यार्थी भर्ती किया जाय जो सन्ध्या करना जानता हो।

२—वेद, अष्टाध्यायी, महाभाष्य और मनुस्मृति पढाये जांय।

३—यदि कोई विद्यार्थी सूर्योदय से पहले उठकर सन्ध्या न करे तो उसे मध्यान्ह का भोजन न दिया जाय, सायंकाल संध्या करने के पश्चात् दिया जाय।

४—नगर में रहने वाले विद्यार्थियों को यह सुविधा हो।

५—एक कोठरी में हवनकुंड खुदवा कर विद्यार्थियों को प्रातःसायं हवन की आज्ञा दी जाय।

६—दिलसुखराय गिरधारीलाल की दुकान में २८००) रु० जमा थे—वे सब की सम्मति से पाठशाला को दिये गये।

निन्दा का अर्थ—कासगंज के तहसीलदार के पास कुछ रुपया पंचायती चंदे का जमा था। कुछ लोग इससे सोरों गंगा तट पर पक्का घाट तथा दूसरे कासगंज की महर्षि द्वारा स्थापित पाठशाला को देना चाहते थे। कलक्टर ने रा० बा० बालमुकन्द को जांच के लिए भेजा। रा० ब० बालमुकन्द ने अनुभव किया कि मूर्ति पूजा के विरोध के कारण लोग स्वामी जी की पाठशाला को रुपया नहीं देना चाहते। रा० बा० ने स्वामी जी को बताया कि हिन्दू धर्म की निन्दा करने के कारण लोग आपसे नाराज हैं। महर्षि ने रा० बा० के सम्मुख निन्दा शब्द की ऐसी सुन्दर व्याख्या की कि रा० बा० अवाक् रह गये। महर्षि ने बताया कि दोषी के दोष प्रकट करना निन्दा नहीं, उसका उपकार करना है।

युद्धरत साँडों का दमन—यहां एक दिन गुलजारीलाल खत्री के बाग के सामने दो सांड परस्पर बल-परीक्षा कर रहे थे। दोनों ओर से मार्ग रुक गया था। महर्षि कुछ विद्यार्थियों सहित उधर से जा रहे थे। उन्हें ज्ञात हुआ कि यह द्वन्द्वयुद्ध लगभग दो घन्टों से चल रहा है। महर्षि ने उन रणरत सांडों के समीप जा एक-एक सींग पकड़ कर इतना बल पूर्वक धक्का दिया कि दोनों का मुंह आकाश की ओर

उठ गया और इस प्रकार वे एक दूसरे से अलग-अलग होकर मार्ग छोड़ चल दिये।

कासगंज से एक दिन बिना सूचना के आगे बढ़ गये । दो पहर को कासगंज से दो कोस पश्चिम में स्थित ग्राम—बलराम में विश्राम किया। यहां से चकेरी ग्राम में पहुँचे। 'चकेरी ग्रामः क्वास्ति' संस्कृत वाक्य सुनकर एक अनपढ चमार ने भी उन्हें चकेरी का मार्ग बता दिया। चकेरी से हनोट पहुँचे। यहां किसी विष्णु मन्दिर के चक्रांकित पुजारी के लिए लोगों ने बताया कि वह दयानन्द से शास्त्रार्थ की डींग हांका करता है। परन्तु बार बार अनेक लोगों द्वारा बुला भेजने पर भी वह शास्त्रार्थ के लिए नहीं आया।

अनूपशहर—संवत् १६२७ (सन् १८७० ई०) विक्रमी में महर्षि अनूपशहर पधारे। पहले दो दिन तो वह म० गौरीशंकर कायस्थ को बांस की टाल पर ठहरे, फिर बंगाली रईस लाला बाबू की कोठी में चले गये।

इन दिनों रामलीला की धूम-धाम थी, इस का विशेष कारण नायब तहसीलदार कल्याणसिंह का रामलीला के प्रति उत्साह था। महर्षि ने रामलीला का खंडन आरम्भ किया। इस का परिणाम लोगों की इस के प्रति अरुचि और अन्त में इस का सर्वथा बन्द होना हुआ। कल्याणसिंह इस कारण महाराज से चिढ़ गया।

महाराज को नीचा दिखाने के अभिप्राय से पहले उस ने रामघाट से कृष्णानन्द वाममार्गी को बुलाया और उसे शास्त्रार्थ के लिए उकसाया। वह अनूपशहर तो आ गया, पर पहले के अनुभव के कारण महर्षि के सम्मुख नहीं आया। दूर से ही लक्षण का लक्षण पूछता रहा महर्षि कहते रहे कि लक्षण का लक्षण नहीं होता।

इस के पश्चात् कल्याणसिंह ने अनूपशहर के तहसीलदार सैयद-मुहम्मद को भड़काया। कृष्णानन्द और महर्षि के शास्त्रार्थ को लेकर उसने कहा कि स्वामी जी झगड़ा कराना चाहते हैं। शास्त्रार्थ के निश्चित दिन जब तहसीलदार आया तो कृष्णानन्द के पास ५००-६०० अशिक्षित लोगों की भीड़ एकत्रित थी। पूछताछ का जवाब महर्षि ने शिष्टता से दिया परन्तु कृष्णानन्द ने उद्दंडता दिखाई। तहसीलदार के आदेश पर कृष्णानन्द अनूपशहर से चला गया और विवाद शान्त हो गया।

रामलीला के लिए जबर्दस्ती चन्दा लेने की शिकायत मिलने पर कलक्टर ने अनुसन्धान कर कल्याणसिंह को तीन महीने के लिए नौकरी से स्थगित कर दिया। यह कलक्टर जब अनूपशहर आया तो लाला बाबू की कोठी में ही ठहरा था। वह वहां महर्षि से मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ। सैयद मुहम्मद तहसीलदार भी महाराज का भक्त हो गया था। एक दिन उसने अपने मत की उच्चता दिखाने के लिए (?) महर्षि से कहा हमारे धर्म में तो बुत्-परस्ती (मूर्ति-पूजा) नहीं है। महर्षि ने इस का प्रतिवाद किया और कहा ताजिये बनाना भी एक प्रकार की बुत्-परस्ती है।

कैद कराना नहीं छुड़ाना मेरा उद्देश्य—अनूपशहर में ही एक ऐतिहासिक घटना हुई कि एक पंडित ने महाराज को पान में विष दे दिया। महर्षि ने योग की न्यौली क्रिया से विष को शरीर से निकाल दिया। उनके भक्त और इलाके के तहसीलदार सय्यद मुहम्मद को इस वृत्त का ज्ञान हुआ तो उसने ब्राह्मण को बन्दी बना लिया और महाराज के सम्मुख अपना महत्व प्रदर्शित करने की इच्छा से उनके पास आया। महर्षि ने उसकी ओर से उदासीनता प्रदर्शित की। अप्रसन्नता का कारण पूछने पर महर्षि ने कहा—"मैं संसार को कैद कराने नहीं बल्कि कैद से छुड़ाने आया हूँ।" आगे चल-

कर तहसीलदार ने ब्राह्मण को छुड़वा दिया। यह था महर्षि का अपूर्व क्षमा गुण और उदारता—जिसे उन्होंने जीवन पर्यन्त निबाहा।

रामघाट—कार्तिक पूर्णिमा सं० १९२७ को महर्षि रामघाट में विराजमान थे। यहां की प्रायः समस्त पंडित मंडली उनका लोहा मान चुकी थी—बहुत से विद्वान् तो उनके अनुगत हो चुके थे।

चासी—सं० १९२७ के मध्य में वे पुनः चासी के जंगल में आये। भक्तों ने ज्यों ही सुना दर्शन को दौड़े आये।

भक्त ठाकुर मुकुन्दसिंह—छलेसर के ठाकुर मुकुन्दसिंह का कर्णवास में महर्षि से साक्षात्कार हुआ था—तभी से वे महाराज के अनुगत हो गये थे। और महाराज को छलेसर पधारने का आग्रह कर गये थे। छलेसर लौटकर इन्होंने अपनी जिमीदारी के सब—२०,३०—मन्दिरों की मूर्तियां गंगा में फिंकवा दीं थी। इस सम्बन्ध में बिरादरी से बहिष्कार का भय भी नहीं माना। उनके दृढ़ संकल्प के सामने समाज का विरोध शान्त हो गया। इस भक्त शिरोमणि का आग्रह मान महर्षि मार्गशीर्ष कृष्णा ४ अथवा ५ सं० १९२७ को छलेसर पहुँचे।

छलेसर से २ दो मील दूर स्थित काली नदी पर ठाकुर मुकुन्दसिंह ने दो-ढाई सौ साथियों सहित उनका स्वागत किया। यहां से महाराज ने अनुनय-विनय करने पर भी पालकी पर बैठना स्वीकार न किया—सबके साथ पैदल ही चले।

छलेसर की इस पहली प्रचार यात्रा में शास्त्राथों का तांता लग गया। आस-पास के पंडित दो ही दिन बाद एकत्र होने लगे। अन्त में सब निरुत्तर ही हुए। पंडितों के अतिरिक्त मौलवियों और काजियों ने भी प्रश्न किये। *काजी इमदाद अली* ने महर्षि के सिद्धान्तों की सत्यता निस्संकोच स्वीकार की।

महर्षि के पधारने के दो ही दिन पश्चात् पाठशाला की स्थापना हुई। हवन के पश्चात् ब्रह्मभोज हुआ। पं० कुमार सेन इसके अध्यापक नियुक्त हुए। ये स्वामी जी के फरुर्खाबाद की पाठशाला के विद्यार्थी रह चुके थे। दो ही दिन में २० विद्यार्थी हो गये।

ठाकुर मुकुन्दसिंह और मुन्नासिंह जब तक महर्षि के दर्शन न कर लेते तब तक भोजन भी नहीं करते थे।

वर्षा में ही प्रस्थान—छलेसर से चलते समय बूंदा-बांदी हो रही थी। शिष्यों के अत्यन्त आग्रह पर भी वे रुके नहीं। यह उनके दृढ़निश्चयी होने का प्रमाण है। यहां से चलकर गंगा तटस्थ स्थानों का भ्रमण करते-कराते ज्येष्ठ संवत् १९२८ (सन् १८७१) में रामघाट पहुँचे। इस वार यहां २१ दिन ठहरे।

भाद्रपद महीने में फरुर्खाबाद पहुँचे। इन दिनों उनका अधिकांश समय शास्त्रचिन्तन और पाठशालाओं के निरीक्षण में व्यतीत होता था। यहां आये तो पाठशाला में एक घटना हुई। एक विद्यार्थी के धोती और लोटा चोरी हो गये। विद्यार्थी को गृह-निर्माण कार्य में लगे मजदूरोंके मेट सुन्दर पर संदेह था। संदेह करने पर ही विद्यार्थीको सुन्दर ने पीटा। विद्यार्थी की शिकायत पर भी ला० पन्नीलाल ने कोई ध्यान नहीं दिया। स्वामी जी को भली प्रकार निश्चय हो गया कि अपराध सुन्दर का है। महर्षि ने विद्यार्थी से न्याय किये जाने की ला० पन्नीलाल से मांग की। परन्तु ला० पन्नीलाल इसके विपरित क्रुद्ध हो गये और चौबे को कोई दंड नहीं दिया। इसके पश्चात् महर्षि ने पाठशाला वहां से उठा कर विश्रान्त घाट पर स्थापित करदी और सेठ निर्भयराम को प्रबन्धक बनाया।

फाल्गुन संवत् १९२८ (मार्च सन् १८७२) में महाराज पुनः काशी आये; शास्त्रार्थ के लिए ललकारा परन्तु कोई पंडित सम्मुख नहीं आया।

पूर्व ज्ञान—कई बार भविष्य में होने की घटना का कुछ देर पूर्व ज्ञान प्रकाशित कर महाराज अचम्भे में डाल दिया करते थे। यहां उपदेश देते-देते कहा—एक कौतूहलजनक घटना होने वाली है। इतने में एक ब्राह्मण भोजन-पात्र लेकर आया और महाराज को भेंट करने लगा। महाराज ने भोजन तो अस्वीकार कर दिया, पर पान ले लिया। खोलकर देखा तो ब्राह्मण भाग चुका था। भोजन और पान दोनों में विष था।

चैत्र शुक्ल ६ सं० १९२९ को महाराज ने कलकत्ता पहुँचने के लिए पूर्व की ओर प्रस्थान किया।

प्रामाणिक ग्रन्थ—यहां महर्षि द्वारा मान्य प्रामाणिक ग्रंथों के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। कानपुर पहुंच कर शोलापुर प्रेस में मुद्रित करवा कर जो विज्ञापन महाराज ने वितीर्ण कराया था उसके अनुसार निम्न लिखित २१ ग्रंथ प्रमाण माने थे:—

१. ऋग्वेद २. यजुर्वेद ३. सामवेद ४. अथर्ववेद इन चार से कर्म उपासना और ज्ञानकांड का निश्चय होता है) ५ आयुर्वेद—इसमें चिकित्सा है; इसके लिए चरक और सुश्रुत को सत्य स्वीकार किया : ६ धनुर्वेद (शस्त्र विद्या), ७ गान्धर्व वेद (गान विद्या), ८ अर्थवेद (शिल्प विद्या) : ये पिछले चार, वेदों के उपवेद हैं। ९ शिक्षा (वर्णोच्चारण विधि) १०. कल्प (वेद मन्त्रों के अनुष्ठान की विधि) ११. व्याकरण (शब्दार्थ के सम्बन्धों का निश्चायक शास्त्र : इसमें अष्टाध्यायी और महाभाष्य ग्रन्थ सत्य हैं) १२. निरुक्त (वेद मन्त्रों की निरुक्ति का ग्रन्थ) १३. छन्द (गायत्री आदि छन्दों का लक्षण ग्रन्थ) १४. ज्योतिष (भूत भविष्यत् के ज्ञान का ग्रन्थ : इसमें भृगु-संहिता सत्य है*) ये पिछले छः वेदाङ्ग हैं। और चौदहों का एक नाम

---

* आजकल भृगुसंहिता नाम से प्रचलित ग्रन्थ यह ग्रंथ नहीं है।

चौदह विद्या भी है। १५. उपनिषद् (ईश, केन, कठ; प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक श्वेताश्वतर और कैवल्य ये १२ उपनिषद् जिनमें ब्रह्म विद्या है) १६. शारीरिक सूत्र जिनमें उपनिषद् के मन्त्रों की व्याख्या है। १७. कात्यायन आदि के सूत्र जिनमें गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि तक के संस्कारों की व्याख्या है। १८. योगभाष्य जिसमें उपासना और ज्ञान के साधनों का वर्णन है। १९. वाकोवाक्यम् वेदानुकूल तर्कना का शास्त्र २०. मनुस्मृति (वर्णाश्रम और वर्ण संकर धर्मों की व्याख्या का ग्रन्थ) तथा २१. महाभारत इसमें शिष्ट और दुष्टजनों के लक्षण दिये गये हैं।

काशी शास्त्रार्थ से पूर्व भी इन्हीं २१ ग्रन्थों की प्रामाणिकता महर्षि ने स्वीकार की थी। यहां बा० देवेन्द्रनाथ मुकर्जी ने एक नोट दिया है जिसमें लिखा है कि महर्षि के प्रामाणिक ग्रन्थों की सूची में संवत् १९२७ में कुछ परिवर्तन होगया था। भगवद्गीता को प्रमाण न मानना तथा वेद और ब्राह्मण को पृथक् मानना ये दो मुख्य भेद देवेन्द्र-बाबू ने लिखे हैं परन्तु उपरिलिखित २१ ग्रन्थों में इन दोनों ग्रन्थों का नाम नहीं है। दूसरी बात यह लिखी है कि प्रचलित मनुस्मृति को वे मनुस्मृति न कहकर भृगुसंहिता कहते थे।

विचारधारा—१. इन दिनों वे जीवित पितरों के श्राद्ध का समर्थन करते थे। २. तीर्थों को नहीं मानते थे। ३. जीव, ब्रह्म को पृथक् मानते थे। ४. तर्क-संग्रह को नर्क-संग्रह कहते थे। ५. गोवधबन्द करवाने के लिए इतने उत्सुक थे कि विलायत जाकर महारानी विक्टोरिया और राजपरिषद् के सदस्यों के सम्मुख सारा मामला उपस्थित करना चाहते थे—इससे अंग्रेजों के प्रति विश्वास का होना भी ज्ञात होता है। ६. अंग्रेजों की वर्तमान न्याय-वितरण-प्रणाली पर आक्षेप करते थे—उनके विचार से प्रत्येक ग्राम में ग्राम पंचायत होनी चाहिए

और कई ग्राम पंचायतों पर एक न्याय-सभा। इस सभा द्वारा मुकद्दमों का निर्णय होना चाहिए।

कलकत्ता में सुधारकों से भेंट

संवत् १९२९ के आरम्भ में महर्षि ने कलकत्ता की ओर जाने का निश्चय किया। आगे चल कर पाठक देखेंगे कि इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य वैदिक पाठशाला के लिए मार्ग तय्यार करना था।

मुगल सराय में—बंगाल जाते हुए आप पहले मुगल सराय आये। पहले कुछ दिनों तक कक्निकल रोड के निकट बाबूगन्ज के श्मशान घाट पर रहकर फिर बाबू वृन्दावन मण्डल के बाग में चले गये और बाग की कोठी के चौवारे में रहे।

ईसा महापुरुष—मुगलसराय में पाठशाला के लिए धन संग्रह करने के उद्देश्य में महाराज को सफलता नहीं मिली। पादरी लाल बिहारी से धर्म-विषय पर वार्तालाप हुआ। महर्षि ने बताया कि ईसा महापुरुष अवश्य थे, परन्तु यह बात मिथ्या है कि सब के पाप अपने ऊपर लेकर चले गये। फिर ऐसा मानना पापों की वृद्धि का कारण होगा। दूसरे प्रश्न के उत्तर में महर्षि ने कहा हमें रुचि हो तो आप से भी नीच मनुष्य के हाथ का भोजन खा सकते हैं। वृन्दावन बाबू के अनुरोध पर एक दिन वे उनके घर भी गये थे।

डुमरांव में वार्तालाप—दस दिन पश्चात् स्वामी जी आगे बढ़े। डुमराऊं के उदासी साधु नागा जी की स्वामी जी से पहली भेंट काशी शास्त्रार्थ के पश्चात् काशी में ही हुई थी। साधु नागा जी ने महाराज से वचन ले लिया था कि वे कलकत्ता जाते डुमरांव अवश्य पधारें।

इस वचन के अनुसार वे डुमरांव पहुँचे। पं० जवाहरदास भी काशी से आकर स्वामी जी के साथी बने।

डुमरांव के महाराजा महेश्वर बख्शसिंह के नायब दीवान बाबू जयप्रकाश लाल थे। इनके सुझाव पर महाराजा ने स्वामीजी को बुलवा कर रेल्वे स्टेशन के समीप वाली राज्य की कोठी में ठहराया।

अभिमानी दुर्गादत्त—डुमराऊं के उच्चकोटि के विद्वान् पं० दुर्गादत्त, पं० जयगोबिन्द और पं० बंशीधर आचार्य ने महर्षि से धर्मालाप किया।

पं० दुर्गादत्त अभिमानी शैव थे। महर्षि ने इन्हें इस बातचीत में बताया:—

(१) 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' का अर्थ यह है कि जैसे किसी के घर में अन्य कोई न होतो वह कह सकता है कि यहां एक मैं ही हूँ, परन्तु इससे गांव वालों और सम्बन्धियों आदि का निषेध तो नहीं होता।

(२) "धिग् भस्मरहितं भालं" इत्यादि जाबालोपनिषद् को प्रमाण नहीं मानते।

(३) गीता के श्लोक 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' पर भी विचार विनिमय हुआ।

(४) पं० दुर्गादत्त जी वेद में मूर्ति पूजा विधेयक प्रकरण में प्रतिमा शब्द नहीं दिखा सके। अभिमानी दुर्गादत्त अनुत्तर होकर कटुता पर उतर आये। तब मुन्शी रणधीर प्रसाद पंडितों को समझा कर उठा ले गये। पं० दुर्गादत्त के अभिमान की दिग्दर्शक उनकी वह अपनी दिग्विजय पुस्तक है जो उसकी आत्मप्रशंसा से भरी पड़ी है।

आरा में—डुमराऊं से महर्षि आरा पहुँचे और महाराज डुम-

राऊ के बाग में ठहरे। यहां उनके आतिथ्य का भार मुंशी हरवंश लाल वकील और बा० रजनी कांत मुखोपाध्याय ने लिया।

पं० रुद्रदत्त और पं० चन्द्रदत्त पौराणिक से मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। स्वामी जी ने मूर्ति पूजा के समर्थन में पुराणों के प्रमाण स्वीकार नहीं किये।

पुराण किसने बनाया ?—महर्षि ने यहां पण्डितों को बताया कि महाभारत के पश्चात् अनाचार फैलने और ब्राह्मणों के भी असहाय हो जाने पर धूर्त लोगों ने स्वार्थ सिद्धि के लिये पुराणों की रचना की होगी। तन्त्र-ग्रंथों की कड़ी आलोचना से पण्डित रुद्रदत्त चिढ़ गये। और उठकर चले गये।

यहां आपके दो व्याख्यान वैदिक धर्म पर हुए एक गवर्नमेंट स्कूल के आंगन में दूसरा अन्यत्र। इसमें मूर्ति-पूजा, बाल विवाह, मन्त्र फूंक कर दीक्षा-ग्रहण आदि कुरीतियों का खंडन किया। व्याख्यान संस्कृत में था—बाबू रजनीकान्त उसका साथ-साथ अनुवाद करते जाते थे।

सभा की स्थापना—यहां आपने एक सभा की स्थापना की थी जिसका उद्देश्य आर्य धर्म और रीति-नीति का संस्कार करना था। परन्तु एक-दो अधिवेशन के पश्चात् यह सभा समाप्त हो गई।

संस्कृत-राष्ट्रभाषा—यहां महर्षि ने इस बात का स्पष्टीकरण किया कि वे संस्कृत में क्यों बोलते थे। श्री एज० डबल्यू अलेक्जेंडर मजिस्ट्रेट से महर्षि ने मुन्शी हरवंशलाल की प्रेरणा पर ही भेंट की थी। इस भेंट में मजिस्ट्रेट ने उक्त प्रश्न किया। महर्षि ने उत्तर दिया—भारतवर्ष में द्रविड़ प्रभृति अनेक भाषायें बोली जाती हैं। तब मैं किस भाषा में बोलूं। इसके अतिरिक्त संस्कृत सारे

हिन्दुओं की भाषा है। अतः संस्कृत बोलना ही उचित है।" आज स्वराज्य मिलने पर देश के अधिकांश विचारों का यही मत है कि भारत की राष्ट्रभाषा संस्कृत ही हो सकती है। इसका जो कारण महर्षि ने ऊपर व्यक्त किया था उसकी सत्यता आज अनुभव की जा रही है।

इस बातचीत में महर्षि ने हिन्दुओं की रीति-नीति और सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश डाला। वर्णव्यवस्था को कर्म और चरित्र पर निर्भर बताया। आपने बताया कि रसोई का काम करना, पाक क्रिया, ब्राह्मणों का काम नहीं था यह तो शूद्रों का कार्य है। पुराण बनाने वालों ने इस प्रथा को उठा कर अनिष्ट कर दिया। आरा में १५ दिन ठहर कर महर्षि कलकत्ता की ओर अग्रसर हुए।

पटना में एक मास—भाद्र शुक्ला ३-४ सं० १९२९ को महर्षि पटना पहुँचे और महाराज भूपसिंह के रोशन बाग में ठहरे।

मृत्यु के पश्चात् जीवन की गति—महर्षि के आगमन के समाचार से नगर में स्फूर्ति आगई। उच्च राजकर्मचारी, पंडित, प्रतिष्ठित और भक्तजन उनके सत्संग से लाभ उठाने लगे। वहां के प्रसिद्ध पंडित रामजीवन भट्ट, ५०-६० ब्राह्मणों को ले शास्त्रार्थ के लिए पहुँचे। शास्त्रार्थ आरम्भ भी हुआ पर पंडितों में स्वयं ऐकमत्य नहीं हुआ। लोग उठकर चले गये।

यहां एक प्रश्न के उत्तर में महर्षि ने बताया —मृत्यु के पश्चात् जीव-वायु के सहारे आकाश में, फिर वायु, पुष्प, अन्न और जल—के आश्रय हो कर मनुष्य के हृदय और वीर्य में पहुँचता है और स्त्री में गर्भ स्थापना करता है; वहीं फिर जन्मता है, उसको बन्ध और मोक्ष होता है।

यहां नार्मल स्कूल का एक विद्यार्थी राजनाथ तिवारी महर्षि की प्रशंसा सुनकर उनके साथ रहने का इच्छुक हुआ। महर्षि का पहला विद्यार्थी चोर था अतःएव उससे अप्रसन्न भी थे। आपने पहले तो पिता की आज्ञा के बिना उसके साथ रखने को सहमत न हुए, फिर, बहुत अनुनय-विनय देखकर सहमत हो गये। यह विद्यार्थी सायंकाल अपने सहपाठियों में आया। सबने इस के इस भाग्य की प्रशंसा की। परन्तु जब रात को लौटने का समय हुआ तो नगर से दो-ढाई कोस दूर महर्षि के स्थान पर रात को जाने से वह डरने लगा। तब सबने साहस बन्धा कर उसे भेजा। रात अंधेरी थी, बूंदें पड़ रही थीं। रास्ते में सर्पों को लांघ कर किसी प्रकार वह स्वामी जी के स्थान पर पहुँचा। तुमने रास्ते में सर्प देखा था? पहुँचते ही महर्षि मुख से यह प्रश्न सुन कर राजनाथ को आश्चर्य हुआ।

भागवत जैसी श्लोक-रचना—एक दिन एक ब्राह्मण ने भागवत के खंड १ के समय उपालम्भ दिया 'खंडन तो करते हैं आप ऐसे १८००० श्लोक बना कर दिखाएं तो जानें।' महर्षि ने कहा १८००० नहीं ३८००० बना दूं, लिखते जाओ। और जूता—खड़ाऊं के प्रश्नोत्तर में श्लोक लिखाने लगे। दो श्लोक लिख कर ही उसे महर्षि के व्याकरण और भाषा के सौष्ठव का ज्ञान हो गया। इसके पश्चात् वह महाराज को प्रणाम कर के चुप-चाप चला गया।

महर्षि पटना में एक मास रहे। चलने से १५ दिन पहले उन्होंने एक विज्ञापन द्वारा अपने जाने की और शास्त्रार्थ का अवसर देने की घोषणा की; परन्तु शास्त्रार्थ के लिए और कोई सामने नहीं आया।

आदम-हव्वा की स्मृति—३ अक्तूबर को मुंगेर के लिए बेगमपुर के स्टेशन पर जाने के लिए तैयार हुए। रात्रि के १२ बजे गाड़ी जमालपुर स्टेशन पहुँची मुंगेर की गाड़ी में अभी देर थी।

महर्षि उसी प्रकार विवस्त्र दशा में प्लेटफार्म पर टहलने लगे। एक अंग्रेज इंजीनियर अपनी पत्नी समेत वहां पहुँचा। अंग्रेज पत्नी को नंगे साधु की वहां उपस्थिति खटकी। स्टेशन मास्टर को आदेश हुआ कि वह नंगे साधु को आंखों से परे कर दे। बेचारे अंग्रेज-दम्पति को क्या मालूम था कि प्रसिद्ध सुधारक स्वामी दयानन्द उनके सामने इस प्रकार टहल रहा है।

बेचारा स्टेशनमास्टर भी अजीब उलझन में था; महर्षि से अंग्रेज दम्पति का सन्देश स्पष्ट न कह उन से कुर्सी पर एक ओर बैठ जाने की प्रार्थना की। महर्षि ने संकेत समझ उत्तर दिया—'उन से कह दो यह उस युग का पुरुष है जब बाबा आदम और बीबी हव्वा अदन के उद्यान में नंगे रहने में तनिक भी नहीं शरमाते थे। अन्त में महर्षि का पूरा परिचय प्राप्त कर अंग्रेज दम्पति ने बड़ी प्रसन्नतापूर्वक सुअवसर से लाभ उठाया; वे गाड़ी आने तक महर्षि से वार्तालाप करते रहे।

आश्विन शुक्ला १ सं० १९२९ को प्रातः काल महर्षि मुंगेर पहुँचे। इस बार उन्होंने किसी से पूछे बिना अपना निवास स्थान निश्चित करने का मानो निश्चय ही किया हुआ था। यों ही एक तरफ चल पड़े, और थोड़ी दूर चल कर किसी साधु के आश्रम में पहुँच गये। यहां दो कमरे, कुंआ, फुलवारी और गंगा की धारा—सब कुछ था; बस यहीं पर ठहरने का निश्चय किया।

भिक्षा मांगने भी न दी—महर्षि इस आश्रम में चार दिन विराजे। परन्तु दो ब्राह्मणों के सिवाय उनके पास कोई नहीं आया। एक दिन उनका कहार एक टाल पर लकड़ी मांगने चला गया। टाल वाले ने टाल दिया। जब वह लौटा तो महर्षि ने राजनाथ से कहा, इसे जूते लगाओ—यह टाल पर ईंधन की भिक्षा मांगने गया था। कहार को आश्चर्य हुआ जब कि टाल वहां से दीखती भी नहीं है,

महर्षि यह बात कैसे जान गये। इतने में ही टालवाला पांच बोझ लकड़ी लेकर उपस्थित हो गया—महर्षि ने बहुत अनुनय-विनय के पश्चात् ईंधन ले लिया। परन्तु विद्यार्थी और कहार दोनों को सावधान कर दिया कि कभी किसी से भिक्षा मांगी तो दोनों को निकाल देंगे।

एक दिन एक ब्राह्मण के दृढ़ आग्रह पर महर्षि ने अपने ब्रह्मचारी को उसके घर भोजन करने और अपने लिए ले आने का आदेश दिया। वे किसी के घर भोजन करने नहीं जाया करते थे। इसके पश्चात् प्रतिदिन ३०-४० व्यक्ति महर्षि के सत्संग का लाभ उठाते रहे। महर्षि पूर्ववत् मूर्ति-पूजा का खंडन करते रहे; किसी ने कोई आक्षेप नहीं किया। १५ दिन पश्चात् कार्तिक कृष्णा २ को यहां से प्रस्थित हुए।

भागलपुर में दो मास—कार्तिक कृष्णा ४ सं० १९२९ वि० को महर्षि भागलपुर पधारे और लगभग दो मास रहकर पौष कृष्ण १ को यहां से कलकत्ता की ओर आगे बढ़ गये। यहां पहले तो गङ्गातटवर्ती बुड्ढेश्वर महादेव के मन्दिर में ठहरने का विचार किया परन्तु स्थान को अनुकूल न देखकर छपटिया तालाब पर स्थित एक मन्दिर में ठहर गये। थोड़ी देर पीछे इस मंदिर के स्वामी पं० मोहनलाल शाक्य-द्वीपी से भेंट हुई। पंडित ने महर्षि का यथोचित सत्कार किया। वह संस्कृतज्ञ था; रात को १० बजे तक उनका वार्तालाप चलता रहा।

पुत्रकामना से अन्नदान—प्रातःकाल से दर्शनार्थी आने लगे; धीरे धीरे सत्संगियों की संख्या भी बढ़ने लगी। मूर्तिपूजा का खण्डन चलता रहा; पर किसी ने टोका तक नहीं। भोजन की व्यवस्था एक अग्रवाल सज्जन ने की। परन्तु दो दिन पश्चात् ही इसका भोजन लेना महर्षि को स्वीकृत नहीं हुआ कहा—"हम ईश्वर नहीं हैं, जो तुम्हें पुत्र दें, हमें ऐसा स्वार्थ का भोजन नहीं चाहिए।" उस सज्जन को आश्चर्य हुआ कि महर्षि बिना बताये उसके मन की बात कैसे जान गये।

हाई स्कूल में व्याख्यान—एक सप्ताह पश्चात् महर्षि बा० पार्वती चरण के बाग में चले गये। बा० निवारणचन्द्र मुखोपाध्याय के उद्योग से आपका व्याख्यान 'मनुष्य के कर्तव्याकर्तव्य' पर हाईस्कूल के व्याख्यान-भवन में हुआ। वर्धमान के महाराजा भी, अपने भेजे चार नैयायिक पंडितों के द्वारा महर्षि की प्रशंसा सुन सत्संग में आये। उनके मकान पर ठहरने का निमन्त्रण मकान सुविधाजनक न होने से स्वीकार न कर सके। एक ब्राह्मणोत्पन्न बंगाली ईसाई को आपके व्याख्यानों के पश्चात् बड़ा पश्चाताप अनुभव हुआ। उसने कहा यदि आप-सा उपदेष्टा पहले मिलता तो मैं ईसाई क्यों होता। ईसाई पादरियों के हिन्दूधर्म के सम्बन्ध में किए गए प्रश्नों का उत्तर न पाकर ही मैं विधर्मी बना।

बनैला के राजा निरानन्दसिंह के साथ पालकी में सवार होकर महर्षि उसके घर तक गये। वहां उसने पुत्रेष्टि के सम्बन्ध में महर्षि से परामर्श करना चाहा, महर्षि को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि पहली स्त्री से पुत्र होते हुए भी पुत्रपत्नी दोनों से अनबन के कारण और पुत्रकामना से ही इसने तीसरा विवाह किया है। महर्षि ने बताया, अब इतनी आयु में पुत्रेष्टि से लाभ नहीं। महाराज पाठशाला के लिए राजा से धन-संग्रह की जिस बात की आशा से लेकर आये थे, राजा ने उस का संकेत भी न किया।

हिन्दू-मुस्लिम द्वेष नैसर्गिक नहीं—पादरी और मौलवी भी शंका समाधान के लिए आते थे। एक दिन एक सुशिक्षित मौलवी इसी सिलसिले में आया, महाराज के कमरे में जल तथा अन्य भोज्य पदार्थ देख कर बाहर ही रुक गया। महर्षि ने उसके संकोच का कारण जान कहा तुम्हारे भीतर आने से हमारे भोज्य पदार्थ अशुद्ध नहीं होंगे। महर्षि ने यहां संकेत किया कि हिन्दू मुस्लिम विद्वेष कोई प्राकृतिक घटना नहीं है, इसका कारण हिन्दुओं के प्रति मुसलमानों का व्यवहार ही है।

मूर्खता पर भीषण अनुताप : भोजन भी नहीं किया—यहां एक दिन पर्व पड़ा, गङ्गापार उस दिन मेला था। सायंकाल महर्षि ने मेले में घूमते हुए देखा—*लोग अपनी लड़कियां पंडों को दान कर रहे हैं।* हिन्दू जाति की इस मूर्खता और पंडों की धूर्तता पर निर्द्वन्द्व महात्मा भी अनुताप से तप्त हो उठे। उस दिन उनके लिए भोजन लाने वाले भक्त नन्दन ओझा ने देखा, *प्रातःकाल तक भोजन यों ही रखा रहा।*

विद्वत्-सम्मेलन के चार महीने

बंगाल का वातावरण—महर्षि कलकत्ता में लगभग चार मास ठहरे। इन चार महीनों में उनका संसर्ग ऐसे सज्जनों से रहा जो तत्कालीन भारत के प्रसिद्ध सुधारक, विचारक और नवीन विद्वत्समाज के अग्रणी थे। काशी तक के प्रवास और भ्रमण में महर्षि का प्रचार और उनका वार्तालाप ऐसे समाज और व्यक्तियों तक सीमित रहा जो या तो अशिक्षित थे अथवा पांडित्य के अभिमान से गर्वित और स्वार्थ-भावना से स्वयं रूढ़िग्रस्त और दूसरों को भ्रमजाल में फंसाए हुए थे। महर्षि की वाग्मिता, अकाट्य तर्क, प्रबल योगशक्ति और ईश्वरार्पण बुद्धि ने रूढ़िवाद के इस भयंकर गढ़ को ध्वस्त एवं अस्त-व्यस्त कर दिया। काशी से पूर्व की ओर बढ़कर बंगाल में उनका सम्पर्क जिन व्यक्तियों से हुआ, आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा, पाश्चात्य सभ्यता और अंग्रेजी शासन के प्रभाव से अनेक रूढ़ियों के प्रति उनकी आस्था ध्वस्त होकर एक नई दिशा में बढ़ रही थी। राजा राममोहनराय ने बंगाल में 'ब्राह्मसमाज' के नाम से एक सुधार संस्था की स्थापना की। यह धार्मिक आन्दोलन, अंग्रेजियत और पाश्चात्य-सभ्यता के प्रति नवशिक्षितों के अनुचित आकर्षण की प्रतिक्रिया-स्वरूप था। महर्षि के बंगाल पहुँचने के दिनों में इस ब्राह्मसमाज के नेता बाबू देवेन्द्रनाथ ठाकुर थे। ब्राह्मसमाज और महर्षि के सिद्धान्त कई अंशों

में मिलते थे। मुख्य भेद यही था कि वे महर्षि के समान वेदों को ईश्वरकृत तथा आवागमन के सिद्धान्त को नहीं मानते थे। आर्य-संस्कृति से उनका सम्बन्ध अभी बना हुआ था। इन्हीं दिनों अंग्रेजी के ओजस्वी और प्रगल्भवक्ता बाबू केशवचन्द्रसेन ने ब्राह्मसमाज से मतभेद होने के कारण "नवविधान समाज" की स्थापना की थी। बाबू केशवचन्द्रसेन का झुकाव ईसाइयत की ओर अधिक था। वे अपने आपको ईश्वर से प्रेरित तथा प्रेषित व्यक्ति मानते थे।

दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि महर्षि को जहां अब तक रूढ़ि के गढ़ से लोहा लेना पड़ा था, वहां इधर इन्हें इस गढ़ से निकल कर गलत दिशा में भागते हुए अपने जनों की दिशा बदलने का उससे भी प्रबल एवं कठिन कार्य सामने दिखाई दिया। इस नवीन परिस्थिति में उन्होंने बंगाल में प्रवेश किया।

बा० केशवचन्द्रसेन—बाबू केशवचन्द्रसेन महर्षि से बिना परिचय के मिले। परन्तु महर्षि ने उनकी बातचीत के आधार पर ही उन्हें पहचान लिया। फिर तो उनकी भेंट प्रायः होती रही। महर्षि ने कुरान, बाईबिल और वेद में से वेद को सच्चा होना छः युक्तियों से प्रमाणित किया। इनमें से एक यह थी कि कुरान और बाइबल में अनेक प्रकार की कथा कहानी झगड़े-बखेड़े भी हैं, जब कि वेद में उप-देश के अतिरिक्त और कोई झगड़ा आदि नहीं है। अन्त में इन दोनों महापुरुषों को परस्पर इस बात का पश्चात्ताप ही रहा कि एक अंग्रेजी नहीं जानता और दूसरा संस्कृत न जानकर एक सभ्यधर्म भारतवासियों को उस भाषा में सिखाने का दम भरता है जिसे वे प्रायः समझ नहीं सकते।

बा० केशवचन्द्रसेन के अतिरिक्त पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती, बा० देवेन्द्रनाथ ठाकुर, द्विजेन्द्रनाथ, पं० तारानाथ तर्क वाचस्पति, पं०

महेशचन्द्र न्यायरत्न यहां उनके सम्पर्क में आये । हुगली में वर्तमान बङ्ग साहित्य के जन्मदाता और निर्माता अक्षयकुमार घोष, पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और राजनाथ वसु आदि का सम्पर्क रहा । पं० ताराचरण तर्करत्न से शास्त्रार्थ भी हुआ।

दिन चर्या—मन्मथ बाबू इस प्रवास में महर्षि के साथ रहे थे। उन के लेखानुसार महर्षि तीन बजे उठते और प्रातः काल तक योगाभ्यास करते थे। फिर शौच-स्थान से निवृत्त हो भस्मी रमाते थे। ९ से १२ तक दर्शकों से मिलने का समय रहता। १२ बजे भोजन कर के कुछ देर टहलते और फिर एक बजे से रात्रि के ९ बजे तक निरन्तर दर्शकों के साथ विचार करते रहते। आश्चर्य है कि इन्हें गले का रोग (Cancer) क्यों न हुआ । उन का गला प्रति दिन बैठ जाता था, सूक्ष्म आहार करते थे । बाबू केशवचन्द्रसेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, द्विजेन्द्रनाथ, पं० महेश्चन्द्र न्यायरत्न, पं० तारानाथ तर्कवाचस्पति आदि विद्वानों की मंडली के सत्संग का समय प्रायः मध्यान्होत्तर ४ बजे हुआ करता था।

विचारधारा—इस विस्तृत विचार- विनिमय के समय, महर्षि ने जो विचार प्रकट किये उन का यहां पृथक्-पृथक् परिचय देना सम्भव नहीं है। संक्षेप से उस का विवरण इस प्रकार है:—

जाति और वर्ण भेद आदि—ब्राह्म समाज के प्रसिद्ध उपदेशक पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती के प्रश्नों का उत्तर देते हुए उन्होंने बताया मनुष्य पशु, पक्षी, कीट पतंगादि जाति भेद तो स्वाभाविक है ही, ब्राह्मणादि वर्णभेद भी गुण, कर्म एवं स्वभाव के आधार पर वैज्ञानिक है।

ईश्वर—सच्चिदानन्द ईश्वर निराकार है, अष्टांगयोग से उस की उपलब्धि होती है।

सांख्य ईश्वर वादी हैं—"ईश्वरासिद्धेः" सूत्र के कर्ता सांख्याचार्य अनीश्वरवादी नहीं है; यह सूत्र तो उन के पक्ष का पूर्वपक्ष है; अनीश्वरवादी होता तो वह पुनर्जन्म, वेद, परलोक और आत्मा को क्यों मानता। सांख्यदर्शन की भागुरि ऋषि कृत टीका को ही पढ़ना चाहिये।

यज्ञोपवीत—बा० केशवचन्द्रसेन का यज्ञोपवीत के विरुद्ध आन्दोलन ठीक नहीं है, वह तो पहनना चाहिए। 'धर्म-तत्व' के १ चैत्र १७९४ शक अंक में महर्षि के सम्बन्ध में एक विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ था। इस में निम्न सिद्धान्तों का वर्णन लिखा है:—

उपासना—एक चैतन्य, निराकार ईश्वर की उपासना के बिना मनुष्य की मुक्ति सम्भव नहीं। जड़ की उपासना करने से भारतीयों की बुद्धि और भी जड़ हो गई है। चित्त-शुद्धि, इन्द्रिय-निग्रह, मनः-संयोग, प्रीति—ईश्वर-गुण-कीर्तन औरप्रार्थना उपासना के ये कई लक्षण (प्रकार) हैं।

हवन—हवन मूर्ति-पूजा नहीं है; वायुमण्डल को शुद्ध बनाये रखने की यह एक रीति है।

वैदिक अर्थ—सायण का वैदिक भाष्य सर्वथा भ्रामक है। इन्द्र, अग्नि आदि परमेश्वर के नाम हैं।

शिक्षा—सन्तान को पहले माता और फिर पिता शिक्षा दे। भाषा, व्याकरण, धर्म-शास्त्र, वेद, दर्शनशास्त्र और पदार्थ शास्त्र—सब की शिक्षा हो। स्त्रियों के लिए इन में से भाषा, धर्म-शास्त्र, शिल्प विद्या संगीत विद्या और वैद्यक शास्त्र आवश्यक हैं।

संस्कृत पाठशालाओं की, वेदालोचन-विहीन शिक्षा को महर्षि व्यर्थ मानते थे। उन का विचार था कि पुराणों की कुत्सित शिक्षा से लोग व्यभिचारी हो जाते हैं।

सामाजिक—बाल-विवाह अनेक पापों का मूल है । विशेष शिक्षा दे कर २० वर्ष की आयु में कन्या का विवाह करना अच्छा है । जो स्त्री पति की मृत्यु पर विवाह करना चाहे उसका विवाह कर देना चाहिए।

हिन्दू शब्द—भारतवासियों में से किसी को हिन्दू कहना उचित नहीं क्योंकि यवनों ने अपमान करने के अभिप्राय से ही हमें यह नाम दिया था ।

स्वभाव व शैली—इन्हें देखने से वीरत्व, महत्व, गाम्भीर्य, उच्चाशा के लक्षण सुस्पष्ट लक्षित होते हैं । वह अपना जीवन प्रतिदिन उपासना, अध्ययन, व्यायाम और धर्मालाप में बिताते हैं। वह जो कुछ कहते हैं वह बहुत कुछ अपने जीवन की कथा है । महर्षि कलकत्ता में भी वस्त्र धारण नहीं करते थे, परन्तु जब लोग बात-चीत करने आते थे तो वह पैरों पर चादर या धोती डाल लिया करते थे।' 'वह सर्वथा निष्कपट, सरल, सत्यसंध और द्वेषरहित थे । उनमें विनोद करने की क्षमता थी।

"संस्कृत उन की मातृभाषा हो गई है । इन की संस्कृतभाषा इतनी प्राञ्जल, श्रुतिमधुर और सरल है कि संस्कृत से अनभिज्ञ पुरुष भी उसे अनायास ही बहुत कुछ समझ सकते हैं।

इस प्रकार उनके कलकत्ता-प्रचार का संक्षिप्त विवरण देकर हम उनके कलकत्ता प्रवास की कुछ तिथियां देकर इस प्रकरण को समाप्त कर रहे हैं ।"

निवास—श्री चन्द्रशेखर बैरिस्टर के विशेष उद्योग से महर्षि कलकत्ता पधारे थे । श्री चन्द्रशेखर उन्हें बा० देवेन्द्रनाथ ठाकुर के उद्यान में ठहराना चाहते थे; पर महर्षि के पधारने के समय वे कलकत्ता में नहीं थे । राजा सौरेन्द्रमोहन से पूछने पर उन्होंने उसमें विशेष रुचि

नहीं ली। परन्तु ठीक समय पर अन्य उपयुक्त स्थान न मिलने पर श्री चन्द्रशेखर महर्षि को सौरेन्द्रमोहन के प्रमोदकानन में ही लेगये। श्री सौरेन्द्रमोहन ने इच्छा न रहते भी शिष्टाचारवश उनका भली-भांति आतिथ्य किया और प्रमोदकानन में स्थान दिया।

यही सौरेन्द्रमोहन ठाकुर एक दिन महर्षि से इस बात पर रुष्ट हो गये कि उनके बुलाने पर स्वामी जी दूसरे लोगों को छोड़कर उनके पास नहीं गये। इस पर भी राजा साहब मिलने आये और स्वरोत्पत्ति पर प्रश्न किये। राजा साहब के समक्ष में न आने पर महर्षि ने कुछ विरक्ति प्रकट की। इस पर राजा साहब क्रुद्ध होकर चले गये। कहते हैं कि इनके आश्रित समाचार पत्र 'सोमप्रकाश' ने इस घटना के पश्चात् फाल्गुन शु० ११ सं० १९२९ वि० के अंक में लिखा—'उनकी विचार-प्रणाली से जैसी कि हमने सुनी है स्पष्ट है कि अपना पाण्डित्य प्रकाशित करके अपनी प्रसिद्धि प्राप्त करना' (उनका उद्देश्य) है।" इसका प्रतिवाद भेजने पर भी इस पत्र ने प्रकाशित नहीं किया। अनुमान है कि यह सारी प्रेरणा सौरेन्द्रमोहन ठाकुर की ही हो। अस्तु।

प्रचार कार्य–उनके कलकत्ता पधारने का समाचार ३० दिसम्बर १८७२ के 'इण्डियन मिरर' में प्रकाशित हुआ। धर्मविचार के विज्ञापन अंग्रेजी, बंगला, हिन्दी, संस्कृत में छापे और बंटवाये। आरम्भ में ब्राह्मसमाज के पं० हेमचन्द्र चक्रवर्ती से आपका वार्तालाप हुआ। सन्तुष्ट होने पर इन्होंने अष्टांगयोग की विधि भी महर्षि से सीखी। आप महर्षि के अनुयायी बने; उपनिषदों का अध्ययन लगातार करते रहे। फर्रुखाबाद में यह पाठ समाप्त हुआ। हेमचन्द्र के अनुयायी बन जाने पर कलकत्ता के शिक्षित समाज में महर्षि की कीर्ति द्विगुणित हो उठी।

पहला व्याख्यान—पौष सुदी ११ सं० १९२९ वि० को पहला व्याख्यान श्री केशवचन्द्रसेन के मकान पर हुआ। अंग्रेजी और बंगला में विज्ञापन बंटा। सहस्रों नर-नारी एकत्रित हुए। व्याख्यान संस्कृत में था पर शैली इतनी सरल थी कि सब की समझ में आया। पश्चिमी ज्ञान के धनी भी आश्चर्य में थे महर्षि की वैज्ञानिक पद्धति पर।

९ जनवरी सन् १८७३ ई० को उन्होंने कलकत्ता का अजायबघर देखा। उद्देश्य वेद और उपनिषदों की खरीदारी था।

२१ जनवरी को द्विजेन्द्रनाथ के आग्रह पर वे ब्राह्म समाज के उत्सव में, जो देवेन्द्रनाथ ठाकुर के मकान पर हुआ, सम्मिलित हुए। यहां धर्मोपदेश हुआ। दोपहर से सायंकाल तक अनेक लोगों से धर्मचर्चा हुई। बाबू देवेन्द्रनाथ जी ने इस समय महर्षि से यह भी निवेदन किया कि अब उनके आवास स्थान पर ही आकर रहें। परन्तु महर्षि ने एकान्त स्थान नहीं है, कहकर अस्वीकार किया।

फाल्गुन बदी ४ संवत १९२९ को दूसरा सार्वजनिक व्याख्यान बड़ानगर बोरन्यो कम्पनी के हाल में हुआ। इसमें महर्षि ने हवन के लाभ, ईश्वर का एकत्व, जीवात्मा-परमात्मा का सम्बन्ध आदि विषयों का प्रतिपादन किया।

फिर फाल्गुन सुदी ११ को वरहागौर के नाइट स्कूल में वैदिक सिद्धान्तों पर व्याख्यान हुआ। इस समय महर्षि रेशमी धोती पहने थे। ३॥ बजे से ३ घंटे तक सरल संस्कृत में वक्तृता हुई। परमेश्वर की एकता, जात-पांत व बाल-विवाह की हानियां स्पष्ट एवं सरल युक्तियों से सिद्ध की।

२३ मार्च १८७३ (१३ फाल्गुन १७९४ शाके) रविवार को केशव बाबू के उद्योग से बाबू गौरीचन्द्र (गौरीचरण दत्त) के मकान पर ईश्वर और धर्म विषय पर प्रवचन हुआ। व्याख्यान की समाप्ति

पर पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न, प्रिंसिपल, संस्कृत कालेज, के साथ महर्षि का वाद-विवाद भी हुआ। "आचार्य केशव देव" नामक पुस्तक के लेखानुसार उन (स्वा० दयानन्द) की तीक्ष्ण मनीषा के सामने उन्हें (पंडितों को) अपना पराजय स्वीकार करना पड़ा। पं० महेशचन्द्र के साथ यह शास्त्रार्थ बहुदेवतावाद पर हुआ। इस व्याख्यान के समय पं० महेशचन्द्र ने महर्षि के नाम किसी ऐसी बात का आरोप कर दिया था, जो उन्होंने (महर्षि) ने कही न थी; इस पर कालेज के कुछ विद्यार्थियों ने उन्हें बहुत लज्जित किया। 'इण्डियन मिरर' के अनुसार इस व्याख्यान में ४०० प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित थे।

श्री मन्मथनाथ बी० ए० का उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं। ये महर्षि के कलकत्ता प्रवास में अधिकतर उनके साथ ही रहते थे।

हिन्दी में बोलने और वस्त्रधारण का निश्चय--केशव बाबू ने अपने वार्तालाप में महर्षि से हिन्दी में व्याख्यान देने और वस्त्र धारण करने का परामर्श दिया था। ये दोनों परामर्श महर्षि ने स्वीकार किये।

हुगली में व्याख्यान–१ एप्रिल १८७३ को महर्षि वृन्दावन-चन्द्र मंडल के निवेदन पर हुगली पधारे। ६ एप्रिल को इसी बाग में उनका व्याख्यान हुआ। श्री अक्षय कुमार घोष के लेखानुसार इस व्याख्यान में भाषा इतनी सरल थी कि प्रचुर भंगी से ही अनेकों को उनकी भाषा सहज ही में बोधगम्य हो जाती थी।"

पं० ताराचरण से शास्त्रार्थ—काशिराज के राज-पण्डित पं० ताराचरण कलकत्ता में तो महर्षि से बचते ही रहे–पर हुगली में भटपल्ली (भाटपाड़ा) के अपने पड़ौसी वृन्दावन बाबू का आग्रह वे न

टाल सके। ८ अप्रैल को यह शास्त्रार्थ हुआ। बाबू भूदेव मुखोपाध्याय मध्यस्थ थे।

इस शास्त्रार्थ का विषय प्रतिमापूजन और न्याय के अनुसार शैली 'वाद' (जल्प और वितण्डा नहीं) निश्चित हुए। प्रमाण के लिए चार वेद, चार उपवेद, छः अंग और छः उपाङ्गों पर समझौता हुआ।

पं० ताराचरण ने 'चित्तस्य आलम्बने स्थूल आभोगो वितर्क' इसको व्यासवचन कहकर इसका अर्थ किया कि स्थूल पदार्थ के आलम्बन के बिना चित्त स्थिर नहीं हो सकता। महर्षि दयानन्द ने बताया उद्धृत सूत्र पतञ्जलि का नहीं है।—पतञ्जलि का सूत्र निम्न है:—'विषयवती वा प्रकृतिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धिनी।'' अर्थात् किसी वस्तु का अवलम्बन करके चित्त की स्थिरता सम्पादन की जा सकती है। इसी कारण व्यासदेव ने इसके भाष्य में लिखा—नासिका के अग्रभाग पर दृष्टिपात करके चित्त को स्थिर करो। पंडित ताराचरण ने यहां वाचस्पति का उद्धरण दिया। (स्वरूपसाक्षाद्वती प्रज्ञा आभोगः स च स्थूलविषयत्वात् स्थूलः।) चक्षु द्वारा देखकर पदार्थ मन में स्थिर होता है और चक्षु का विषय स्थूल पदार्थ ही हो सकता है, इसलिए मन भी स्थूल पदार्थ को ही धारण करता है—अतएव प्रतिमापूजन सिद्ध होता है।

महर्षि दयानन्द ने इस पर तीन उत्तर दिये (१) वाचस्पति के प्रमाण को उद्धृत करना अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध हैं। (२) चक्षु स्थूल विषय को जागृत अवस्था में ही ग्रहण करती है; परन्तु स्वप्नावस्था में भी स्थूल पदार्थों का मन से ग्रहण प्रत्यक्ष सिद्ध है, अतएव यह उपपत्ति अशुद्ध है। (३) फिर स्थूल वस्तुओं के अतिरिक्त यदि चित्त स्थिर नहीं होता तो भी प्रतिमा के अतिरिक्त अन्य अनेक स्थूल वस्तुएँ संसार में उपलब्ध हैं, फिर प्रतिमा को लेकर ही खींचातानी क्यों?

पं० ताराचरण ने इस पर यह कहा कि क्यों कि मूर्ति भी स्थूल है अतएव प्रतिमा (स्थूल होने से) पूजन भी सिद्ध हो गया। स्वामी जी ने कहा—वैकुण्ठ वासी विष्णु की उपासना (समीप बुलाना) इस लोक में कैसे सिद्ध हो सकती है ? शिल्पी गण वैकुण्ठ वासी विष्णु की मूर्ति ही कैसे बना सकते हैं ?

इस पर पं० ताराचन्द ने "अथ स यदा पितृन्नावाहयति तेन पितृ-लोकेन सम्पन्नो महीयते' वाक्य पढ़ा। स्वामी जी ने बताया—इस वाक्य का मूर्तिपूजा से कोई सम्बन्ध नहीं है। अष्टैश्वर्य सम्पन्न योगी इच्छानुसार पितृलोक में जाकर आनन्द का उपभोग करते हैं—यह इस का अर्थ है। अतएव इस वाक्य से यह सिद्ध नहीं होता कि लोका-न्तर स्थित वस्तुओं की उपासना (समीप बुलाना) सम्भव है।

इस प्रकार अन्त में तर्करत्न महाशय ने 'उपासना मात्रैव भ्रम-मूलम्' उपासना मात्र ही भ्रममूलक है कहकर पीछा छुड़ाया। तर्क-रत्न महोदय ने सरलता पूर्वक स्वीकार किया—मूर्ति पूजा मिथ्या तो है ही परन्तु उदर-पूर्ति के लिए इसका समर्थन तो करना ही पड़ता है।"

वर्धमान नरेश की उदासीनता—हुगली में १० दिन रह कर महर्षि वर्धमान (वर्द्वान) में तीन दिन रहे। यहां राजा बनबिहारी कपूर का आतिथ्य ग्रहण किया। अनेक सज्जनों ने शंका समाधान किया। शास्त्रार्थ कोई नहीं हुआ। महाराज वर्धमान भी सत्संग में आते रहे–पर वे साधारणजनों से दूर कुर्सी डाल कर बैठे रहते थे अतएव महर्षि के साथ उनकी कोई बातचीत नहीं हुई।

महर्षि कलकत्ता और हुगली के अतिरिक्त बंगाल के किसी और स्थान पर नहीं गये। बालुचर (जि० मुर्शिदाबाद) निवासी श्री थानसिंह जैन ने बा० देवेन्द्रनाथ को एक भेंट में बताया कि "स्वामी जी सम्भवतः कार्तिक महीने में बालुचर आये थे। वे एक मास रहे। वे

गेरुए वस्त्रधारी संन्यासी के समान आये। पहले एक वैश्य की कोठी में ठहरे—पीछे मैं अपने उद्यान में ले आया। वेदभाष्य प्रकाशित करने का उनका विचार था। भारतवर्ष का किस प्रकार कल्याण हो—स्वामी जी केवल यही सोचते रहते थे।" यदि यह सत्य भी हो तो भी केवल तीन स्थानों पर ही गये और फिर लौट कर नहीं आये।

महर्षि जब बंगाल से लौटने लगे तो विक्रम संवत् १९३० का प्रारम्भ हो चुका था।

संवत् १९३०

कलकत्ता से वर्धमान होते हुए महर्षि वै० कृ० ४ सं० १९३० (सन् १८७३ ई०) को भागलपुर पहुँचे। बा० पार्वतीचरण के बाग में ठहरे। १ मास तक कथा-वार्ता होती रही।

ज्येष्ठ कृष्ण २ सं० १९३० को पटना पहुँच कर गुलाब बाग में उतरे। अपने आगमन और शंकासमाधन के अवसर का विज्ञापन भी दिया परन्तु शास्त्रार्थ के लिये कोई अग्रसर नहीं हुआ। नगर के प्रतिष्ठित पुरुष और कालेज के विद्यार्थी जिज्ञासु रूप में अधिक रहे। एक प्रश्न के उत्तर में आपने बताया वेद स्वतः प्रमाण है। पटना में केवल ८ दिन रहे। दो व्याख्यान हुए—एक मूर्तिपूजा, पुराण, श्राद्ध और पिण्ड-प्रदान पर और दूसरा सृष्टि-उत्पत्ति पर।

पर्दे की ओट से शास्त्रार्थ—ज्येष्ठ कृष्ण १४ सं० १९३० को महर्षि छपरा पधारे। यहां के सुप्रसिद्ध जिंमीदार रामशिवगुलाम साह ने आपका बड़े उत्साह और भक्ति भाव से स्वागत एवं आतिथ्य किया। पंडितों और पुरोहितों ने विद्वत्ता एवं पवित्रात्मता के लिए प्रसिद्ध पंडित जगन्नाथ को शास्त्रार्थ के लिए तैय्यार किया 'नास्तिक का मुंह नहीं देखूंगा'—ऐसे वचन के पक्के उक्त पंडित ने अन्त में

पर्दें की ओट से शास्त्रार्थ किया। पं० जगन्नाथ का भाषण युक्ति और प्रमाणों से रहित तो था ही, व्याकरण की अशुद्धियों से भरा हुआ था। पं० जगन्नाथ बुरी तरह पराजित हुए। इसके पश्चात् स्वामीजी चार घंटे तक धाराप्रवाह, सरल, सुललित संस्कृत में भाषण देते रहे। और कोई चारा न देख पंडित गुण्डेपन पर उतर आये, उन्होंने शोर मचाया—दयानन्द वेदों का अपमान कर रहा है आदि। हुल्लड़पन से सभा में गड़बड़ हो गई। लोग उठ कर चले गये। बिहार दर्पण के मई १८७३ के अंक में स्वामी जी की विजय का स्पष्ट उल्लेख है।

छपरा से आषाढ़ कृष्ण प्रतिपदा १९३० को स्वामीजी आरा पहुँचे और महाराज डुमराऊं को कोठी में ही ठहरे। मुन्शी हरवंशलाल इस बार स्वामीजी से विरक्त हो गये; इन्होंने अपनी ओर से यत्न करके पंडित रुद्रदत्त को इस बार भी शास्त्रार्थ के लिए खड़ा किया। परन्तु यह शास्त्रार्थ 'शब्द' की सिद्धि तक ही रहा।

वेश में परिवर्तन—बा० केशवचन्द्र सेन के परामर्श के पश्चात् महर्षि वस्त्र धारण करने लगे थे। यहां वह किनारेदार धोती पहने हुए थे और उसकी लांग छिटकाते थे। देह पर चादर और पैरों में जूता पहनते थे। यहां बा० रजनीकान्त ने बताया कि प्रसंग वश उन्हें ज्ञात हुआ कि वे अंग्रेजी कानून के गूढ़ तत्वों से भी परिचित हैं। लगभग डेढ़ मास पश्चात् आरा छोड़ कर डुमराऊं आये। बा० रजनीकान्त का विचार था कि महाराजा उनको पाठशाला के लिए कुछ धन देंगे। परन्तु महाराजा ने कोई सहायता नहीं दी। वे १२-१३ दिन पश्चात् मिर्जापुर के लिये रवाना हो गये।

पाठशाला तोड़ दी—डुमराऊं से मिर्जापुर में आकर महर्षि सेठ रामरतन लढ्ढा के बाग में ठहरे। पाठशाला की दुरव्यवस्था थी;

विद्यार्थी वस्त्र और पुस्तक मिलने के अवसर पर तो पाठशाला में नाम लिखा लेते थे पीछे चले जाते थे। पं० ज्वालादत्त प्रबन्ध न कर सकते थे। जिन दिनों स्वामीजी यहां पधारे एक छात्र पं० देवदत्त का झगड़ा चल रहा था। पं० देवदत्त किसी मूर्ति पर बैठ गया था। उसके सहपाठी की शिकायत पर पं० ज्वालादत्त ने देवदत्त के सहपाठी का ही पक्ष लिया। स्वामी जी ने इस झगड़े को सुना और प्रबन्ध से असन्तुष्ट होकर पाठशाला तोड़ दी। पं० गजाधर को २०) मासिक तथा प्रत्येक छात्र को २) रु० मासिक देकर एक बार फिर पाठशाला को चलाने का यत्न किया। परन्तु पाठशाला न चल सकी।

काशी में सत्यशास्त्र पाठशाला—महर्षि ने पं० जवाहरदास उदासी से चाहा था कि वे मिरजापुर की पाठशाला को संभालते। परन्तु वे इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुए। तब महर्षि ने उन्हें काशी में ही पाठशाला चलाने की प्रेरणा की। उन्होंने डुमराऊं, पटना, आरा और छपरा से ८०) रु० एकत्र किये। महर्षि ने २०) और अपने पास से दिए और पं० जवाहर दास ने पौष कृष्ण २ सं० १९३० को पाठशाला की स्थापना कर दी। केदारघाट पर ३॥।) मासिक किराए का मकान लिया। पं० शिवकुमार शास्त्री जो पीछे काशी के दिग्गज पण्डित प्रसिद्ध हुए १५) मासिक पर इस पाठशाला में अध्यापक नियत हुए। इन्होंने कहा मैं दयानन्द का मत नहीं मानूंगा, केवल अष्टाध्यायी और महाभाष्य पढ़ाऊंगा। अष्टाध्यायी पढ़ने वाले छात्र को ॥) और महाभाष्य पढ़ने वाले को १) प्रति मास छात्र वृत्ति की व्यवस्था हुई। आरम्भ में ही अष्टाध्यायी पढ़ने वाले २५ और महाभाष्य पढ़ने वाले ८ छात्र हो गये। पाठशाला का नाम 'सत्यशास्त्र'-पाठशाला रखा गया।

: ७ :

संगठन का सूत्रपात

(सं० १९३० वि से सं० १९३४ वि० तक)

कार्यक्रम के रुख में परिवर्तन

काशी शास्त्रार्थ के पश्चात् हम महर्षि के प्रचार के कार्यक्रम में कुछ २ परिवर्तन का रुख देखते हैं। महर्षि ने अपने १४-१५ बर्ष के परिभ्रमण (सं० १९०३ से १९१७-१८ तक) और गुरु विरजानन्द जी दंडी के तीन वर्ष के सम्पर्क एवं उनसे ग्रहण की हुई शिक्षा के आधार पर इस देश और जाति के रोग एवं चिकित्साको भलीभांति समझ लेने का यत्न किया था। जाति में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीन वर्ग प्रधान होते हैं। प्रारम्भ में उनका ध्यान क्षत्रिय वर्ग की ओर गया। सम्भवतः उनका विचार था कि क्षत्रिय अपने प्रभुत्व या यों कहिए दंड के सहारे प्रजा को आचारवान् बना सकते हैं। आगरा—ग्वालियर--जयपुर--किशनगढ़--अजमेर और पुष्कर के गमनागमन में उन्होंने अपने अनुभव को टटोला और जांचा, क्षत्रिय और ब्राह्मण दोनों के सम्पर्क में आये इस भ्रमण की समाप्ति पर गुरुजी से गम्भीर परामर्श किया। और फिर हरिद्वार के कुम्भ पर भारत के—समग्र वर्णों और वर्णों से उच्च संन्यासियों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति से लाभ उठा कर रोगी की नाड़ी भली भांति जांच ली। सन्निपात रोग

जिस प्रकार बात, पित्त और कफ तीनों दोषों के दुष्ट हो जाने का परिणाम होता है, यह भारत भी उसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य–समाज के तीनों प्रकार के—नेताओं के दोष युक्त होने से उत्पन्न रोग का रोगी था। इसका महर्षि को पूरा निश्चय हो गया।

यह निश्चय हो जाने पर इस वैद्य ने अपने प्यारे रोगी के लिये अपना सर्वस्व की बलि देने की ठान ली। एक मात्र एक कौपीनधारी होकर इस रोग के एक एक तत्व को ठीक रखने का दृढ़ निश्चय कर महर्षि ने तपस्विजीवन का सूत्रपात किया। क्षत्रियों की जीवनचर्या, उनके विचार और रीति-नीति का वे परिचय प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने देखलिया था—जयपुर में राजपंडित की इच्छा के विरुद्ध महाराज से भेंट करना उन्हें किस प्रकार अव्यावहारिक हुआ। जयपुर नरेश की इच्छा होते हुए भी किसी-न-किसी प्रकार उनकी भेंट की योजना टलती ही गई।

अब महर्षि ने अपने तपोबल, योगशक्ति और पांडित्य के शस्त्र से ब्राह्मण वर्ग को सीधे मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया। हरिद्वार से लेकर काशी तक की उनकी पूर्व पश्चिम की यात्रा—इन्हीं पंडितों से वार्तालाप, शास्त्रार्थ, धर्मचर्चा और विज्ञापन-वितरण आदि में बीतती है। जब जहां जैसे रहना चाहते रहते है; फिर किसी से कुछ कहे सुने, लिये-दिये और बूझे बताये बिना, चाहे जहां को रवाना हो जाते हैं। न अपने से मोह है, न, दूसरोंसे या अपनी अथवा दूसरोंकी वस्तुओं से। काशी शास्त्रार्थ तक हम यही दशा देखते हैं—यद्यपि एक बात विशेष अवश्य है; वह है कासगंज और फर्रुखाबाद की वैदिक पाठशालाएं। आर्षज्ञान पठन-पाठन और ब्रह्मचर्य पूर्वक जीवन-यापना के लिए पाठशालाओं का होना आवश्यक है। परन्तु इनकी स्थापना का उद्देश्य भी ब्राह्मणवर्ग का सुधार ही था, अबतक जो पाठ्य-क्रम

महर्षि ने निश्चित किया उसका एक मात्र यही परिणाम निकाला जा सकता है।

काशी-शास्त्रार्थ तक महर्षि का कार्यक्रम लगभग एक सा रहता है। किसी ग्राम या कस्बे में पहुँचना, वहां के किसी बस्ती से बाहर खुले स्थान व मन्दिर में आसन लगाना ब्राह्ममुहूर्त से सूर्योदय तक नित्यकर्म योगाभ्यास आदि नित्यकर्मों में समय लगाना फिर स्नान-भोजनोपरांत आगन्तुक जिज्ञासुओं, पंडितों आदि की शंकाओं का समाधान करना। यह क्रम कई बार रात के ९ बजे तक चलता रहता था पश्चात् एकांत में ही शयन। इस समय उनके व्यवहार की भाषा संस्कृत थी। विज्ञापन भी प्रायः संस्कृत में ही प्रकाशित होते थे।

काशी-शास्त्रार्थ के पश्चात् रुख में परिवर्तन दिखाई दिया। वैदिक पाठशालाओं की स्थापना एवं संगठन की उन्हें चिन्ता होने लगी। यहां तक कि कलकत्ता के एक समाचार पत्र तक में यह चर्चा उठी। बाबू देवेन्द्रनाथ ठाकुर जब उनसे प्रयाग के कुम्भ के समय भेंट करने आये तो उनसे भी इसके लिये एक सहायक(धन की सहायता) का प्रसंग उठा और उन्होंने वचन दिया कि कलकत्ता आने पर इस पर विचार किया जायगा।

पाठशालाओं के लिये अर्थ की चिन्ता ही सम्भवतः महर्षि को बिहार और बंगाल ले गई। वहां जाकर वे ब्राह्मसमाज के सम्पर्क में आये अबतक उनका वास्ता कोरे संस्कृत के पण्डितों से पड़ा, अब उन्हें अंग्रेजी पढ़े लिखे सुसंस्कृत भारतीयों से लगाव हुआ। ये लोग ईसाइयत और हिन्दू संस्कृति को मिलाकर चलना चाहते थे। मूर्तिपूजा और रूढ़िवाद के खंडन के कारण सम्भवतः इनका झुकाव महर्षि की ओर हुआ था। परन्तु कलकत्ता के सम्मेलनों में महर्षि और इन ब्राह्मसमाजियों ने परस्पर एक दूसरे को समीप से देख लिया। महर्षि वेद

का आधार नहीं छोड़ना चाहते थे—उन्हें वेद के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। परिणाम यह हुआ कि न तो महर्षि को अपने उद्देश्य में उनसे कोई सहायता अथवा सहानुभूति प्राप्त हुई, न वे महर्षि से कुछ ग्रहण करने को तय्यार हुए। बिहार और बंगाल में भी, युक्त प्रदेश की भांति, अपने कुछ अनुरक्त, भक्त, अनुयायी और कुछ शत्रु भी वे अवश्य छोड़ आये।

परिवर्तन—परन्तु अब महर्षि कम से कम व्याख्यान के समय वस्त्रों का उपयोग करने लगे। पैदल यात्रा के स्थान पर समय और शक्ति की बचत के लिए रेल तथा अन्य यानों का आश्रय लेने लगे। व्याख्यान और प्रचार के लिए संस्कृत के स्थान पर आर्यभाषा (हिन्दी) का प्रयोग भी हुआ—लेख, भाषण और पुस्तक रचना की भाषा अब आर्य भाषा ही थी। वस्त्रों का उपयोग होने से अब बस्तीसे बाहर रहने की आवश्यकता नहीं रही। आवश्यकतानुसार नगर-निवास में भी संकोच नहीं रहा। अब वे अपने भक्तों के जन-समाज का संगठन कर रहे थे। आगे के पृष्ठों में संगठन के इस सूत्रपात की कथा दी गई है।

मिर्जापुर तक का वृत्तान्त हम पिछले पृष्ठों में दे आये हैं। मिर्जापुर से महर्षि प्रयाग आये और अलोपी बाग में कुछ दिन ठहर कर २० अक्तूबर सन् १८७३ को कानपुर की ओर चल दिये। यहां टूका-घाट पर आसन लगा। हेमचन्द्र चक्रवर्ती इन दिनों आप से उपनिषद् पढ़ते थे। फूलचन्द मक्खनलाल की कोठी पर व्याख्यान हुआ जिस में जीवित पितरों के श्राद्ध का विधान बताया और प्रसंग वश यह भी बताया कि यजुर्वेद के एक मन्त्र के अनुसार पृथ्वी घूमती है।

वस्त्रधारण का उद्देश्य—वस्त्रधारण का उद्देश्य पूछने पर महर्षि ने बताया कि हमें लोग अपने घरों पर आमन्त्रित करते हैं और इस लिए स्त्रियों के सम्मुख होना पड़ता है।

सभा-समितियों में व्याख्यान देने पड़ते हैं। पुस्तकरचना आदि के लिए कागज-कलम पुस्तक आदि भी रखने पड़ते हैं। अतएव वस्त्रधारण तथा अन्य सामग्री भी रखनी पड़ती है। इस से हमारे धर्म की हानि भी नहीं, कारण कि ये बातें धर्म के विरोध में नहीं हैं।

सार्वजनिक व्याख्यान और विघ्न—कानपुर में पहली वार परेड मैदान में व्याख्यान देने की व्यवस्था की गई। शामियाना खड़ा किया गया और फर्श बिछाया गया। व्याख्यान की घोषणा ढोल से की गई। सभा-स्थल लोगों से भर गया। परन्तु इसी समय शहर कोतवाल सुलतान अहमद ने अडंगा नीति को अपनाया। पहले उस ने मजिस्ट्रेट से आज्ञा लेने की बात कही। ला० नन्नूमल और बाबू क्षेत्रनाथ घोष ने तत्काल मजिस्ट्रेट डैनियल की आज्ञा प्राप्त कर ली। परन्तु कोतवाल तो धूर्तता पर तुला प्रतीत हुआ। प्रतीत होता है कि उस ने कुछ लोगों को उकसा कर झगड़ा करने के लिए तय्यार कर लिया। महर्षि ने वेदी पर खड़े हो कर ज्यों ही मन्त्र का उच्चारण कर मंगलाचरण आरम्भ किया कि एक ओर से एक मुल्ला और दूसरी ओर से एक पंडित ने उच्चस्वर से अंडबंड बकना आरम्भ किया। महर्षि के लिए व्याख्यान देना ही असम्भव हो गया। वे वेदी से नीचे उतर आये। कोतवाल ने विघ्न डालने वालों से पूछ ताछ तक नहीं की।

यहीं इस व्याख्यान स्थल के समीप ही पंडित प्रयाग नारायण की गुप्त मन्त्रणा से एक दूसरा शामियाना खड़ा किया था। इस में गोसाईं मोहनगिरि स्वामी जी को गालियां दे रहा था और कह रहा था कि दयानन्द को अंग्रेजों ने ईसाई बनाने के लिए भेजा है उधर से फैंकी गई एक ईंट भी महर्षि के पास आ कर गिरी थी।

इस गोलमाल को देख कर व्याख्यान स्थगित कर दिया गया।

यद्यपि उसी समय पुलिससुपरिंडेंट ने आकर व्याख्यान में शांति रखने का आश्वासन भी दिया, परन्तु व्याख्यान स्थगित ही रखा गया।

व्याख्यान-माला—इसके पश्चात् व्याख्यान का प्रबन्ध शिवप्रसाद के राजगद्दी हाल में हुआ। जिस गद्दी पर बैठ कर रामलीला के पश्चात् रामचन्द्र जी का राज्याभिषेक करने की प्रथा है, उसी गद्दी से महर्षि का व्याख्यान 'ईश्वरसिद्धि' पर हुआ। प्रबन्ध के लिए पुलिस उपस्थित रही। दूसरा व्याख्यान 'आर्यावर्त की इदानींतन और प्राचीन अवस्था' विषय पर इंग्लिश थियेटर के हाल में हुआ। इस व्याख्यान में कई अंग्रेज भी उपस्थित थे। इस के पश्चात् १०-१२ व्याख्यान बा० क्षेत्रनाथ घोष के बंगले पर हुए।

कानपुर में दिन चर्या—बाबू हेमचन्द्र चक्रवर्ती के लेखानुसार कानपुर में उन की दिनचर्या के मुख्य-भाग यहां अंकित करते हैं—प्रातःकाल ही जागरण; नित्यकर्म, दन्तधावन व कुल्ला; हेमचन्द्र चक्रवर्ती को उपनिषद्-अध्यापन; दोपहर को स्नान के समय चित तैरना, एक घंटे से अधिक तक स्नान, फिर व्यायाम और सूर्याभिमुख लेटना। भोजन से पहले ब्रह्मचारी बलिवैश्वदेव करता तब स्वामी जी भोजन करते। भोजन के पश्चात् चील-कव्वे-कुत्ते व मछलियों के लिए रोटी फैंकते। कुछ देर विश्राम करते। एक ईंट खूब लाल गर्म करके पीने के पानी में डाल देते—बात करते हुए आवश्यकता होने पर इस जल को पीते थे। सायंकाल के पश्चात् आगंतुकों को विदा कर देते। रात्रि में पाव भर गर्म दूध चाय के समान थोड़ा-थोड़ा करके पीते और फिर हेम बाबू से हंसी-खुशी बातें करते। फिर अलग जाकर योगारुढ़ होजाते। रात्रिको भी जब कभी हेम बाबूकी आंखें खुलीं महर्षिको ध्यानावस्थित ही पाया। शीताधिक्य होने पर भी कोई वस्त्र न पहनते थे। कभी हमारे उच्चस्वर से विघ्न पड़ता तो 'हूँ' शब्द कर निषेध करते।

बहुत सबेरे उठ कर हमें जगाते और गायत्री जपने को कहते। स्त्रियों का दर्शन नहीं करते थे। गर्म कपड़ा या मिष्टान्न आदि यदि कोई दे जाता तो वह ब्रह्मचारी अथवा गरीबों को दे देते।

लखनऊ में काशी की पुनावृत्ति—कानपुर से महर्षि वहां के रईस ला० गजाधरप्रसाद के अनुरोध से लखनऊ गये और उन्हीं के बंगले पर ठहरे। १३ नवम्बर के "Friend of India" समाचार पत्र ने महर्षि के सम्बन्ध में निम्न समाचार प्रकाशित किया—"सुप्रसिद्ध वैदिक सुधारक दयानन्द काशी में वैदिक पाठशाला स्थापित करने के निमित्त लखनऊ में धन एकत्रित कर रहे हैं। स्वामी जी ने अनेक विषयों पर वक्तृताएं दी हैं जिन में से एक भारत के भूत, भविष्यत् और वर्तमान दशा पर थी।'

ला० गजाधरप्रसाद ने महर्षि को निमन्त्रित कर अन्त में उनसे धोखा किया। वे, जैसा कि पीछे उन्होंने प्रकट किया, महर्षि के पास इस लिए आये कि 'जिस से युद्ध करना हो यदि पहले ही उसके पास जाकर इस प्रकार बात-चीत न की जाय तो उस का बल किस प्रकार ज्ञात हो सकता है।' इन्होंने पं० गंगाधर शास्त्री से महर्षि का शास्त्रार्थ करवाया। मूर्ति-पूजा पर शास्त्रार्थ हुआ। महर्षि ने 'वेद में मूर्ति-पूजा की आज्ञा नहीं है' पक्ष के समर्थन में वेद मन्त्र उपस्थित किया। शास्त्री ने दूसरे प्रकार से उस का अर्थ किया और एक पुस्तक दिखा कर कहा वेद का यह पुस्तक कलकत्ता से आया है, इस में यह अर्थ विद्यमान है। महर्षि उस अर्थ का खण्डन करने के लिए प्रस्तुत हुए कि सभा भंग कर दी गई और 'दयानन्द की हार' का झूठा नारा लगा दिया गया। काशी के पंडितों—और काशी नरेश ने जो चाल काशी में चली ला० गजाधरप्रसाद और पं० गंगाधर शास्त्री ने वही यहां भी चली। पं० गंगाधरके शिष्य श्री केदारनाथ चट्टोपाध्यायने देवेन्द्र बाबू को

लिखे एक पत्र में लिखा है–"शास्त्रार्थ के विषय वही थे जिन पर बहुत अधिक विवाद था। शास्त्रार्थ लगभग एक घंटे तक होता रहा। उसके अन्त में शास्त्री जी स्वामी जी के उत्तर देते-देते एकदम खड़े हो गये और हाल छोड़ कर जाने लगे। स्वामी जी ने उनसे ठहरने और उत्तर सुनने की प्रार्थना की, परन्तु वे एक पल भर भी न रुके।' निष्पक्ष दर्शकों के मन पर शास्त्री जी के व्यवहार का सधारणतया यही प्रभाव पड़ा कि पराजय शास्त्री जी का ही हुआ और वह जाने के लिये तभी खड़े हुए जब उन्होंने समझ लिया कि उनकी स्थिति सुरक्षित नहीं है और उसका समर्थन नहीं हो सकता।"

पं० गंगाधर शास्त्री केनिंग कालेज लखनऊ में पूर्वी शिक्षा विभाग के मुख्य पंडित थे; ला० गजाधरप्रसाद के इस अन्याय के पश्चात् महर्षि उसकी कोठी को छोड़ कर राजा ओयल के अनुरोध पर उनकी केसरबाग की कोठी में चले गये। इसके पश्चात् महर्षि के व्याख्यान केसरबाग की कोठी में हुए।

लखनऊ से बाबू हेमचन्द्र चक्रवर्ती के साथ घोड़ा गाड़ी में सवार होकर दूसरे दिन मार्गशीर्ष वदी १९ सं० १९३० को फरुखाबाद पहुँचे और पाठशाला में ही ठहरे। इस यात्रा में आप की भेंट शिक्षाविभाग के अध्यक्ष कैम्पसन और संयुक्तप्रांत के लैफटिनैंट गवर्नर म्योर से भी हुई थी। दयार्द्र-दयालु हृदय महर्षि ने म्योर साहब से एक ही आशा की कि वे जब इंग्लैंड जाकर अपरइन्डिया कौंसिल के सदस्य होंगे तो भारत में गोवध बन्ध करने का प्रयत्न करें। कहते हैं कि म्योर साहब आपकी तर्कशैली से इतने प्रभावित हुए कि इस प्रयत्न का वचन दे दिया था। एक पादरी को भी गोरक्षा के लाभ समझाए।

विवाह में अपव्यय—सेठ निर्भयराम के सम्मुख उनके पुत्र के विवाह में किये गये प्रचुर धन व्यय को अनुपयुक्त बताया। यहीं पर

पं० विश्वेश्वर दयालु शास्त्री सरवरिया ने एक दिन आधी रात को आश्रम में आकर आपको ध्यानावस्थित देखा। वर्णाश्रमधर्म पर शंका समाधान किया और पूछा क्या ईसा ईश्वर का पुत्र था। इसका महर्षि ने जब खंडन किया तो कहने लगे हमारा अभिप्राय तो यह जानना ही था कि आप ईसाई अथवा ईसाइयों के वेतन भोगी तो नहीं हैं। हेम बाबू रुग्ण होकर कलकत्ता चले गये।

कासगंज में छप्पर बांधा—पौष कृष्ण ६ से १० दिन तक कासगंज रहे। पाठशाला का निरीक्षण किया। विद्यार्थियों के निवास स्थान में द्वार खुले रहने से वर्षा और वायु का कष्ट था। दीवार बनाने के लिए मजदूर न मिले तो स्वयं छप्पर बना कर दिखाया।

शपथ के विरोधी थे—एक बार पाठशाला के अध्यापकों और विद्यार्थियों ने वेद की शपथ खाकर आर्ष ग्रंथ पढ़ने पढ़ाने का निश्चय किया। एक विद्यार्थी ने शपथ नहीं खाई तो उसे निकाल दिया गया। महर्षि को जब यह ज्ञात हुआ तो उन्होंने सबको ताड़ना की और उसे फिर से प्रविष्ट कर लिया। मीरां की जात देने पर एक विद्यार्थी पर २५) रु० जुर्माना किया।

पौष शुक्ला ६ को छलेसर पधारे। पाठशाला का निरीक्षण कर प्रबन्ध में उचित परिवर्तन किया। अलीगढ़ के डिप्टी कलक्टर राजा जयकिशन दास, सी० एस० आई० आपको अलीगढ़ आने का निमंत्रण देकर वापस लौट गये। तीन चार दिन तक यहां व्याख्यान होते रहे। अनेक पण्डितों ने भी उपस्थित होकर शंका समाधान किया।

राजा जयकिशनदास से मैत्री—पौष शुक्ला ७ को हाथी पर सवार होकर अपरान्ह चार बजे अलीगढ़ पहुँचे। ठाकुर मुकुन्दसिंह २०-२५ दूसरे क्षत्रियों के साथ घोड़े पर सवार थे। अलीगढ़ में आप

राजा साहब के अतिथि हुए और अचल तलाब पर स्थित चाऊलाल के आम्रोद्यान में ठहरे।

अलीगढ़ का विशेष आकर्षण और फल राजा जयकिशनदास ही रहे। आप प्रतिदिन महर्षि के व्याख्यानों में आते और घण्टों वार्तालाप कर संशयों की निवृत्ति करते रहे। राजा और महर्षि की यह मित्रता लगातार बढ़ती ही रही। यह राजा जयकिशनदास ही थे जिन्होंने आगे चलकर महर्षि के व्याख्यानों और उपदेशों को लिपिबद्ध करा अपने व्यय से मुद्रित करा प्रकाशित किया। सन् १८७५ में सत्यार्थ प्रकाश' का प्रकाशन इसी शुभ प्रयत्न का परिणाम था।

अलीगढ़ में मुसलमानों के प्रसिद्ध नेता और शिक्षा शास्त्री सैय्यद अहमदखां से भेंट हुई। थोड़े से हवन से वायु के सुधार की शंका निवृत्ति महर्षि ने थोड़े से बघार से बहुत सी दाल के सुवासित हो हो जाने का उदाहरण देकर की।

मुरादाबाद के प्रसिद्ध मुन्शी इन्द्रमणि भी जीव के अनादित्व पर शंका समाधान करने के लिये इन दिनों महर्षि से मिले थे।

मूर्तिपूजा का छोटा गढ़--हाथरस—लगभग एक मास अलीगढ़ में रह कर महाराज हाथरस पधारे। यह कस्बा व्यापारिक केन्द्र तो है ही, मूर्तिपूजा का भी छोटा सा गढ़ था, गुण्डों की संख्या भी यहां कम नहीं थी। इसी लिए राजा जयकिशनदास, भक्त ठाकुर मुकुन्दसिंह व ठाकुर गोपालसिंह भी महर्षि की सेवा में यहां उपस्थित रहे। यहां महर्षि पहली बार पधारे थे। यद्यपि मथुरा में दण्डी जी के शिष्य बनने से पहले वे यहां भी आये थे।

तब दयानन्द और अबके दयानन्द में आकाश-पाताल का अन्तर था। आज दयानंद महर्षि थे—तब केवल एक जिज्ञासु। आज

उनके अनेक मित्र-शत्रु, भक्त-निन्दक, और शिष्य-प्रशिष्य थे। हाथरस में महर्षि, सेठ विष्णु दयाल की वाटिका में उतरे। आपके पधारने से मूर्तिपूजा की स्तम्भरूप इस नगरी में भूचाल आगया। गुण्डों ने कोलाहल व धूर्तता ही नहीं की, अपितु महर्षि का स्वांग बनाने तक की उनकी नीयत देखी गई। परन्तु राजा जयकिशनदास के भय के कारण विशेष कुछ न हुआ। यहां महाराज का 'मृतक श्राद्ध' के मिथ्यात्व की सिद्धि में एक व्याख्यान हुआ। यहां यही व्याख्यान आदि और अंत है। इस व्याख्यान के संबन्ध में मुंशी कन्हैय्यालाल अलखधारी ने अपने पत्र 'नीति प्रकाश' में लिखा—"एक उपदेश दयानन्द सरस्वती ने हाथरस में सर्व सधारण में किया। वहां कै बिरामन (ब्राह्मण) डर गये कि उन्होंने हमारी रोटियों को खोया और हमारी चिड़ियों को जाल में से निकालता है।"

मथुरा-वृन्दावन में प्रचार—मथुरा वही नगरी थी जहां ऋषि दयानन्द ने गुरु विरजानन्द जी दंडी स्वामी की कुटिया में तीन वर्ष व्यतीत किये थे। कितने अमूल्य थे वे क्षण—जिनमें दयानन्द, दयानंद सा सत्यवक्ता, निरभिमानी, वीर, और वेद पर अटल श्रद्धालु ही नहीं बना, अपितु दृढ़-ईश्वर-विश्वासी, प्रतिदिन घण्टों समाधि-लीन रहने वाला महात्मा भी। देश की दुर्दशा से यह महात्मा इतना द्रवित हो उठा कि देश के हित पर अपने आपको बलिदान कर दिया।

आज उसी सुपरिचित मथुरा नगरी में महर्षि, शिष्य रूप में नहीं, गुरु रूप में हजारों अनुयायियों और भक्तों से परिवृत, पधारे,। उनके भक्त राजा उदितनारायणसिंह सवारी लेकर स्टेशन पर पहुँचे और महर्षि का प्रेमपूर्ण आतिथ्य किया।

वृन्दावन जाने से पहले इन्हीं राजा साहब ने महर्षि की गुंडों से रक्षा के लिए चार मनुष्य पहरे पर नियुक्त किये। कहते हैं कि यह

पहरा महर्षि की दूरदर्शिता का परिणाम था। उन्हें ज्ञात था कि वृन्दावन में रंगाचारी का राज्य है। कर्णसिंह बरौली वाला महर्षि का पुराना शत्रु, उसका चेला है। महर्षि इसी रंगाचारी से शास्त्रार्थ करने की इच्छा से ब्रह्मोत्सव अर्थात् रथ के मेले पर आये थे। इस समय सहस्रों नर-नारियों का जमाव यहां हुआ करता था।

राजा जयकिशनदास के परिचय से पंडित देवीप्रसाद डिप्टीकलक्टर ने वृन्दावन की चुंगी के बख्शी महबूब मसीह को एक पत्र लिख दिया था। महबूब मसीह ने बड़ी सहृदयता से उनके ठहरने की व्यवस्था रंगजी के मन्दिर के पीछे मलूकदास के बाग में करदी; सब सुविधाओं का ध्यान रखा, एक चपरासी भी नियत कर दिया और स्वयं भी दिन में एक बार उनकी सेवा में पहुँचने का नियम रखा।

वृन्दावन में महर्षि फाल्गुन शुक्ला ११ को पहुँचे। महबूब मसीह की ओर से हिन्दी में विज्ञापन किया गया कि स्वामी जी होली के पश्चात् चैत्र कृष्णा २ से मूर्ति-पूजा, अवतार, तिलक, छापे आदि के खण्डन में ४ से ६ तक व्याख्यान दिया करेंगे। एक चिट्ठी रंगाचार्य को भी भेजी। उसने उत्तर दिया कि ब्राह्मोत्सव के पश्चात् शास्त्रार्थ होगा।

ब्राह्मोत्सव बीत जाने पर भी रंगाचार्य शास्त्रार्थ के लिए नहीं आये। कहते हैं कि वे उन दिनों रुग्ण थे। वस्तुतः इसके एक मास पश्चात् ही उनकी मृत्यु भी हो गई। परन्तु पं० लेखराम जी ने किसी सज्जन के ये वाक्य उद्धृत किये हैं—"यह बात मेरी आंखों देखी है और मैं सौगन्ध लेकर कहता हूँ कि रंगाचार्य कोई ऐसा बीमार न था कि यदि हिम्मत करता तो शास्त्रार्थ न कर सकता।" इससे भी यह झलकता है कि रुग्ण होने का कोरा बहाना ही था। अस्तु, कुछ भी हो, रंगाचार्य सामने नहीं आये। किसी से उन्होंने यहां

तक कहा—हमें शास्त्रार्थ से क्या लाभ ? यदि दयानन्द हार गया तो उस साधु का क्या बिगड़ेगा ! परन्तु यदि हम हार गये तो हमारी सारी प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जायगी।

उद्देश्य पूरा न हुआ—चैत्र कृष्णा ११ तक महर्षि वृन्दावन ठहरे। व्याख्यान हुए, शास्त्रचर्चा हुई, शंका-समाधान भी हुए परन्तु रंगाचार्य से शास्त्रार्थ करने की इच्छा पूरी न हुई। राजा उदितनारायण प्रतिदिन व्याख्यानों में उपस्थित रहे। प्रथम दिन के व्याख्यान में पंडित देवीप्रसाद डिप्टी कलक्टर भी उपस्थित थे। गोपेश्वर महादेव तथा अन्नपूर्णा मन्दिर के पुजारी जय गोविन्द गिर संन्यासी ने महर्षि के व्याख्यानों के प्रभाव से मूर्ति पूजा छोड़ दी।

गोस्वामी राधाचरण, जो पीछे हिन्दी के अच्छे लेखक बने उस समय १४-१५ वर्ष के थे—उनका कहना है कि हाथरस रियासत के दीवान छीतरसिंह, मैं और मेरे मित्र मधुसूदन गोस्वामी महर्षि की शिक्षाओं से प्रभावित हुए थे—पर पीछे सब भूल गये। मधुसूदन गोस्वामी तो महर्षि के पूरे शत्रु हो गये। उनका यह भी कहना है कि जयपुराधीश राजा रामसिंह और रंगजी के विशाल मन्दिर के रचयिता सेठ लछमणदास मथुरानिवासी ने गुप्तरूप से महर्षि से भेंट की थी। कहते हैं कि महर्षि ने गोस्वामी राधाचरण को अपने उद्देश्यों का संक्षिप्त विवरण और कुछ प्रामाणिक ग्रंथों के नाम उन्हें लिखाये थे और बताया था कि ये सब महाराजा अलवर के पुस्तकालय में विद्यमान है। इस पुस्तकालय को महर्षि ने भारतवर्ष का सबसे बड़ा पुस्तकालय बताया था। इन्हीं गोस्वामी के अनुसार महाराज ने यह भी व्यक्त किया था कि रंगजी के मन्दिर में मूर्ति के स्थान पर पाठशाला की स्थापना होनी चाहिए और मन्दिर की आय पाठशाला के उपयोग में ही आनी चाहिए।

धूर्तों की एक न चली—वृन्दावन से महर्षि मथुरा पहुँचे। मथुरा में पांच दिन रहे। गोस्वामी पुरुषोत्तमदास के बलदेव बाग में ठहरे। व्याख्यानों में मूर्तिपूजा का बेधड़क खण्डन किया। शास्त्रार्थ के लिए कोई तय्यार नहीं हुआ। डिप्टी कलक्टर पंडित देवीप्रसाद के कथन पर वे एक दिन अधिक ठहरे भी, पर इस दिन हुआ यह कि चार-पांच सौ चौबे लाठियां लेकर चढ़ आये। ठाकुर भूपालसिंह ने घबरा कर बाग का फाटक बंद कर दिया—इसी अन्तर में महर्षि के भक्त कर्णवास के क्षत्रिय आ पहुँचे और डिप्टी साहब भी। चौबे तितर-बितर हो गये। इस पर भी डिप्टी साहब ने पंडितों को शास्त्रार्थ के लिए बुलाया—पर कोई आया नहीं।

एक दिन महर्षि व्याख्यान दे रहे थे कि कुछ धूर्तों ने एक कलवार और एक कसाई को भेजा। वे शोर मचाकर अपने शराब और मांस के दाम मांगने लगे। महर्षि ने हंसकर कहा—व्याख्यान के पश्चात् तुम्हारा हिसाब भी हो जायगा। व्याख्यान के पश्चात् महर्षि ने एक-एक हाथ में दोनों के सिर पकड़ कर भिड़ा दिये—वे घबरा उठे और सच-सच कह दिया कि किसने उन्हें बहकाकर भेजा था। दयालु दयानन्द ने तुरन्त क्षमा कर दिया। इन धूर्तों ने बताया कि मांगीलाल नाम के मुनीम की यह धूर्तता थी। कहते हैं कि एक दुराचारिणी स्त्री को भी इसी प्रकार सिखाकर सभा में भेजा गया। परन्तु सभा में आकर महर्षि के तेज से वह ऐसी प्रभावित हुई कि उसका सारा पाप जाता रहा। 'ऐसे महात्मा को कलंकित करने के विचार को मन में लाना पाप है' ऐसा सोच वह इतनी दुःखी हुई कि क्षमा मांगे बिना उसे शान्ति न हुई।

८० वर्ष के एक वृद्ध ब्राह्मण पांडे मदनदत्त मूर्ति-पूजा का मण्डन करने महर्षि के सामने आये। पांडे जी ४० वर्ष से दुग्धाहार करके रह

रहे थे। इनके साथ इनका पोता गरुड़ध्वज और शिष्य बालकृष्ण भी थे। महर्षि ने सत्कार पूर्वक आसन दिया। पौत्र और शिष्य से व्याकरण पूछा—शिष्य ने तो बता दिया पर पौत्र न बता सका।

पांडे जी पर इस भेंट का ऐसा जादू हुआ कि उन्होंने सबके सामने मूर्ति पूजा और अनार्ष ग्रंथों का खण्डन करना आरम्भ कर दिया। एक दूसरे ब्रह्मचारी ने भी शालिग्राम की मूर्तियों का पलंग यमुना में बहा दिया था।

मथुरा से महर्षि राजा साहब मुरसान टीकमसिंह की प्रार्थना पर मुरसान गये। मुरसान में राजासाहब ने बड़ी श्रद्धाभक्ति से आपका आतिथ्य किया। यहां की विशेष घटना बेसवां के ठाकुर गुरुप्रसाद की दुर्गति होना है। ये ठाकुर साहब अपने आपको वेदभाष्य कर्ता कहते थे और महर्षि को वेदों से अनभिज्ञ बतलाते थे। राजा साहब ने इस ठाकुर को स्वामी जी से शास्त्रार्थ के लिये बुलाया। ५००-६०० की भीड़ के साथ ये मुरसान पहुँचे भी। परन्तु कोठी के भीतर नहीं घुसे—बाहर-खड़े-ही-खड़े अपनी प्रशंसा के गीत गाते रहे।

यहां से महर्षि हाथरस जंकशन पहुँच कर रेल मार्ग द्वारा प्रयाग होते हुए काशी पधारे। इस समय सम्बत् १९३१ का वैशाख अथवा ज्येष्ठ का महीना (सन् १८७४) चल रहा था।

हिन्दी में प्रथम व्याख्यान—इस बार महर्षि रामप्रसाद गोसाईं के बाग में ठहरे। उनके साथ दो-तीन बैगों में पुस्तकें और वस्त्र थे एक नौकर भी साथ था। वस्त्र पहनने लगे थे, भाषा (हिन्दी) में बोलने का भी संकल्प कर चुके थे। पं० जवाहरदास जी ने प्रकट किया कि आपके लिए तो पहली अवस्था ही अच्छी थी परन्तु महाराज ने उनका समाधान कर दिया था भाषा में बोलने के सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि संस्कृत को सर्व साधारण तो समझते नहीं, पंडित लोग स्वार्थवश हमारे के विपरीत अर्थ समझा देते हैं।

इस प्रकार काशी में ही पहला व्याख्यान भाषा में हुआ। भाषा में व्याख्यान की सूचना पहले से मिल जाने के कारण जनता की संख्या अधिक थी। बोलने के अभ्यास के कारण बीच में कई बार कई-कई वाक्य संस्कृत में ही बोल जाते थे। भाषा में व्याख्यान देना आरम्भ करने पर उनके व्याख्यानों में उपस्थित होने वाले पण्डितों की संख्या कम होती गई।

इसके अतिरिक्त भी, डेढ़ मास के लगभग चले इस काशीवासी की अपनी विशेषताएं हैं।

आर्य विद्यालय में सुधार—संवत् १९३० में केदार घाट पर एक वेद विद्यालय की स्थापना की गई थी। इस समय जब महर्षि आये तो उन्होंने जो विज्ञापन दिया उससे अनेक बातें ज्ञात होती हैं। यह विज्ञापन २० जून सन् १८७४ की 'कविवचनसुधा' पत्र में भी प्रकाशित हुआ था। इसके अनुसार (१) विद्यालय केदारघाट से मित्रपुर मुहल्ला में दुर्गाप्रसाद मिश्र के मकान पर आषाढ़ सुदी ५ सं० १९३१ से आ गया (२) अध्यापक गणेश श्रोत्रिय नियुक्त हुए। (३) व्याकरण, षड् दर्शन और उपनिषद् की शिक्षा की व्यवस्था की गई; पीछे से वेद और ज्योतिष पढ़ाने की भी घोषणा की गई। (४) विद्या और श्रेष्ठाचार की परीक्षा में उत्तम रहने वाले को पारितोषिक देने का विचार था। (५) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सब वेद पर्यन्त पढ़ेंगे शूद्र मन्त्रभाग को छोड़ कर शेष सब शास्त्र पढ़ेंगे (६) आर्य विद्यालय का अधिक चन्दा होगा तो अध्यापक और विद्यार्थी भी बढ़ाए जायेंगे। (७) इसकी रक्षा और वृद्धि के लिए आर्य-सभा की स्थापना भी की गई (८) मासिक 'आर्य-प्रकाश' भी प्रकाशित करने का निश्चय था (९) इस विज्ञापन पर महर्षि दयानन्द के हस्ताक्षर थे।

पाठशाला के लिए चन्दा एकत्र करने के लिए महर्षि ने कानपुर

निवासी शिवसहाय गौड़ को कानपुर, लखनऊ, फर्रुखाबाद और शकरुल्लापुर की ओर भेजा।

परन्तु प्रतीत होता है कि ऋषि का यह संगठन-कार्य सफल नहीं हुआ। 'आर्य सभा' ने कुछ नहीं किया; न 'आर्य प्रकाश' पत्र ही प्रकाशित हो सका। इस नूतन प्रबन्ध में पं० जवाहरदास उदासी का कोई हाथ नहीं था। लाइटनिंग प्रेस के अध्यक्ष मुन्शी हरवंशलाल अब प्रबन्धक थे जैसा कि २३ जनवरी सन् १८७५ को स्वामी जी की मुन्शी हरवंशलाल को लिखी चिट्ठी से ज्ञात होता है। यह पाठशाला नहीं चल सकी और फरवरी सन् १८७५ ई० में टूट गई।

सत्यार्थ प्रकाश का आरम्भ—यहीं महर्षि के भक्त और मित्र राजा जयकिशनदास सी० एस० आई० डिप्टीकलक्टर ने महर्षि को परामर्श दिया कि वे अपने उपदेशों को लेख बद्ध करावें। आपने कहा—बहुत से आपके लोग उपदेशों से वंचित रह जाते है। राजा साहब का परामर्श केवल सिद्धान्त रूप ही नहीं रहा। उसको क्रिया-रूप में परिणत करने के लिए आपने इन लेखों के मुद्रण व प्रकाशन का व्ययभार भी अपने ऊपर ले लिया। फलतः एक महाराष्ट्र पंडित चन्द्रशेखर को १२ जून सन् १८७४ से स्वामी जी के उपदेशों को लेख बद्ध करने के लिए नियत कर दिया गया। इसका मुद्रण मुन्शी हरवंशलाल के लाइटनिंग प्रेस में हुआ। स्वामी जी बोलते जाते थे और चन्द्रशेखर शास्त्री लिखते जाते थे। उपदेशों का यह प्रथम संग्रह 'सत्यार्थ प्रकाश' का पहला संस्करण था। यह सन् १८७५ ई० में प्रकाशित हुआ।

आदिम सत्यार्थ प्रकाश पर आक्षेप—सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण अथवा आदिम सत्यार्थ प्रकाश को लेकर पीछे कई प्रकार के वाद खड़े हुये। सनातन धर्मी पण्डित कालूराम ने यह

आक्षेप लगाया कि वर्तमान सत्यार्थ प्रकाश तो आर्य समाज का सत्यार्थ प्रकाश है, स्वामी दयानन्द का सत्यार्थ प्रकाश तो सन् १८७५ ई० का छपा सत्यार्थप्रकाश ही है। दूसरा आक्षेप विरोधियों का यह हुआ कि पहला सत्यार्थ प्रकाश छपने के पश्चात् ऋषि दयानन्द ने अपने कुछ सिद्धांत बदल तो लिये, परन्तु उनकी स्पष्ट घोषणा नहीं की।

विरोधियों ने अपने आक्षेपों में जिस मुख्य सिद्धांत की ओर संकेत किया है वह श्राद्ध तर्पण और मांसाहार हैं। इस सम्बन्ध में हम यह दिखला आये हैं कि महर्षि ने सम्वत् १९२५ में जीवित का श्राद्ध करना चाहिए वह स्पष्ट कहा था।

चासी में मायाराम जाट नम्बरदार शफीनगर को भी यही आदेश दिया था कि जीवित श्राद्ध सैदव करते रहो। इस समय ज्वालादत्त को जीवित श्राद्ध की एक पद्धति भी बना कर दी थी। सं० १९२६ में कानपुर में जो उनके व्याख्यान हुए, उनमें भी वे मृतक श्राद्ध का खण्डन करते रहे। सं० १९२९ में भागल पुर में बाबू पार्वती चरण से उन्होंने कहा—'जीवित माता-पिता का श्राद्ध-तर्पण करना उचित है।' अतः एव यह स्पष्ट है कि सम्वत् १९३१ में सत्यार्थ प्रकाश की रचना आरम्भ होने से बहुत पहले से ही ऋषि दयानन्द मृतकश्राद्ध का खण्डन करते आ रहे थे।

भूल का कारण ?—प्रश्न उठता है यह भूल आखिर कैसे हुई ? राजा जयकृष्णदास जी ने इस संबन्धमें देवेन्द्र बाबू से कहा—सत्यार्थ प्रकाश में जो मत स्वामी जी का लिखा गया या जो कुछ पीछे परिवर्तित हुआ उसके लिये स्वामी जी इतने उत्तरदाता नहीं हैं।' वस्तुतः तथ्य यह है कि ऋषि दयानन्द ने सितम्बर के अन्त तक प्रयाग में सत्यार्थ प्रकाश लिखवाया और स्वयं जबलपुर चले गये। वहां से मार्ग में नासिक में ठहरते हुवे बम्बई पहुँचे। ३० नवम्बर के

पश्चात् बम्बई से काठियावाड़ अहमदाबाद और राजकोट आदि में प्रचार करते हुए जनवरी सन् १८७५ के अन्त में वापिस बम्बई में पहुँचे। इसके पश्चात् भी सन् १८७५ के अन्त तक यह प्रायः बंबई प्रान्त में ही रहे। इस से स्पष्ट विदित होता है कि ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण के न तो प्रूफ ही देखे और न उसकी प्रतिलिपि को शुद्ध करने का ही उन्हें अवकाश मिला। ऋषि दयानन्द को ज्यों ही इन अशुद्धियों का ध्यान दिलाया गया त्यों ही एक विज्ञापन द्वारा इस ग्रंथ को वापिस ले लिया। वस्तुतः यह उन पौराणिक लेखकों की करतूत थी जिन्होंने अवसर से लाभ उठाकर महर्षि सरीखे सरलहृदय व्यक्तिसे विश्वासघात करने में संकोच नहीं किया।

आदिम सत्यार्थ प्रकाश का महत्व—स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इस सत्यार्थ प्रकाश पर किए गए आक्षेपों का उत्तर देते हुए 'आदिम सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाज के सिद्धांत' इस शीर्षक से एक पुस्तक संवत् १९७४ में लिखी। आदिम सत्यार्थ प्रकाश का महत्व जानने के लिये इसका अध्ययन अत्यन्त सहायक है। स्वर्गीय स्वामी जी ने इस लेख में बताया है कि *संशोधित सत्यार्थप्रकाश एक दार्शनिक ग्रंथ है वह एक धर्म के आचार्य का पूरा मत दर्शाने वाला स्मृति ग्रन्थ है।* उसकी शैली उसके उद्देश्य के अनुसार ही होनी चाहिए थी। *आदिम सत्यार्थ प्रकाश एक निर्भय सुधारक के खुले विचारों का पुंज है।* उसके बहुत से गौण वाक्य तथा विचार स्मृति के अन्दर नहीं आ सकते थे।" यहां हम ऐसे कुछ प्रसंगों का निर्देश मात्र कर आगे बढ़ते हैं। सतीत्व की रक्षा के साधन, आधुनिक पर्दा, व्यायाम की शिक्षा, धनाढ्यों के विद्या प्राप्ति से लाभ, विवाह के नियम तथा कर्तव्य, धनाढ्यों के खुशामदी, गृहस्थ का समय विभाग, संन्यास के नियम, भिन्न-भिन्न देश भाषा कैसे बनी; अशुद्धि कहां से आई, बनावटी और वास्तविक छूत, गोवत्स के लिए दूध कितना छोड़ना,

प्राचीन राजाओं की प्रशंसा और ब्रिटिश राज्य, अन्य देशीय भाषा पढ़ने का विधान, न्यायालयों और पुलिस में सुधार आदि अनेक विषय ऐसे हैं, जो न केवल रोचकता एवं उपयोगिता की दृष्टि से महत्व पूर्ण हैं अपितु महर्षि की दूरदर्शिता, व्यापक परोपकार भावना, और देश की सर्वाङ्गीण उन्नति के रूप में उनके उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं। सन् १९३० में महात्मा गांधी ने जिस नमक कानून को तोड़ कर सर्व साधारण के लिए नमक बनाना सुलभ करने की मांग की थी, महर्षि ने न केवल उस नमक के कानून को ही अपितु जंगलात के कानून को भी अनीति एवं अन्याय अनुभव कर इस सत्यार्थ प्रकाश में इनके विरुद्ध अपनी सम्मति प्रकट की थी।

काशी-वास की अन्य स्मृतियां—काशी में इस वार महर्षि ने लगभग एक मास व्यतीत किया। जोधपुर निवासी पंडित पन्नालाल उन दिनों काशी में ही थे। उन्होंने बताया कि वे महर्षि की सेवा में उपस्थित रहते थे। वे यहां के पंडितों से भी मिलते रहे थे; पंडितों की सम्मति महर्षि के सम्बन्ध में यह थी—स्वामी जी को परास्त करने की शक्ति किसी में नहीं है। साधु जवाहरदास ने महर्षि के सम्बन्ध में देवेन्द्र बाबू से कहा था। "स्वामीजी की न्याय शास्त्र में प्रगाढ़ व्युत्पत्ति न थी, अन्य शास्त्रों में पूर्ण दृष्टि थी। वह नैय्यायिकों की भाषा को काक भाषा कहा करते थे। वह व्याकरण में व्युत्पन्न और अष्टाध्यायी तथा महाभाष्य पर उन का पूर्ण अधिकार था। जिस समय वह किसी बात का खंडन करते थे उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि इसका मंडन हो ही नहीं सकता। उन के तप और अखंडित ब्रह्मचर्य का ही यह प्रभाव था।" कुछ भी हो, नव्य दर्शन की काक-भाषा में व्युत्पन्न न होने से भी उन की तर्क शक्ति अजेय थी यह सभी अनुभव करते थे।

इस वार यहां सर सय्यद अहमद खां से भी महर्षि की भेंट हुई। उन्हीं के बंगले पर एक व्याख्यान वेदों के अपौरुषेयत्व पर हुआ। पं० लेखरामजी कृत जीवन-चरित्र के अनुसार दो-तीन व्याख्यान हुए।

माधवबाबू के मित्र ग्वालियर निवासी बा० सुरेशचन्द्र चौधरी ने महर्षि का दर्शन-लाभ लिया। इनसे बाबू केशवचन्द्रसेन का उल्लेख करते हुए महर्षि ने कहा—उनकी बातों में बड़ा लालित्य है, परन्तु उन के अनुयायियों के रहन-सहन को देख कर सन्देह होता है वे ईसाई हो जायेंगे।

महाराज के पास पादरी लोग प्रायः आया करते थे। पादरी हूपर से ईश्वर-विषयक वार्तालाप हुआ। सर सय्यद अहमदखां ने महर्षि की भेंट काशी के कलक्टर मिस्टर शेक्सपीयर से कराई। इन्हीं कलक्टर महोदय ने महाराज काशी से मिलने के लिए महर्षि को तय्यार किया बताते हैं।

प्रयाग में नीलकंठ शास्त्री से वार्तालाप— आषाढ़ बदी २ सं० १९३१ वि० (१ जुलाई सन् १८७४) को महर्षि प्रयाग पहुँचे। नगर के बाहर अलोपी बाग में ही ठहरे। यहां से चल कर अक्तूबर महीने की किसी तारीख को जबलपुर पहुँचने का निर्देश है। अतएव लगभग तीन महीने महर्षि प्रयाग में रहे।

विपक्षियों ने महर्षि के विज्ञापन के उत्तर में जनता को भयभीत करने के लिए विज्ञापित किया कि जो कोई नास्तिक दयानन्द के पास जायगा उसे महापाप होगा। फिर भी सैंकड़ों लोग महाराज के पास शंका-निवृत्ति और धर्म-लाभ के लिए आते रहे।

एक दिन म्योर संस्कृत कालेज के प्रोफेसर पंडित काशीनाथ शास्त्री, कालेज के कुछ विद्यार्थी तथा निहेमिया नीलकंठ (मरहठा ईसाई) महर्षि की सेवा में पहुँचे। नीलकंठ मैक्समूलर के पक्के

अनुगत थे। उसके वेद-भाष्य के अनुसार वे अग्नि-वायु आदि जड़ पदार्थों की देववत् पूजा को वैदिक विधान मानते थे। महर्षि ने कहा मैक्समूलर ने ईसाई मत के प्रति भारतीयों की आस्था बढ़ाने के लिए ही अग्नि-वायु आदि के देवता परक अर्थ किये हैं। वस्तुतः वेद ब्रह्म का ही प्रति-पादन करते हैं।

महाराज ने तौरते में लिखी बाबल के बुर्ज की कहानी सुनाकर कहा कि बाबल वाले क्या इतने मूर्ख थे कि आसमान को ठोस पदार्थ समझ उस पर चढ़ने का यत्न करने लगे? क्या ईश्वर भी इस तथ्य से अनभिज्ञ था जो उनके चढ़ आने की आशंका से उन की भाषा में गड़-बड़ी डाल दी जिस से उन्होंने एक दूसरे को न समझ कर बुर्ज बनाना छोड़ दिया। इस घटना से, यदि यह सत्य है तो, ईश्वर का एकदेशीय होना तो स्पष्ट सिद्ध है ही।

निहेमिया नीलकंठ ने 'अग्निर्देवानाम् ' इत्यादि मन्त्र अग्नि आदि को वेदानुसार देवता सिद्ध करने के पक्ष में उपस्थित किये थे। इस समय सायं काल आठ बजे गये थे। कुंवर जगन्नाथ की इस सूचना पर बात चीत अगले दिन के लिए स्थागित कर दी गई—परन्तु नीलकंठ शास्त्री फिर नहीं आये महर्षि ने उनकी शंका का समाधान लिखकर भेज दिया जिसका नीलकंठ ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सनातनी पंडित इस वार्तालाप में एक दूसरे ढंग की दिलचस्पी ले रहे थे। वे देख रहे थे कि कब दयानन्द हारे और हमें हुल्लड़ मचाने का अवसर मिले। पं० काशीनाथ शास्त्री ने तो बीच में अवज्ञा पूर्वक कहा भी—आपने किस उद्देश्य से सारे देश में कोचाहल मचा रखा है! महर्षि किंचन्मात्र भी विचलित नहीं हुए—उत्तर दिया मुझसे पहले पंडितों ने जो पाखंड फैला रखा है—उसीको तोड़ने का यत्न कर रहा हूँ। पत्थर पूजते-पूजते लोगों की बुद्धि भी जड़ हो गई है।

आवागमन पर चर्चा—मैक्समूलर के लेखों के आधार पर विद्यार्थियों को यह भ्रम था कि आवागमन का सिद्धान्त वैदिक नहीं है। महर्षि ने पुनर्जन्म की पुष्टि में प्रबल युक्तियां दीं। इनमें एक यह थी कि पशु प्राणियों में स्वाभाविक ज्ञान की विद्यमानता पुनर्जन्म को पुष्ट करती है। ऋग्वेद का एक मन्त्र भी पुनर्जन्म की पुष्टि में उपस्थित किया।

म्लेच्छ—एक प्रश्न के उत्तर में महर्षि ने बताया कि जिसका उच्चारण अशुद्ध हो उसे म्लेच्छ कहते हैं। सन्ध्यापुस्तक की हस्त-लिखित प्रति से कुंवर ज्वालाप्रसाद ने छात्रों को सन्ध्या पढ़ कर सुनाई।

फुटकल विचार—एक दिन एक बंगाली सज्जन के घर महर्षि का व्याख्यान हुआ जिसमें १००० के लगभग श्रोता उपस्थित थे। इस व्याख्यान में धर्म के दस लक्षण की व्याख्या और पर्दे की प्रथा की हानियों का वर्णन किया। इसी व्याख्यान में राजा नल के कलायुक्त रथ का उल्लेख महर्षि ने किया था। महर्षि लग्न-पत्रिका को शोक-पत्रिका कहा करते थे। और विनोद में रामतापिनी–गोपालतापिनी उपनिषदों की भांति अपनी रची गर्दभतापिनी उपनिषद् सुनाया करते थे। अनार्ष ग्रन्थों के खंडन का यह एक विनोदभरा ढंग था।

गुरुडम के विरोधी—महर्षि बार-बार कहा करते थे कि मुझे गुरु मत मानो। मेरे कहने पर आंख मीच कर मत चलो। ऋषि प्रणाली पर चलो।

छूआछूत एक बखेड़ा—उनके भक्त पंडित ठाकुरप्रसाद घर से महर्षि के लिए भोजन लाया करते थे। कड़कती धूप में वे कच्चा भोजन लेकर, छूत के भय से, नंगे पैर आते थे। महर्षि ने एक दिन देखा तो कहा—मैं छूआछूत के बखेड़े में नहीं पड़ता, आप भी मत पड़िये।

योगाभ्यास की एक क्रिया—*अधर में स्थिति।* एक दिन पं० ठाकुरदास ने महर्षि को योगाभ्यास करते समय किवाड़ों से झांक कर देखा। वे धीरे-धीरे पृथ्वी से ऊपर उठकर अधर में स्थित हो गये थे। देवेन्द्र बाबू ने इस घटना का अन्यत्र होना लिखा है।

'सत्यार्थ प्रकाश' का लेखन कार्य समाप्त—प्रयाग में रहते हुए 'सत्यार्थ प्रकाश' के प्रथम संस्करण का लेखन कार्य समाप्त हुआ। प्रतीत होता है कि १० समुल्लास लिखे तो गये थे परन्तु १३-१४ का संशोधन अभी समाप्त नहीं हुआ था। ऋषि ने चौदहवें समुल्लास (जो उस समय ईसाई मत अथवा गौराङ्ग मत समीक्षा का था) के अन्त में एक विज्ञापन अथवा सूचना पत्र लिखवाया था। उसकी तिथि पं० भगवद्दत्तजी के लेखानुसार संवत् १९३१ का मध्य अथवा सितम्बर १८७४ है। महर्षि इस समय प्रयाग में ही थे।

इसके अतिरिक्त महर्षि के २३ जनवरी १८७५ को मुन्शी हरिवंश लाल को लिखे पत्रों में अंकित है—"मुरादाबाद कुरान के खंडन का अध्याय शोधने के वास्ते गया रहा—सो शोध के आपके पास आया या नहीं।" प्रतीत होता है कि इन दोनों मतों के सम्बन्ध में सीधी जानकारी न होने के कारण महर्षि इनके सम्बन्ध में अधिक से अधिक सत्य तक पहुँचना चाहते थे। कुरान के विषय में लिखते हुए उन्होंने लिखा—"यह कुरान के विषय में जो लिखा गया है सो पटना शहर ठिकाना गुड़ हट्टा में रहने वाले मुंशी मनोहरलाल जो कि अरबी में भी पण्डित हैं उनके सहाय से और निश्चय करके कुरान के विषय में हमने लिखा।"

इस सम्बन्ध में प्रयाग की ही एक घटना है कि यहां एक मौलवी निजामुद्दीन बी० ए० धर्मचर्चा में बड़ी रुचि से भाग लेते थे। एक दिन महर्षि ने उनसे पूछा ईश्वर को आपके मत में कैसे वर्णन किया गया

है। मौलवी ने कुरान से तो कुछ न बताया, सर डब्ल्यू हैमिल्टन के मैटाफिजिक्स से परमेश्वर के चार गुणों का वर्णन कर दिया।

कुछ भी हो, प्रतीत होता है कि सत्यार्थ प्रकाश लिखा तो यहीं गया और फिर प्रेस में छपता रहा। अंतिम दो समुल्लास संभवतः इसी लिए नहीं छपे कि उनका संशोधन कार्य तब तक नहीं हो पाया।

ऋषि की विचारधारा–सं० १९३१ के मध्य (सितम्बर १८७४) में लिखवाये गये उक्त विज्ञापनपत्र में कुछ अंकित करने योग्य बातें निम्न प्रकार हैं। इनसे ऋषि की तत्कालीन विचारधारा की भी बोध होता है।

(१) आर्यावर्त देश के राजा अंग्रेज बहादुरसे संस्कृत विद्या के प्रचलन का अनुरोध—इसके उद्धार से लाभ और लोप से हानि है।

(२) सं० १९२४ तक के अपने विद्याश्रम का उल्लेख करके बताया कि उन्होंने घरमें कुछ वेद का पाठ और विद्या पढ़ी; नर्मदा तट पर दर्शन शास्त्र पढ़े। मथुरा में गुरु विरजानन्दजी से पूर्ण व्याकरणादिक का अभ्यास किया और रहकर सब शंका समाधान किये। आगरा में दो वर्ष रहकर अनेक आर्ष और नवीन पुस्तक पढ़े—उनको विचारा। देश-देशान्तर में भ्रमण किया—जहां-जहां जो पुस्तक मिले उन पर विचार किया। शंकाओं का उत्तर गुरु विरजानन्दजी से लेते रहे। अन्त में निश्चय हो गया कि वेद और आर्ष ग्रन्थ ही सत्य हैं। इनको पढ़े बिना सत्य ज्ञान नहीं होगा, अतएव इन्हें अवश्य पढ़ना चाहिए। जो त्याज्य ग्रन्थ हैं उनको देखने सुनने से भी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है अतएव उन्हें न देखे न सुने—संसार में रहने भी न दें तो संसार का बड़ा उपकार हो।

(४) मनुष्य की दैनिक जीवन-चर्या के सम्बन्ध में निर्देश।

(५) आर्यावर्त की प्राचीन सुखकर अवस्था का संकेत करते हुए वर्तमान दुरवस्था का वर्णन और इसका साधन संस्कृत विद्या का पुनरुद्धार।

बम्बई को प्रस्थान—यहां से महर्षि बम्बई निवासियों के निमन्त्रण पर बम्बई के लिए प्रस्थित हुए। साथ में बलदेवसिंह नामक ब्राह्मण सेवा के लिए था। अक्तूबर महीने की किसी तारीख को म० कृष्णराव एकस्ट्रा असिस्टैंट कमिश्नर के निमन्त्रण पर जबलपुर उतरे और इनका आतिथ्य स्वीकार किया। इस समय आप गोकुलदास-उद्यान में उतरे।

फोटो खिचवाया—म० कृष्णराव ने अपने घर ले जाकर महर्षि का फोटो खींचा। यह फोटो देवेन्द्र बाबू के कृष्णरावजी से भेंट के समय भी घर में विद्यमान था। सरदार मल्हाराव इन्स्पैक्टर के गृह पर राजा बलवन्तराव के सभापतित्व में एक व्याख्यान हुआ। इसमें अपने जीवन की कुछ घटनाएं भी सुनाईं। पण्डित शंकर शास्त्री से शास्त्रार्थ की चर्चा भी हुई; परन्तु शास्त्री जी उनकी लेखबद्ध शास्त्रार्थ की बात मान लेने पर भी पीछे हट गये।

नासिक-पंचवटी में—कुछ दिन पश्चात् नासिक पहुँच कर वायजाबाई की हवेली में ठहरे। इन बाई का सम्बन्ध हुलकर के राज-घराने से था। पंचवटी तीर्थ भी नासिक में ही है। यहां महर्षि केवल चार दिन ठहरे। दो व्याख्यान हुए। एक राममन्दिर में और दूसरा ताप्ती नदी के तट पर।

'इन्दुप्रकाश' का उद्धरण—इस समय राव बहादुर विष्णु मोरेश्वर भिड़े सबजज थे। उनके निवास-स्थान पर पण्डितों से शास्त्रार्थ का प्रबन्ध हुआ था। उसके परिणामस्वरूप उस समय की स्थिति का वर्णन एक लेखक ने बम्बई के 'इन्दुप्रकाश' समाचार पत्र में प्रकाशित किया था। इसका कुछ भाग यहां उद्धृत करते हैं :—

"हमारे शास्त्रियों में न तो जिज्ञासा भाव ही है और न उन्हें सत्य के अनुसन्धान की रुचि ही है। इसलिए उनकी ओर से शास्त्र-

विचार सुस्थिर नहीं रहा। उनके ग्लानिद्योतक मौन और विचारमूढता-सूचक दृष्टि से केवल यही प्रकट हुआ कि वे पंडित दयानन्द के विश्वास और सुधारपरक विचारों को अच्छा नहीं समझते।"

"पण्डित दयानन्द कपट के सच्चे मन से द्वेषी हैं। उनके व्याख्यानों में वेदों के इतने उद्धरण होते हैं कि किसी लिखित निबन्ध में भी और अच्छे पुस्तकालय की सहायता से भी इतने वचनों का उद्धृत करना सहज नहीं है।" "समस्त पुरुषों को उचित है कि हिन्दू समाज की उन्नति और हिन्दू प्रजा के अभ्युत्थान में पडित दयानन्द की उनकी उपासना के युक्तियुक्त और विशुद्ध रूप को स्थापित करने में सहायता करें। इस स्थान के लोग उनकी निर्भीकता और दृढ़ता स इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने श्रोताओं के आह्लाद और साधुवाद के बीच पंडित दयानन्द को बहुमूल्य वस्त्र उपहार में दिये।

मन्तव्य—इसी पत्र में महर्षि के उस समय के मन्तव्यों का वर्णन है। इसका संक्षेप इस प्रकार है :—

(१) जाति शब्द का प्रचलित अर्थ (जन्मानुसारी) वे नहीं मानते। 'यदि एक शूद्र पर्याप्त ज्ञान सम्पन्न है तो वह ब्राह्मण है और पापकर्मा ब्राह्मण शूद्र से भी नीच वर्ण का है।

(२) मूर्तिपूजा के अदम्य शत्रु हैं।

(३) विदेश यात्रा और भयावह अटक के पार के देशों की यात्रा के घोर पक्षपाती हैं।

(४) पुनर्विवाह के सच्चे उत्साही समर्थक हैं।

(५) विदेश से आने वाली जातियों से हमने बुराइयां ही सीखी हैं—भलाई कोई नहीं सीखी। 'विना विवाह के स्त्रियां रखना' तो मुसलमानों से सीख लिया; एकेश्वर की पूजा उनसे नहीं सीखी।

(६) भिन्न प्रकार के नाम और चालढाल के भिखमंगों से देश

आप्लावित रहने के कारण देश की आर्थिक दुरवस्था है। वैरागी, गुसाईं, बाराजी और भिक्षुक सीधे सादे कृषक और श्रमजीवी बन जावें तो यह दुर्दशा दूर हो।

✓ (७) अंग्रेज ही आज प्रकृत अर्थ में ब्राह्मण हैं।

(८) पंडित (महर्षि दयानन्द) हास्यरस में भी प्रवीण थे। एक वैष्णव के मस्तक पर सीधी काली रेखा के तिलक को देखकर कहा—यदि काली रेखा से स्वर्ग मिलता हो तो अपना सारा मुंह क्यों न काला करलें कि यात्रा सुगम हो जाय।

बम्बई प्रान्त की प्रचार यात्रा

बम्बई नगरी में—नासिक से महर्षि सं० १९३० के कार्तिक मास में २६ अक्तूबर सन् १८७४ को बम्बई पहुँचे। यहां के भद्रपुरुषों की व्यवस्था के अनुसार महर्षि ने बम्बई नगर से दो कोस पर स्थित बालुकेश्वर में गोशाला नामक स्थान पर आसन लगाया। बम्बई स्टेशन पर आप का भव्य स्वागत हुआ। दारागंज (प्रयाग) निवासी पं० मण्डनराम उनके साथ लेखन-कार्य के लिए थे। इन दिनों स्वामी जी गेरुए वस्त्र पहनते, हाथ में चांदी की मूठ की छड़ी रखते और पैरों में काले चमकदार रंग के जूते धारण करते थे।

सर्वत्र की भांति यहां भी महर्षि के आगमन और शंका समाधान के लिए अवसर देने का विज्ञापन किया गया। फ्रामजी काउसजी हाल में १७) प्रति दिन देकर व्याख्यान का प्रबन्ध किया गया था। एक दिन व्याख्यान और दूसरे दिन शंका समाधान की व्यवस्था थी। व्यय का भार बम्बई में पूर्वतः स्थापित वेद-धर्म-सभा ने किया। इसके प्रमुख कार्य-कर्ता जयकृष्ण जीवनराम, प्रभुराम जीवनराम, लखमीदास खेमजी तथा लीलाधर ऊधोजी थे।

कहते हैं कि बम्बई में महर्षि के निमन्त्रणदाता जयकृष्ण वैद्य

अद्वैतवादी और लखमीदास खेमजी बल्लभाचारी के भाई धर्मसी थेः ये काशी शास्त्रार्थ में उपस्थित थे। महर्षि को बम्बई का निमन्त्रण देने में दोनों का उद्देश्य वैष्णवमत का खण्डन कराना था। काशी में ये महर्षि के विद्या और तप के बल को प्रत्यक्ष अनुभव कर चुके थे। वैद्य महोदय तो वैष्णवमत का अभिभव कर अपने मत का प्रचार चाहते ही थे, धर्मसी का गोसाइयों और महाराजा के मध्य चल रहे मान हानि के मुकद्मे के कारण बल्लभमत के गोसाइयों को नीचा दिखाना उद्देश्य था।

बम्बई में आकर महर्षि ने पहले बल्लभ सम्प्रदाय की पोल खोलने का कार्य सम्पादन किया। दैनिक सत्संग में इस प्रकार अपना विरोध देख ये लोग महर्षि के तीव्र शत्रु बन गये। इनके प्रमुख आचार्य जीवन-जीने प-ग-न नाम से २४ प्रश्न कार्तिक शुक्ला ४ संवत् १९३१ को महर्षि के पास भेजे। महर्षि की अनुमति से पूर्णानन्द संन्यासी के नाम से इन प्रश्नों का यथोचित उत्तर दिया गया। परन्तु न विज्ञापन रूप में ना ही निजी रूप से महर्षि को इसका कोई उत्तर नहीं मिला।

बल्लभमत के २४ प्रश्नों का उत्तर—ये प्रश्न तो नहीं मिलते परन्तु उत्तरों का सारांश इस प्रकार है :—

१. स्वामीजी प्रत्यक्षादि प्रमाण मानते हैं। २. चारों वेद-संहिताओं को (परिशिष्ट छोड़ कर) प्रमाण मानते हैं। ३. ब्राह्मण ग्रन्थ, शिक्षा आदि, वेदांग ग्रन्थ पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा आदि, वेद के उपांग और मनुस्मृति को वहीं तक प्रमाण मानते हैं जहां तक वे वेद के अनुकूल हैं। वाल्मीकिकृत रामायण और महाभारत को इतिहास ग्रन्थ मानते हैं। ८. पुराण, उपपुराण, तन्त्र मन्त्र, याज्ञवल्क्यादि स्मृतियों को प्रमाण मानना तो दूर इनमें श्रद्धा भी नहीं है। ९-१० विष्णु स्वामी आदि सम्प्रदायों का तो खण्डन ही करते हैं इनको प्रमाण मानने की

बात ही नहीं है। १८ जगत् की उत्पत्ति वेद के अनुसार स्वीकार्य है। १६ सृष्टि उत्पत्ति के समय की कालसंख्या (नियत) नहीं है (सृष्टि प्रवाह से अनादि है।) २२ वेदोक्त यज्ञादि कर्म यथाशक्ति करने चाहिएं २१. वेदोक्त रीति माननी चाहिए अन्य नहीं २४. जिस का जन्म मरण होता है वह ईश्वर नहीं हो सकता। २३. स्वामी दयानन्द संन्यास आश्रम में हैं: २४ सद्धर्म विचार पुस्तक में उसके लेखक का मत है, स्वामी जी का नहीं।

पहला व्याख्यान—इसके पश्चात् एक और विज्ञापन से महर्षि ने घोषणा की कि जो कोई हम से शास्त्रार्थ करना चाहे अपना नाम, मत और सम्प्रदाय बतला दे तभी हम उसको उत्तर देंगे; गुप्त प्रश्न करना ठीक नहीं! इसके पश्चात् व्याख्यान हुए—पहला व्याख्यान १० सहस्त्र व्यक्तियों ने सुना। यह व्याख्यान २५ नवम्बर सन् १८७४ को मध्यान्होत्तर २ बजे से ६ बजे तक हुआ। मूर्तिपूजा पर व्याख्यान आरम्भ हुआ। बल्लभ सम्प्रदाय की ओर से बेचर शास्त्री ने प्रश्न किये। किन्तु अभी नियम पूर्वक शास्त्रार्थ शुरू भी नहीं हो पाया था कि हल्ला-गुल्ला मच गया; लाठियां चलने लगीं। हाल के मैनेजर ने गैस बन्द करके अंधेरा कर दिया तो लोग शान्त हो गये। इस शरारत में बेचर शास्त्री का हाथ नहीं बताया जाता। कहते हैं कि वह सरल स्वभाव के व्यक्ति थे।

दूसरा व्याख्यान—२८ नवम्बर को सायंकाल ५ बजे उसी भवन में हुआ। इस व्याख्यान में जन समूह को नियंत्रित रखने की दृष्टि से प्रवेश के लिए टिकटों की व्यवस्था की गई। महर्षि ने "आर्यावर्त का प्राचीन इतिहास सुनाया। कपटी धर्माचार्यों के विषय में उनकी हास्यमय उक्तियों ने *बनियों के वृहत् समुदाय में जो उनका व्याख्यान सुनने गये थे* बड़ी सनसनी उत्पन्न करदी है। जो कुछ अन्त में कहा उससे प्रकट होता है कि इस समय वे *वेदभाष्य की रचना* करने में लगे

हुए थे।" (इन्दु प्रकाश ३०-११-१८७४)

'गुजराती मित्र' ने महर्षि के आधुनिक अंग्रेजी पद्धति की शिक्षा-पद्धति की आलोचना की प्रत्यालोचना की थी। महर्षि ने कहा था—हमें अंग्रेजी केवल एक घंटा प्रतिदिन पढ़न चाहिए; शेष समय वेदाध्ययन में लगाना चाहिए। कहना नहीं होगा कि आज इन विचारों की दूरदर्शिता के सम्बन्ध में किसी को सन्देह का स्थान नहीं है।

महर्षि के व्याख्यानों में धीरे-धीरे सब अवैदिक सम्प्रदायों और वादों का खण्डन होने लगा। अब अद्वैतवादी उनके मित्र भी विरक्त होगये। शङ्करभाई नानाभाई ने इनकी ओर से स्वामीजी के विरुद्ध लेख लिखे और गिरधारीलाल दयालदास कोठारी ने स्वामीजी की ओर से इनके उत्तर में 'बाम्बे गजट' और टाइम्स ऑफ इण्डिया' में लेख लिखे।

धूर्तों की कुचालें—जैसा कि सम्भव था, यहां भी महर्षि के विरुद्ध अनेक कुचालों का चक्र घुमाया गया। बल्लभ सम्प्रदाय का आचार्य जीवनजी महाराज का सबसे बड़ा शत्रु बन गया। इसने एक दिन महाराज के पाचक बलदेव को ५ रु०,५ सेर मिठाई और १०००) की चिट्ठी देकर महर्षि के भोजन में विष दिलवाने का वचन लिया। किसी ने महर्षि को बलदेव की इस गतिविधि की सूचना दे दी। जब बलदेव लौटकर आया तो उससे आप ने पूछा। सेवक ने सब सच-कह दिया। महर्षि ने मिठाई फिकवा और चिट्ठी फड़वाकर भविष्य के लिए सावधान कर दिया।

एक दिन गोकुलिये गुसाइयों के अनुयायी २० कच्छी बनियों की टोली ने महाराज को बालुकेश्वर में घेरने की व्यर्थ चेष्टा की। एक बार घूमने के समय महाराज ने कुछ लोगों को संदिग्ध अवस्था में अपना पीछा करते देखा तो उनसे पूछताछ की। इसके पश्चात् वे फिर उनके पीछे नहीं लगे।

एक दिन दो गुण्डे रात्रि के समय घात की इच्छा से कमरे में घुस गये। सेठ सेवक लाल कर्शनदास उस समय महर्षि के पास बैठे थे। सेठ ने उन्हें देख लिया और पकड़ लिया। गुण्डों ने स्वीकार किया कि महर्षि के वध के लिए उन्हें २००) रु० मिले थे।

प्रसिद्ध पुरुषों से भेंट—बड़ौदा के दीवान सर टी० माधवराव और नायब दीवान मिस्टर जनार्दन कीर्तनीय ने भी महर्षि से भेंट की।

पं० विष्णु परशुराम शास्त्री और डा० आर. जी. भंडारकर उन दिनों संस्कृत के परम विद्वान् माने जाते थे। वे राजमान्य भी थे। ये दोनों ही ब्राह्मसमाज-अथवा प्रार्थनासमाज के सदस्य थे। ये दोनों १३ नवम्बर १८७४ से कुछ पूर्व महर्षि से भेंट करने गये। सुधार कार्य और बहुदेवता वाद पर बातचीत हुई। डाक्टर भण्डारकर ने देवेन्द्र-बाबू को लिखे एक पत्र में इस चर्चा का वृत्त लिखा है। इसमें लिखा है कि डाक्टर भंडारकर महोदय ने एतरेय ब्राह्मण से शुनःशेप की कथा का उद्धरण देकर अपना पक्ष सिद्ध करना चाहा। अन्त में यह भी लिखा है कि स्वामीजी उस समय ब्राह्मणों को ईश्वरवाक्य नहीं मानते थे—यह बात प्रतीत नहीं होती थी। परन्तु डाक्टर साहब के इस लेख का खंडन उस विज्ञापन से स्पष्टतः होजाता है जो उन्होंने बल्लभियों के २४ प्रश्नों के उत्तर में प्रकाशित कराया था और जिसका विस्तार से हम ऊपर उल्लेख कर आये हैं।

इसी पत्र में डाक्टर महोदय ने महर्षि की यह शिकायत की है कि उन्होंने शास्त्री जी के लिए कठोर शब्दों का प्रयोग किया। पर वस्तुतः तथ्य यह प्रतीत होता है कि शास्त्री जी क्रोधनशील और चिड़चिड़े थे।

बलदेव का उद्धार—इन दिनों बलदेव नाम का एक कान्य-कुब्ज ब्राह्मण ब्रह्मचारी खाकी बाबा के नाम से प्रसिद्ध था। सिर पर

जटा जूट बढ़ाये, भस्मी रमाये बालुकेश्वर में महर्षि के मार्ग में खड़ा रहता था। महर्षि के सत्संग से यह सीधे मार्ग पर आया। शरीर से हृष्ट-पुष्ट था तब से महर्षि की रक्षा में सावधान रहा।

शास्त्रार्थ की चर्चा—उन दिनों बम्बई में पं० गट्टूलाल नामके एक एकाक्षी, मेधावी संस्कृत के पण्डित विराजमान थे। वे शतावधानी प्रसिद्ध थे; यद्यपि दूसरी आंख से भी उन्हें दीखना बन्द हो गया था—शतरंज खेल सकते थे। सौ बातें चाहे जिस भाषा में कही जातीं—उन्हें वह एक बार सुन कर क्रमशः दुहरा देते थे। महाराजाओं में उनका बड़ा मान था। महर्षि ने यहां यह प्रतिज्ञा कर रखी थी कि यदि कोई वेदों से मूर्तिपूजा सिद्ध कर देगा तो वे संन्यास छोड़ तिलक, त्रिपुंड आदि धारण कर लेंगे पर साथ ही प्रतिपक्षी को भी हार जाने पर मूर्तियां देव मन्दिरों से उठवानी होगी। पं० गट्टूलाल के लिए महर्षि ने मूर्तियों को उठवाने की शर्त इसलिए छोड़ दी कि वह कहता था कि मैं पराजित हो जाऊं तो कोई बात नहीं, परन्तु देव-मन्दिरों से मूर्तियों के च्युत होने का पाप कौन सर पर ले। परन्तु फिर भी यह सामने नहीं आया। दोनों पक्षों की ओर से विज्ञापनबाजी होती रही। सभाओं और गुटबन्दियों में परामर्श चलते रहे। अन्त में ३ दिसम्बर को एक विज्ञापन गट्टूलाल के समर्थक गोविन्द बालकृष्ण, लाल जी मुरारजी, दामोदर माधवजी, नागरदास, परमानन्द दास, हरिलाल मोहनलाल के नाम से प्रकाशित किया गया। इसमें ५ दिसम्बर शनिवार चार से आठ बजे तक लालबाग में सभा करने की घोषणा की गई। महर्षि को इसमें शास्त्रार्थ के लिए निमन्त्रित किया गया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि इससे पहले महर्षि की ओर से २८ नवम्बर की सभा में ही ५ दिसम्बर को फ्रामजी काउसजी हाल में उनके व्याख्यान के होने की घोषणा सर्व विदित थी।

महर्षि ने स्वीकार किया—फिर भी महर्षि ने इस अवसर

को हाथ से न जाने देना अच्छा समझा। ४ दिसम्बर को प्रातःकाल उभय पक्ष के मित्र मथुरादास लौजी, गोवर्धनदास मूलजी और पन्नाचन्द आनन्दजी, गट्टूलाल जी के पास पहुँचे। उस समय उनके पिता भी वहीं विद्यमान थे। महर्षि के सन्देशहरों ने उनके सम्मुख शास्त्रार्थ स्वीकार करने का महर्षि का सन्देश देते हुए निम्न शर्तें पेश कीं:—पण्डित गट्टूलाल जी को यह प्रतिपादन करना होगा कि बल्लभ सम्प्रदाय के सिद्धान्त शास्त्रसिद्ध हैं और बल्लभाचार्य के वंश के लोग ही गुरुपद के योग्य हैं। महर्षि इसका विरोध करेंगे। इस विचार्य्य विषय पर दोनों के हस्ताक्षर होंगे। एक एक प्रति उभय पक्ष के पास रहेगी। सभा में ५०-५० पुरुष दोनों ओर से उपस्थित होंगे। प्रत्येक पक्ष की ओर से नियत पुरुष सारी कार्यवाही को लिखते रहेंगे। सभा प्रतिदिन दो घंटे हुआ करेगी। सभा विसर्जन पर उस दिन के कार्य-विवरण पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर होंगे। सभा में उपस्थित पण्डितों और मध्यस्थ के भी साक्षि रूप से हस्ताक्षर होंगे। उपस्थापित शास्त्रवचन को शास्त्र में दिखाना होगा। जब तक एक पक्ष का वक्तव्य पूरा न होगा तब तक दूसरा पक्ष बोलने न पायेगा। शास्त्रार्थ-विषय के पूर्ण विवेचन की समाप्ति तक सभा चलती रहेगी। समाप्ति पर उभयपक्षों के हस्ताक्षरों सहित कार्यवाही छपवाकर जन साधारण में बांट दी जायगी।

इन शर्तों पर शास्त्रार्थ करने के लिए पण्डित गट्टूलाल और उनके पिता असम्मत रहे। परन्तु उन्होंने ५ दिसम्बर को लालबाग में सभा अवश्य की। और जब उसमें महर्षि नहीं पधारे तो तरह तरह की बातें फैलानी चाहीं।

गट्टूलाल के व्याख्यान पर शिष्य का आक्षेप—

परन्तु इस सभा का परिणाम भी महर्षि के पक्ष में रहा। पं० गट्टूलाल ने इस सभा में मूर्तिपूजा पर व्याख्यान दिया और प्रतिमा शब्द के लिए यजुर्वेद के आठवें अध्याय का कोई मन्त्र उपस्थित किया। जना-

र्दनगोपाल ने पूछा प्रतिमा शब्द के अर्थों को देवमूर्ति के अर्थों में ही सीमित करने के लिए क्या युक्ति है ? इसी प्रकार पं० गट्टूलाल के ही एक शिष्य कालिदास पण्डित ने पूछा महाराज लालजी (माखन निर्मित बाल गोपाल) की मूर्ति का वेद में कहां विधान है ? पंडित जी ऐसे प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सके। जनता को सभा की वास्तविकता का ज्ञान हो गया। विरोधियों को ऋषि के विरुद्ध झूठमूठ ही विजय का झंडा फहराने का अवसर हाथ न लगा।

इस सभा के संयोजकों के इरादों के सम्बन्ध में 'बम्बई गजट' ने ४ दिसम्बर के अङ्क में एक लेख लिखकर स्वयं यह आशंका प्रकट की थी कि 'स्वामीजी ऐसी सभा में जाना स्वीकार करेंगे भी जहां यह अधिक सम्भावना है कि एक पक्ष की ओर से उनके विरुद्ध हुल्लड़ मचाया जायगा।

विरोधियों ने अपनी धूर्तता अब तक नहीं छोड़ी। जब वे अपने कार्यक्रम के अनुसार बम्बई से जाने लगे तो प्रसिद्ध किया गया कि स्वामीजी शास्त्रार्थ के भय के कारण बम्बई छोड़ रहे हैं !

लेखन-कार्य—महर्षि का लेखनकार्य चालू हो ही गया था। 'सत्यार्थ प्रकाश' का लेखन तो प्रयाग में ही समाप्त हो चुका था। पंडित कृष्णराम इच्छाराम अद्वैतवादी थे। वे महर्षि के सत्संग के इच्छुक हो महर्षि के साथ रहने लगे। महर्षि ने उनसे *'वेदान्तध्वान्त-निवारण'* पुस्तक की रचना का कार्य लिया। इस पुस्तक के लेखन के पश्चात् पंडित कृष्णराम इच्छाराम के विचार बदल गये। यह पुस्तक दो ही दिन में लिखवा डाली।

२—इसके पश्चात् नमूने के रूपमें *ऋग्वेद के पहले सूक्त का भाष्य* जिसमें गुजराती और मरहठी भाषा में अनुवाद भी था—लिखवाया। इसमें ऋग्वेद के पहले मन्त्र 'अग्नि मीले पुरोहितम्' के भौतिक और

पारमार्थिक—दोनों अर्थ करके उन पर आपत्तियों का आमन्त्रण किया गया था—परन्तु किसी ने समालोचना या आपत्ति नहीं की। काशी के पं० बालशास्त्री, स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती तथा कलकत्ता व अन्य स्थानों के पंडितों, बुलन्दशहर के कलक्टर मिस्टर ग्राउस और ग्रिफिथ साहब को भी नमूने भेजे गये थे। ग्रिफिथ साहब ने विरुद्ध सम्मति दी थी। 'इन्दुप्रकाश' ३० नवम्बर के अंक से पता चलता है कि इस समय महर्षि वेदभाष्य की रचना में लगे हुए थे।

३—नवम्बर सन् १८७४ में ही उन्होंने बल्लभ-सम्प्रदाय के खंडन में 'बल्लभाचार्य-मत-खंडन' नाम का ट्रैक्ट लिखा। इसका पहला संस्करण निर्णयसागर प्रेस बम्बई में छपा था।

४—'स्वामिनारायणमतखंडन' भी यहीं लिखा गया। 'संस्कार-विधि' का लेखन भी आरम्भ हो चुका था। देवेन्द्रबाबू के लेखानुसार संस्कारविधि का आरम्भ सूरत में हुआ था।

'आर्यसमाज' के विचार का अंकुर—यहीं मार्गशीर्ष सं० १९३१ में बहुत से सज्जनों ने मिलकर महर्षि से प्रार्थना की कि 'हम आपके उपदेशों से पूरा लाभ उठाने के लिए सत्संग की स्थापना करना चाहते हैं। कृपया आप अपने श्रीमुख से उसका नामकरण कर दीजिये।' कहते हैं कि महर्षि कुछ देर ध्यानावस्थित रहे। पश्चात् बोले—इस सत्संग का नाम 'आर्यसमाज' होगा। सभी महानुभावों ने इस पर सहमति प्रकाशित की। २५-३० के लगभग व्यक्तियों ने इस पर तुरन्त अमल करना चाहा। परन्तु महर्षि के सूरत जाने से पहले यह कार्य सम्पन्न न हो सका और इसी अन्तर में महर्षि सूरत के लिए चल पड़े। सम्भवतः बिरादरी के दबाव आदि कारणों से उस समय कोई व्यक्ति इस संगठन में सम्मिलित न हो सका।

सूरत में व्याख्यानमाला—महर्षि को प्रेरणा हुई कि गुजरात-

काठियावाड़ में धर्मप्रचार करें। उन्होंने पण्डित कृष्णराम इच्छाराम के परिचय से लाभ उठाना चाहा और उसने अपने कवितागुरु पण्डित नर्मदाशंकर को महर्षि की इच्छा से अवगत कराया। पण्डित नर्मदाशंकर ने सहर्ष निमन्त्रण दिया। उधर बम्बई से सूरत के डिप्टी कलक्टर राव बहादुर जगजीवनदास के नाम परिचयपत्र भी ले लिया गया।

पं० नर्मदाशंकर तो स्टेशन पर न पहुँच सके, राव बहादुर की गाड़ी आई। पहले तो उन्हें राव बहादुर के बाग में ही उतरना पड़ा—पर यहां ताड़ी नदी का तट होने से स्नानार्थी नरनारियों का कोलाहल रहता था। अतएव पंडित कृष्णराम इच्छाराम के प्रयत्न से दूसरा स्थान खोजा गया और कातारग्राम के मार्ग पर स्थित सेठ नगीनदास के सौदागर प्रेस वाले बंगले में निवास हुआ। पर एक बात विचित्र यह हुई कि भोजन की व्यवस्था का किसी ने ध्यान नहीं रखा। पं० कृष्णराम इच्छाराम के पास के २-४ रुपये भी जब समाप्त हो गये तो विवश होकर उसने अपने कवितागुरु पं० नर्मदाशंकर से कहा और उसने तुरन्त रुपया इकट्ठा किया।

व्याख्यान की व्यवस्था इन्हीं पं० नर्मदाशंकर ने पं० दुर्गाराम मोता नागर ब्राह्मण के सहयोग एवं परामर्श से की। पं० दुर्गाराम नगर के प्रसिद्ध सुधारक एवं गुजराती स्कूल के प्रधानाध्यापक थे। यहां पांच व्याख्यानों की व्यवस्था की गई।

पहला व्याख्यान २ दिसम्बर को एन्ड्रूज पब्लिक पुस्तकालय में डिप्टी जगजीवनदास के सभापतित्व में हुआ। इसमें वल्लभाचार्य, राममोहनराय, स्वामी नारायणमत के प्रवर्तक सहजानन्द और रामानुजाचार्य पर आलोचना हुई। 'गुजरात मित्र' के सम्पादक का भाई गेलाभाई सहजानन्दी था—वह कुछ बिगड़ा और व्याख्यान के बीच में बोल उठा; परन्तु पीछे शंकासमाधान के लिए भी सामने नहीं आया। निर्भयराम मनसुखराम ठेकेदार ने अपने अनुभव के आधार पर महर्षि

कृत सहजानन्दी आलोचना का समर्थन किया।

दूसरा व्याख्यान गवर्नमेंट हाई स्कूल के अहाते में प्रिंसिपल की अध्यक्षता में हुआ। इसमें बुद्धोक्त, जिनोक्त, पुराणोक्त, तन्त्रोक्त धर्म से आर्यधर्म का स्वरूप प्रतिपादित किया गया।

तीसरा व्याख्यान सेठ रामचन्द्र की कन्या पाठशाला में हुआ।

चौथा व्याख्यान ७ दिसम्बर को रघुनाथपुरे के सेठ ठाकुरभाई चुन्नीलाल चाका वाले के शिवमन्दिर से मिले हुए एक मकान में होना था। परन्तु जब समय पर लोग पहुँचे तो उसे भीतर से बन्द पाया। खुलवाने पर भी नहीं खुला। ठाकुरभाई महर्षि के भक्त प्रतीत होते थे—उनका भी कहीं पता न था। लोगों ने व्याख्यान का प्रबन्ध दूसरे स्थान पर करना चाहा। परन्तु महर्षि ने कहा—व्याख्यान यहीं होगा। एक कुर्सी लाई गई; महाराज उस पर बैठे। लोगों ने जमीन पर बैठ कर श्रद्धा व शांति से महाराज का व्याख्यान सुना।

महर्षि का पांचवां व्याख्यान पं० दुर्गाराम मोता की अध्यक्षता में पं० नर्मदाशंकर के घर के निकट एक मैदान में हुआ। इसमें अद्वैतमत का खण्डन किया गया। व्याख्यान के पश्चात् पं० इच्छाशंकर तथा कुछ दूसरे पण्डित शास्त्रार्थ की इच्छा से अग्रेसर हुए, परन्तु दो-चार बातों में ही निरुत्तर होगये। यहां सभा समाप्ति पर कुछ ईंटें भी फैंकी गई—परन्तु विशेष उपद्रव नहीं हुआ।

मठधारी मोहन बाबा—८० वर्षीय मठधारी मोहन बाबा का परिचय चौथे व्याख्यान के समय हुआ जब कि उसने महाराज को साष्टांग प्रणाम किया। मोहन बाबा बड़ोदे के नृसिंह आचारी के गुरु थे—संस्कृतज्ञ नहीं थे, गुजराती के कवि थे। मूर्तिपूजा के विरोधी थे—सूरत के शिक्षित समाज में उनका बड़ा आदर था। ये मोहन बाबा महर्षि को अवतारी पुरुष कहा करते थे। इनकी इच्छा थी कि सूरत

बुलाकर महर्षि का आदर किया जाय—अतएव इस सुअवसर से उन्होंने स्वभावतः लाभ उठाना चाहा। मोहन बाबा को महर्षि के सम्मुख साष्टांग प्रणाम करते देख जानने वाले बड़े चकित हुए।

महर्षि को मोहन बाबा ने अपने मठ में ले जाना चाहा। पं० कृष्णराम द्वारा उनके सम्बन्ध में पूर्ण परिचय पाकर महर्षि ने मोहन बाबा का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। महर्षि के श्रद्धालु सज्जन पं० नर्मदाशंकर आदि भी साथ गये। मोहन बाबा ने बड़े प्रेम व श्रद्धा से स्वागत किया—उच्चासन दिया, जयमाल पहनाई, चन्दनलेपन, पुष्प वृष्टि—सभी कुछ किया। महर्षि भी भक्त के आग्रह से इतने द्रवित हुए कि अपना नियम तोड़कर बाबा की चेलियों को दर्शन दिया। वहां जाकर उन्होंने अपनी दृष्टि क्षण भर के लिए भी ऊपर को नहीं की—स्त्रियों ने भी दूर से ही उन पर पुष्पवृष्टि की; चरण छूने देने की अनुमति महर्षि ने किसी भी प्रकार न दी। यहां महर्षि ने गुजराती-प्रथा-पद्धति पर अन्य वस्त्र उतार कर केवल मुकटा धारण कर भोजन किया।

कातार ग्राम में—कातार ग्राम के आखोवाला देशवई ब्राह्मणों का निमंत्रण प्रेमपूर्वक स्वीकार कर महर्षि ने उस ग्राम के निवासियों को उपदेशों से कृतार्थ किया। महर्षि ने निस्संकोच हो उनके साथ बैठकर नई ज्वार को भूनकर खाया।

आलोचना—यहां का 'गुजरात-मित्र' आपका आलोचक ही रहा। परन्तु समझदार व्यक्तियों को उस आलोचना में कोई सार नहीं दिखा। व्याख्यान के मध्य में प्रश्न न पूछने देना उसे न जाने क्यों अनुचित जान पड़ा, जब कि प्रत्येक सभ्य समाज में यह नियम प्रचलित है। अन्त में इस पत्र ने महर्षि के विरुद्ध स्थानीय प्रशासन (सरकार) को भी भड़काना चाहा। परन्तु व्याख्यान बन्द न हुए।

चढ़ावा नहीं लेता---- एक दिन व्याख्यान के अन्त में एक सेठ ने बहुमूल्य शाल श्रीसेवा में निवेदन किया। महर्षि ने कहा—पौराणिक कथावाचकों की भांति कथा पर चढ़ावा चढ़ाने की प्रथा को मैं उत्साहित नहीं करना चाहता।

भड़ौंच में धर्मचर्चा—सूरत से महर्षि भड़ौंच पधारे। डिप्टी जगजीवनदास के लिखने पर डिप्टी कलक्टर प्राणलाल माहवरदास की गाड़ी स्टेशन पर तय्यार मिली। यहां महर्षि नर्मदातट पर स्थित भृगु-ऋषि की धर्मशाला में ठहरे। नगर में स्थित भी यह स्थान एकांत था। ठाकुर उमरावसिंह, मोहनलाल वकील और अचरतलाल वकील ने आपके भोजन की व्यवस्था की।

व्याख्यान इसी धर्मशाला में हुए। पं० माधवराव त्र्यम्बकराव एक दक्षिणी ब्राह्मण थे जिनका प्रतिष्ठित जनता में मान था और उनकी यहां अच्छी शिष्यमण्डली थी। पहले व्याख्यान के अन्त में उन्होंने शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट की। परन्तु 'कुछ ऋग्वेद पढ़ा है' कह कर भी वे वेद-मन्त्र का अर्थ न कर सके। महर्षि ने कहा अभी आप और पढ़िये। इस पर उन्हें क्रोध आगया और वे उठकर चले गये। परन्तु उनके एक शिष्य ने कुछ अशिष्टता की जिस पर बलदेवसिंह ने उसे आड़े हाथों लिया। महर्षि गम्भीर समुद्र के समान शान्त रहे।

अगले दिन पं० माधवराव ने पृथक् व्याख्यान दिया। इसमें महर्षि के लिए अपशब्दों का प्रयोग भी किया। महर्षि ने तीसरे दिन फिर व्याख्यान में उसकी बातों का खंडन किया। वह भी शिष्यमंडलीसहित उपस्थित था। भड़ौंच में छावनी होने से व्याख्यान में सैनिक भी पर्याप्त संख्या में उपस्थित थे। माधवराव के किसी मद्यप शिष्य ने फिर उद्दंडता दिखानी चाही परन्तु सैनिकों ने उसे ऐसा डांटा कि वह चुप हो गया।

भड़ौंच का पारसी स्टेशन मास्टर रोमन कैथलिक ईसाई था।

उसने अपने व्याख्यानों में मूर्तिपूजा का मण्डन किया। महर्षि उपस्थित थे—कुछ दिन पश्चात् अपने व्याख्यान में महर्षि ने उसका खंडन किया।

इस प्रकार उत्तर-प्रत्युत्तर तो होते रहे—परन्तु नियमबद्ध शास्त्रार्थ के लिए कोई तय्यार नहीं हुआ।

स्त्रियों को उपदेश—महर्षि साधारणतः स्त्रियों को उपदेश नहीं देते थे—परन्तु यहां यह नियम भी तोड़ना पड़ा। अद्वैतानन्द की चेलियों के आग्रह पर बीच में पर्दा डलवा कर महर्षि ने पतिव्रत धर्म, पर सुन्दर प्रवचन किया। और कहा साधु-संन्यासियों के दर्शन के लिए इधर-उधर फिरते रहना स्त्री जाति के लिए सुन्दर मार्ग नहीं है।

अहमदाबाद में ८ व्याख्यान—११ दिसम्बर की रात को महर्षि अहमदाबाद पहुँचे। महीपतराम, रूपराम और गोपालराव हरि-देशमुख जज आदि ने स्टेशन पर स्वागत किया। माणिकेश्वर महादेव के मन्दिर में डेरा किया। ४ जनवरी १८७५ के 'टाइम्स आव इण्डिया' के लेख के अनुसार महर्षि यहां दो सप्ताह से कुछ अधिक दिन रहे।

१२ दिसम्बर को पहला व्याख्यान हिमाभाई इंस्टिट्यूट में मूर्ति-पूजा के खण्डन पर हुआ। दूसरा और तीसरा १३ व १४ दिसम्बर को माणिकेश्वर के मन्दिर में वर्णभेद विषय पर हुए। प्रार्थनासमाज के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्य में आपका एक व्याख्यान ट्रेनिंग कालेज में भी हुआ।

रावबहादुर बेचरदास अम्बाईदास, गोपालराव हरिदेशमुख, भोला-नाथ साराभाई और रणछोड़दास छोटेलाल ने परामर्श कर फीमेल ट्रेनिंग कालेज के मुख्याध्यापक पं० रेवाशंकर शास्त्री के हाथ भेजे एक विज्ञापन द्वारा पं० सेवकराम लल्लूभाई, भास्कर, भाईशंकर भट्ट दामो-दर प्रभृति ३० पण्डितों को महर्षि से शास्त्रार्थ का निमन्त्रण दिया।

उन्होंने शर्तें रखीं—चार पुरुष मध्यस्थ हों, सभा में कोई यवन उपस्थित न हो। ये दोनों स्वीकृत करली गईं। समय १ बजे का निश्चित हो गया। परन्तु आहूत पंडित कोई नहीं आया। एक दो दूसरे पण्डित आये उन्होंने जो कुछ पूछा उसका उत्तर देकर सन्तुष्ट कर दिया गया।

अहमदाबाद से महर्षि एक दिन के लिए निआद गये थे। यह एक तीर्थस्थान बताया जाता है। परन्तु श्री महेशप्रसाद मौलवी फाजिल ने कहा है कि इस नाम का कोई स्थान नहीं है—सम्भवतः यह नडियाद हो।

अहमदाबाद से महर्षि पौष कृष्णा ५ संवत् १९३१ (२८ दिसम्बर) को राजकोट चले गये। महर्षि का विचार बड़ौदा जाने का भी था। उनके एक पत्र से ज्ञात होता है कि उन दिनों ब्रिटिश सरकार ने रेजिडेंट कर्नल फेयर को विष देकर मार डालने के अपराध में महाराजा मल्हारराव गायकवाड़ को बन्दी बना कर पदच्युत कर दिया था। इस गड़बड़ी के दिनों में महर्षि ने बड़ौदा जाने का विचार त्याग दिया।

ग्रन्थ-रचना—अहमदाबाद में स्वामी-नारायण-मत के खण्डन नाम की छोटी सी पुस्तक लिखवाई। 'शिक्षापत्री' पौष वदी ११ रविवार को समाप्त हो चुकी थी।

राजकोट में आर्यसमाज—३१ दिसम्बर को महर्षि राजकोट पहुँच कर कैम्प की धर्मशाला में ठहरे। इस यात्रा की व्यवस्था व व्यय का प्रबन्ध हरगोविन्ददास द्वारकादास की ओर से हुआ था।

यहां जनता की इच्छानुसार विषयों को लेकर महर्षि ने ८ व्याख्यान धर्मशाला में ही दिए। इनके विषय थे—ईश्वर, धर्मोदय, वेदों का अनादित्व और अपौरुषेयत्व, पुनर्जन्म, विद्या-अविद्या, मुक्ति और बन्ध, आर्यों का इतिहास, और कर्त्तव्य। व्याख्यान से दूसरे दिन शंका समा-

धान होता था। हरगोविन्ददास ने वेदविषयक व्याख्यान को सुनकर कहा था—"उस दिन हमें स्वामीजी की विद्वत्ता, गंभीर चिन्तन और सूक्ष्मविचार का परिचय मिला। मैंने ऐसी वक्तृता कभी नहीं सुनी।"

पं० महीधर और जीवन शास्त्री ने मूर्तिपूजा और अद्वैतवाद पर शास्त्रार्थ किया। उनके अद्वैतवाद के उत्तर में महर्षि ने कहा अपने आपको ब्रह्म कहते हो, शरीर का एक लोम तो बनाकर दिखा दो!

हिंसा-अहिंसा की मीमांसा—राजकुमार कालेज के छात्रों के आग्रह पर आप एक दिन कालेज में व्याख्यान देने गये। कालेज के प्रिंसिपल मेकनाटेन उनकी 'अहिंसा परमो धर्मः' और मांस भक्षण के दोनों की विवेचना सुनकर दंग रह गये। उन्होंने एक प्रश्न किया कि हिंसा और मांस भक्षण पाप है तो ये क्षत्रिय राजकुमार तो सब नर्क में जांयगे। क्योंकि शिकार करना उनका काम ही है; महर्षि ने बताया कर्त्तव्यवश सिंह आदि हिंसक पशुओं का वध हिंसा नहीं है; रक्षा करना क्षत्रियों का कर्त्तव्य है कर्त्तव्य में पाप नहीं होता। प्रिंसपल महोदय ने महर्षि के वार्तालाप व व्याख्यान से सन्तुष्ट हो उन्हें मैक्समूलर द्वारा सम्पादित ऋग्वेद की प्रति भेंट में दी।

यहां एक व्याख्यान में महर्षि ने कहा कि प्राचीन समय में वाष्पयान (भाप से चलने वाली सवारी) का प्रचलन था। प्राचीन आर्यों को अमेरिका अथवा पाताल देश का भी ज्ञान था। कोलम्बस द्वारा इसके प्रथम अन्वेषण की बात ठीक नहीं जंचती। यहां महर्षि का फोटो भी लिया गया था जिसकी प्रतियां सदस्यों ने बड़े चाव से लीं थी।

प्रथम 'आर्यसमाज' की स्थापना?—पं० घासीराम जी लिखित जीवन चरित्र में इस संबन्ध में जो वर्णन दिया है उसका सारांश इस प्रकार है:—

महर्षि के व्याख्यानों से सुशिक्षित जनता पर बहुत प्रभाव पड़ा। प्रार्थना समाज तो यहां दो वर्ष पहले से ही स्थापित था। इस प्रार्थना-समाज के सदस्यों ने अब महर्षि के प्रस्ताव पर उसी को आर्यसमाज का नाम देने का निश्चय कर लिया। मणिशंकर जटाशंकर और उनकी अनुपस्थिति में उत्तमराम निर्भयराम प्रधान बने। हरगोविन्ददास द्वारकादास तथा नगीनदास ब्रजभूषणदास मन्त्री नियत हुए।

२१ जनवरी सन् १८७९ के 'हितेच्छु' में इस सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसका सारांश यह था कि राजकोट के अधिकांश शिक्षितों ने महर्षि के सिद्धान्तों को प्रायः स्वीकार कर लिया है। कुछ लोगों ने नियोग की प्रथा और ४८ वर्ष के प्रौढ़ का २० वर्ष की स्त्री के पाणिग्रहण होने को अधिक परिमाण में ब्रह्मचर्यबल की रक्षा का साधन मानना पसन्द नहीं किया है। आर्यसमाज के नियम मुद्रित होने के पश्चात् सदस्यों की संख्या ३० हो गई।

आकस्मिक बाधा—आर्यसमाज राजकोट का कार्य ५-६ महीने चलता रहा। महर्षि के चले जाने के पश्चात् पंडित गट्टूलाल शतावधानी को उनकी असाधारण स्मरणशक्ति की परीक्षा के लिए कुछ लोग आर्यसमाज में ले आए। उन्होंने अनेक विषयों पर आशु कविताएं कीं—इनमें एक विषय महाराज मल्हारराव की सिंहासन-च्युति भी था। इस सभा का सम्पूर्ण विवरण 'बम्बई गजट' और 'टाइम्स ओफ इंडिया' में प्रकाशनार्थ भेज दिया गया। समाज के मन्त्री नगीनदास, वकील थे और हरगोविन्द दास सरकारी कर्मचारी।

यह लेख एक ही पत्र में प्रकाशित हो पाया था कि दूसरे में इसका प्रकाशन तार द्वारा रोक दिया गया। परन्तु पोलिटिकल एजन्ट मिस्टर जेम्सपील के हाथ वह समाचारपत्र पड़ गया जिसमें संवाद प्रकाशित हुआ था। गायकवाड़ के सम्बन्ध की कविता देखकर मिस्टर पील

आग बबूला हो उठे। नगीनदास से तो पूछताछ किये बिना ही वकालत का लाइसेन्स जप्त करने की आज्ञा देदी। हरगोविन्ददास को बुलाकर समझा दिया। इस प्रकार प्रारम्भ में ही सरकारी कोप के कारण यह समाज बंद हो गया।

इस घटना की सत्यता में सन्देह !

परन्तु राजकोट में आर्यसमाज की स्थापना के सम्बन्ध में एक बात अवश्य संशय की है। २३ जनवरी को जो पत्र मुंशी हरवंशलाल को महर्षि ने अहमदाबाद से लिखा है उसमें राजकोट और अहमदाबाद का वृत्तान्त लिखा है। यदि राजकोट में आर्यसमाज की स्थापना हुई होती तो वह शुभ समाचार इस पत्र में अवश्य अंकित होता जैसा कि इससे भी कम महत्व का समाचार राजकुमार लोगों में भाषण का इसी पत्र में अंकित है।

अहमदाबाद में भी आर्यसमाज ?—१८ जनवरी को महर्षि राजकोट से अहमदाबाद के लिए प्रस्थित हुए। मार्ग में एक दिन बडोयान में लखतर के ठाकुर साहब के यहां ठहरे। २१ जनवरी को अहमदाबाद पहुँचे। यहां २७ जनवरी तक रहे।

इस यात्रा में राव बहादुर गोपालराव हरिदेशमुख की महर्षि में इतनी अनुरक्ति बढ़ी कि वे उनके अनन्य भक्त बन गये। महर्षि की पहली यात्रा में हुए व्याख्यानों के पश्चात् तक वे वेदों को निर्भ्रान्त नहीं मानते थे। इस वार उन्हें महर्षि के कथन की सत्यता में पूर्ण विश्वास हो गया।

इस बार कई शास्त्रियों ने महर्षि के वेदमन्त्रों के अर्थ पर आपत्ति की तो उनसे कहा गया कि वे अपना अर्थ लिखकर हस्ताक्षर करके दें—महर्षि ने स्वयं अपने अर्थ लिखकर हस्ताक्षर कर दे दिया। इन अर्थों को देख कर गोपालराव हरि, भोलानाथ और अम्बालाल आदि

को निश्चय हो गया कि महर्षि का कथन ही सत्य है।

शास्त्रियों से भोलानाथ और अम्बालाल की मध्यस्थता में मूर्ति-पूजा और वर्णाश्रम पर भी वार्तालाप हुआ। इसके अन्त में दोनों मध्यस्थों ने महर्षि के पक्ष में ही सम्मति दी।

तिथियों का हेरफेर—पंडित घासीराम जी ने यहां भी यह लिखा है कि आर्यसमाज की स्थापना हुई। परन्तु साथ ही वे लिखते हैं—"२७ जनवरी को रावबहादुर बिट्ठलदास के गृह पर एक सभा हुई जिसका उद्देश्य स्वामी जी की विदा सूचक संवर्धना करना और आर्यसमाज के विषय में परामर्श करना था।"

फिर आगे बताया है कि इसी सभा में शास्त्रिगण भी उपस्थित थे और फिर "आकृष्णेन रजसा वर्तमानो ०" वेदमन्त्र के अर्थ पर विवाद चला। महर्षि और पंडितों ने अर्थ लिख कर हस्ताक्षर किए। पुनः गोपालराव हरि आदि विद्वानों ने उसे देखा और अपना निश्चय किया।

उधर महर्षि अहमदाबाद से भड़ौच होकर सूरत गये; सूरत से बालसर और बसीन रोड होते हुए २९ जनवरी को बम्बई पहुँच गये। इस जीवन चरित्र में उनका बसीनरोड में चार दिन ठहरना भी लिखा है। अतएव यहां यह सब असंगत बातें प्रतीत होती हैं। महर्षि के २३ जनवरी के पत्र से तो यही प्रतीत होता है कि महर्षि २१ जनवरी को दुबारा अहमदाबाद आये और ४-५ दिन पश्चात् बम्बई की ओर चले गये।

उधर फाल्गुन बदी २ संवत् १९३१ (२२ फरवरी सन् १८७५) के अपने पत्र में महर्षि गोपालराव हरि को लिखते हैं—'अब तक आप लोगों ने आर्यसमाज का प्रारम्भ किया या नहीं। जो न किया हो तो जल्दी करें" यह पत्र भी बम्बई में आर्यसमाज की स्थापना से

पूर्व का है । १६ मार्च के पत्र में इन्हीं गोपाल हरि को मुम्बई में आर्यसमाज की स्थापना की तय्यारी का संवाद महर्षि ने दिया है— इसमें भी लिखा है कि '*आर्यसमाज का स्थापना शीघ्र करोगे तो अच्छा है* ।

आर्यसमाज नहीं आर्यसमाज का काम—इस विवरण के आधार पर हमारा यह विचार है कि नियम पूर्वक आर्यसमाज की स्थापना निः सन्देह बम्बई में हुई, पहली बार बम्बई में अपने संगठन का नाम 'आर्यसमाज' सूझ जाने पर भले ही उसकी चर्चा अपने भक्तों और अनुयायियों में महर्षि करते ही रहे होंगे । 'आर्यसमाज' निर्माण का यह काम चलता रहा और वे बम्बई वापस आगये ।

आर्यसमाज की स्थापना

अहमदाबाद से महर्षि सूरत आये । सूरत में उनका संस्कृत के युरोपियन विद्वान् डाक्टर वान बुहलर (Von Buhler) से साक्षात्कार हुआ । स्वामी जी इनके संस्कृत सम्भाषण से प्रसन्न हुए थे । माघ सं० १९३१ में महर्षि काठियावाड़ की प्रचार यात्रा के पश्चात् बम्बई पहुँचे और आषाढ़ १९३२ में वहां से पूना गये । लगभग ६ मास के इस अन्तर में सबसे बड़ी ऐतिहासिक घटना बम्बई में सर्वप्रथम आर्यसमाज की स्थापना ही है ।

इस बार महर्षि का पहला व्याख्यान ४ फर्वरी (सन् १८७५ ई०) को हुआ । बम्बई जहां-तहां व्याख्यानों की सुविधा न रहने के कारण महर्षि के भक्तों ने अब कोट के 'मैदान' में एक सभामण्डप का निर्माण कर इसका नाम 'वेदमण्डप' रक्खा । आर्यसमाज की स्थापना तक इसी वेदमण्डप में महर्षि के व्याख्यान होते रहे । इस मण्डप में पहला व्याख्यान २२ फर्वरी सन् १८७५ को हुआ ।

आर्यसमाज की स्थापना के लिए महर्षि के भक्तों में चर्चा चल ही रही थी। १७ फर्वरी तक १०० व्यक्तियों ने सदस्य होना स्वीकार कर लिया था। इस अन्तर में राजकृष्ण की कथा भी ऐतिहासिक है। राजकृष्ण नवीन वेदान्त का पक्षपाती था; परन्तु बम्बई में महर्षि के स्वागत और निवास की व्यवस्था इसी ने की थी। पहले यह नवीन वेदान्त के समर्थन में 'हृदयचक्षु' नाम का मासिक पत्र निकालता था-फिर महर्षि के कहने से इसका नाम 'आर्य-धर्म-प्रकाश' रख लिया था। आर्यसमाज के लिए नियम बनाते समय इसने महर्षि से आग्रह किया कि नियमों में जीव-ब्रह्म की एकता के सिद्धान्त का समावेश होना चाहिए, ऐसा करने से *हम अनेक लोगों को आकर्षित* कर सकेंगे। महर्षि ने इसके उत्तर में स्वभावतः स्पष्टोक्ति से काम लिया और कहा—"मैं आर्यसमाज को असत्य पर कदापि स्थापित नहीं करूंगा।"

राजकृष्ण की कथा—राजकृष्ण रुष्ट होगया और भावी सदस्यों की तालिका भी अपने साथ लेता गया। अब वह और उसका पत्र महर्षि का विरोध करने लगे। परन्तु क्या महर्षि का अवलम्ब अथवा आर्यसमाज का बनना न बनना अकेले राजकृष्ण पर निर्भर था? यह तो उसका एक भारी भ्रम ही था।

भक्तों का प्रयत्न चालू रहा। राजेश्वरी पानाचन्द आनन्द जी पारी ने नियमों का ढांचा तय्यार किया। महर्षि ने इन्हें देख उचित संशोधन किया। चैत्र शुक्ला ५ शनिवार संवत् १९३२ तदनुसार १० अप्रैल सन् १८७५ को गिरगाम रोड पर स्थित डाक्टर माणिकजी की बागबाड़ी में सायंकाल ५॥ बजे *'आर्यसमाज'* की नियम पूर्वक स्थापना कर दी गई। सेठ मथुरादास हौजी, सेवकलाल करसनदास, गिरधारीलाल दयालदास कोठरी बी.ए.एल-एल.बी. आदि सज्जनों ने इस शुभकार्य में पूरे उद्योग और लगन से कार्य किया। इनके साथ पौराणिकों की ओर से इस

समय नाना अत्याचार भी हुए—सर्वसाधारण में भरपेट निंदा भी की गई परन्तु ये अपने शुभ संकल्प पर दृढ़ रहे और आर्यसमाज की उन्नति में सदा तत्पर रहे।

इस समय आर्यसमाज के सभासदों की संख्या लगभग १०० थी। साप्ताहिक अधिवेशन का समय प्रारम्भ में प्रति शनिवार सायङ्काल निश्चित हुआ। पीछे सभासदों की अनुकूलता के अनुसार रविवार का समय निश्चित किया गया। नियमानुसार पदाधिकारियों का चुनाव भी किया गया। बहुत से सभासदों ने महर्षि को समाज का अधिनायक अथवा सभापति बनाने का प्रस्ताव किया। परन्तु महर्षि ने दूरदर्शिता से इसे अस्वीकार किया। अत्यन्त आग्रह पर साधारण सदस्य रहना स्वीकार किया।

आर्यसमाज के नियम—बम्बई में प्रथम आर्यसमाज की स्थापना के समय आर्यसमाज के निम्न २८ नियम स्वीकृत हुए थे :—

१—सब मनुष्यों के हितार्थ आर्यसमाज का होना आवश्यक है।

२—इस समाज में मुख्य स्वतः प्रमाण वेदों ही को माना जायगा। साक्षी के लिए, वेदों के ज्ञान के लिए और इतिहास के लिए शतपथादि चार ब्राह्मण, छः वेदांग चार उपवेद, छः दर्शन और ११२७ वेदों की व्याख्यान रूप शाखायें—इन आर्ष ग्रन्थों को भी वेदानुकूल होने से गौण प्रमाण माना जायगा।

३—इस समाज में प्रति देश के मध्य एक प्रधान समाज होगा दूसरे शाखा प्रतिशाखा समझे जायेंगे।

४—सब समाजों की व्यवस्था प्रधान समाज के अनुकूल ही रहेगी।

५—प्रधान समाज में सत्योपदेश के लिए संस्कृत और आर्य भाषा में नाना प्रकार के ग्रन्थ रहेंगे और एक साप्ताहिक पत्र 'आर्य-प्रकाश' निकलेगा। ये समाज में प्रवृत्त किये जायेंगे।

६—प्रत्येक समाज में एक प्रधान पुरुष, दूसरा मन्त्री तथा अन्य पुरुष और स्त्री सब सभासद् होंगे।

७—प्रधान पुरुष इस समाज की व्यवस्था का यथावत् पालन करेगा और मन्त्री सबके उत्तर तथा सबके नाम व्यवस्था लेख करेगा।

८—इस समाज में सत्पुरुष, सदाचारी और परोपकारी सभासद् बनाये जावेंगे।

९—प्रत्येक गृहस्थ सभासद् को उचित है कि वह अपने गृह-कृत्य से अवकाश पाकर, जैसे घर के कामों में पुरुषार्थ करता है, उससे अधिक पुरुषार्थ इस समाज की उन्नति के लिये करें और विरक्त तो समाजोन्नति ही में नित्य तत्पर रहे।

१० प्रत्येक सप्ताह में एक दिन प्रधान, मन्त्री और सभासद् समाज स्थान में एकत्रित हों और सब कर्मों से इस काम को मुख्य जानें।

११—एकत्र होकर सर्वथा स्थिर चित्त हो, पक्षपात छोड़ कर परस्पर प्रीति से प्रश्नोत्तर करें; फिर सामवेद गान, परमेश्वर, सत्य धर्म सत्यनीति, सत्योपदेश के विषय ही में बाजे आदि से गान, और इन्हीं विषयों पर मन्त्रों का अर्थ और व्याख्यान हो। फिर गान, फिर मन्त्रों का अर्थ, फिर गान आदि।

१२—प्रत्येक सभासद् न्याय पूर्वक पुरुषार्थ से जितना धन प्राप्त करें उसमें से शतांश 'आर्य विद्यालय' और 'आर्य प्रकाश' पत्र के प्रचार और उन्नति के लिए आर्यसमाज के कोष में देवें।

१३—जो मनुष्य इन कार्यों को उन्नति और प्रचार के लिये जितना जितना प्रयत्न करे उसका उतना ही अधिक सत्कार, उत्साहवृद्धि के लिए होना चाहिए।

१४—इस समाज में वेदोक्त प्रकार से अद्वैत परमेश्वर ही की स्तुति, प्रार्थना, और उपासना की जायगी। स्तुति—निराकार सर्व शक्ति-

मान्, न्यायकारी, अजन्मा, अनादि, अनुपम, दयालु, सर्वाधार और सच्चिदानन्द आदि विशेषणों से परमात्मा का गुण-कीर्तन करना; प्रार्थना—सब श्रेष्ठ कार्यों में उससे साहाय्य चाहना; उपासना—उसके आनन्दस्वरूप में मग्न हो जाना। सो पूर्वोक्त लक्षणयुक्त परमात्मा ही की भक्ति करनी चाहिए उसको छोड़ अन्य किसी का आश्रय नहीं लेना चाहिये।

१५–इस समाज में निषेकादि अन्त्येष्टि पर्य्यन्तसंस्कार वेदोक्त किये जायेंगे।

१६–आर्य विद्यालय में वेदादि सनातन आर्ष ग्रंथों का पठन-पाठन हुआ करेगा, और सब स्त्री-पुरुषों को वेदोक्त रीति ही से शिक्षा दी जायगी।

१७–इस समाज से स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिए प्रयत्न किया जायगा—एक परमार्थ, दूसरे व्यवहार। इन दोनों का शोधन तथा संसार के हित की उन्नति की जायगी।

१८–इस समाज में न्याय, पक्षपात से रहित और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से यथावत् परीक्षित सत्य धर्म, वेदोक्त ही माना जायगा; इससे विपरीत कदापि नहीं।

१९–इस समाज की ओर से श्रेष्ठ विद्वान् लोग सदुपदेश करने के लिये समयानुकूल सर्वत्र भेजे जायँगे।

२०–स्त्री और पुरुष इन दोनों के विद्याभ्यास के लिए यथा सम्भव प्रत्येक स्थान में आर्य विद्यालय पृथक् २ बनाए जायंगे। स्त्रियों की पाठशाला में अध्यापिका आदि का सब प्रबन्ध स्त्रियों द्वारा ही किया जायगा, और पुरुषों की पाठशाला में पुरुषों द्वारा; इसके विरुद्ध नहीं।

२१–इन पाठशालाओं की व्यवस्था प्रधान आर्य समाज के अनुकूल पालन की जायगी।

२२–इस समाज में प्रधानादि सब सभासदों को परस्पर प्रीति-पूर्वक अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोधादि दुर्गुणों को छोड़कर उपकार और सुहृद्भाव से निर्वैर होकर स्वात्मवत् सबके साथ बर्तना चाहिये ।

२३–विचार के समय सब व्यवहार में जो न्याययुक्त, सर्व-हित-साधक सत्य बात स्थिर हो वह सब सभासदों पर प्रकाशित करके वही बात मानी जाय।

२४–जो मनुष्य इन नियमों के अनुकूल आचरण करने वाला, धर्मात्मा सदाचारी हो उसको उत्तम सभासदों में प्रविष्ट करना, इसके विपरीत को साधारण समाज में रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना। परन्तु यह काम पक्षपात से नहीं करना, किन्तु यह दोनों कार्य श्रेष्ठ सभासदों के विचार से ही किये जायं, अन्यथा नहीं।

२५–आर्यसमाज, आर्यविद्यालय, आर्यप्रकाश पत्र और आर्यसमाज का कोष इन चारों की रक्षा और उन्नति प्रधानादि सब सभासद् तन-मन धन से सदा किया करें ।

२६—जब तक नौकरी करने और कराने वाला आर्यसमाजस्थ मिले तब तक और की नौकरी न करे। और न किसी अन्य को नौकर रक्खे। वे दोनों परस्पर स्वामी—सेवक भाव से यथावत् बर्तें।

२७–जब विवाह, जन्म-मरण अथवा अन्य कोई दान करने का अवसर उपस्थित हो तब तब आर्यसमाज के निमित्त धन आदि दान किया करें । ऐसा धर्म का काम कोई दूसरा नहीं है, ऐसे समझ कर इसको कभी न भूलें ।

२८–इन नियमों में से यदि कोई नियम घटाया बढ़ाया जायगा तो सर्व श्रेष्ठ सभासदों के विचार ही से सबको विदित करके ऐसा करना होगा ।

व्याकरण में शास्त्रार्थ—आर्य भाषा में व्याख्यान देने, अथवा न जाने क्यों, पौराणिक पंडितों की यह धारणा थी कि महर्षि व्याकरण में सरलता से परास्त किये जा सकते हैं। बस फिर क्या था, व्याकरणसम्बन्धी शास्त्रार्थ का आह्वान दिया गया। महर्षि ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लिया। १० मार्च सन् १८७५ का दिन शास्त्रार्थ के लिए नियत हुआ। बड़ी चहल-पहल और धूम-धाम के मध्य शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ; सेठ—साहूकार अध्यापक-उपाध्याय विद्यार्थी-बैरिस्टर शिक्षित-अशिक्षित सभी उपस्थित थे। श्री आत्माराम बापूदल सभापति पद पर आसीन हुए।

पहले महर्षि से प्रश्न किये गये जिन का उन्होंने समुचित उत्तर दिया। खेमजी बालजी जोशी और इच्छाशंकर सुकुल जब महर्षि के उत्तरों पर कोई आक्षेप नहीं कर सके तो दो प्रश्न उन्होंने भी किये। पंडितों के उत्तरों पर महाभाष्य के आधार पर महर्षि ने जो आपत्तियां उपस्थित कीं, पंडितगण उनका कोई उत्तर न दे सके। इसी सभा में नियोग पर भी प्रश्नोत्तर हुए। महर्षि की योग्यता का पहले से कहीं अधिक व्यापक प्रभाव रहा।

१६ मार्च से व्याख्यानों की झड़ी लग गई। एक दिन महर्षि का व्याख्यान होता और दूसरे दिन शंका समाधान। महर्षि का प्रभाव प्रान्त के कोने-कोने में और उससे भी दूर तक फैलने लगा।

पंडित कमलनयन से शास्त्रार्थ—बम्बई में दूसरा शास्त्रार्थ पंडित कमलनयन से हुआ और वह अधिक प्रसिद्ध एवं रोचक रहा। उक्त पंडित वैष्णव संप्रदाय के प्रभाव शाली विद्वान् व गुरु थे। आर्यसमाज की स्थापना के पश्चात् बम्बई के वैष्णवों की चिंता बढ़ गई थी। श्री रामदास छबीलदास के चचा, देवी भक्त के नाम से बम्बई में प्रसिद्ध, श्री देवीप्रसाद ने कमलनयनाचार्य को बम्बई बुल-

पाया । देवी-भक्त सच्चे मन से मूर्तिभक्त थे—वैसे महर्षि से उन्हें द्वेषभाव न था—महर्षि भी इसी कारण उनका आदर करते थे। महर्षि इनकी मिष्टान्न आदि भेंट सहर्ष स्वीकार करते और दर्शकों में बांट देते थे। इन्हीं देवी भक्त ने कमलनयनाचार्य को बुला कर इस बात का निर्णय करने का निश्चय कर लिया। परन्तु कमलनयनाचार्य शास्त्रार्थ के लिए तैयार नहीं थे।

शास्त्रार्थ आरम्भ होने की कथा भी बड़ी मनोरंजक रही। कमलनयनाचार्य के एक मारवाड़ी शिष्य शिवनारायण बेनीचन्द और उस के आर्यसमाजी मित्र ठक्कर जीवदयाल में मूर्ति-पूजा के वेद सम्मत होने न होने पर चर्चा हुआ करती थी। अन्त में इन दोनों ने लिखित प्रतिज्ञा पत्र भर यह निश्चय किया पं० कमलनयनाचार्य और स्वामी दयानन्द में शास्त्रार्थ होकर जो पक्ष जीते उसका मत दोनों मित्र ग्रहण करें। १२ जून को फ्रामजी काऊसजी इन्स्टिट्यूट में शास्त्रार्थ करने का निश्चय भी इन दोनों ने अपने प्रतिज्ञापत्र में कर लिया। इस पर पं० कमलनयन बिगड़े तो बहुत—पर कहते क्या ? अब तो यह सारे वैष्णव सम्प्रदाय के मानापमान का प्रश्न हो गया। इस पर भी अन्त समय वे सभा में तब आए जब कि किसी ने धमकी दी कि यदि आप शास्त्रार्थ नहीं करोगे तो आर्य समाजी मुकद्दमा चलायेंगे।

शास्त्रार्थ के दिन २॥ बजे से ही सभास्थल भरने लगा। मंच पर एक मेज लगाकर वेद, वेदांग आदि १५० ग्रंथ रखे गए। दायीं ओर कमलनयनाचार्य और बाईं ओर ऋषि के लिए कुर्सी रखी गई। शास्त्रार्थ का विवरण लिखने वाले ८ लेखकों की कुर्सियां सामने थीं। सभा में राव बहादुर बेचरदास, अम्बाईदास, लक्ष्मीदास खेमजी, पंडित विष्णु परशुराम शास्त्री आदि अनेक गण्यमान्य, विद्वान् उपस्थित थे।

अडंगा नीति—विरोधियों की ओर से आरम्भ में अड़ंगा

नीति अपनाई गई । पहले तो कहा कोई अहिन्दू सभा में न रहे। एक बेचारे पारसी को सभा के बाहर किया गया। पंडित कमलनयनाचार्य ने कहा—श्रोतागण शास्त्रार्थ के परिणाम का निश्चय करने की योग्यता नहीं रखते। पण्डित मण्डली हो जो निश्चय कर सके। महर्षि से पूछा क्या आप अपनी ओर से कोई पण्डित लाये हैं। इस समय भी एक और अद्भुत घटना हुई। विष्णु परशुराम शास्त्री ने जो महर्षि के वेदांत की तीव्र आलोचना करते रहते थे—अपने आप को इस सेवा के लिये प्रस्तुत किया। महर्षि ने सरल चित्तता से स्वीकार भी कर लिया।

अब आचार्य क्या कहते ! बोले पण्डितों में से कोई किसी सम्प्रदाय का न हो ! भला यह कैसे संभव होता ! फिर आचार्य और शास्त्री में बातें हुईं। एक दूसरे की पढ़ाई पूछते रहे। महर्षि को यह कहना पड़ा कि आप अप्रासंगिक बातों में समय क्यों खोते हैं। महर्षि ने यहां तक कहा कि आप मूर्ति-पूजा का मण्डन नहीं करते तो हम उसका खण्डन ही करते हैं। बस फिर क्या था। आचार्य चुप-चाप सभा-स्थल से उठ कर चलते बने।

इसके पश्चात् महर्षि ने मूर्ति-पूजा को वेद के विरुद्ध सिद्ध करते हुए प्रभावशाली भाषण दिया। महर्षि के सन्मान-सत्कार के पश्चात् सभा विसर्जित हुई। आर्यसमाज और महर्षि का सिक्का जम गया।

माई भगवती—पंजाब प्रांत के होशियारपुर जिले में हरयाना नामक नगर की निवासिनी एक कुलीन लड़की तरुणावस्था में ही वैराग्यवती हो गई थी। वह नवीन वेदान्त के रंग में रंगी थी। उसका नाम भगवती था। इन दिनों 'सत्यार्थप्रकाश' छप चुका था-उसकी एक प्रति इस देवी के हस्तगत हुई। इसके पाठ से उसके वेदान्ती

विचारों में परिवर्तन हुआ। महर्षि के प्रति उसकी श्रद्धा प्रगाढ़ हो उठी। वह एक दिन अपने भाई के साथ महर्षि के दर्शनार्थ पहुँची। महर्षि ने व्याख्यान के पश्चात् उसे उपदेश दिया—'स्त्री-जाति में विद्या का बड़ा अभाव है—अपने प्रान्त में जाकर बहिनों में विद्या का प्रचार करो। महर्षि के इस आदेश का उन्होंने यथाशक्ति आमरण पालन किया।

दिनचर्या—बम्बई में महर्षि की दिनचर्या इस प्रकार थी:—ब्राह्ममुहूर्त में तीन बजे जागरण कर कुल्ला करके कुछ जलपान, पुनः शौच-स्नान से निवृत हो समाधिस्थ होना, सूर्योदय से प्रथम ही भ्रमणार्थ जाकर ६ बजे लौटना; २० मिनट तक विश्राम, पुनः दूध पीकर ११ बजे तक लेखन कार्य: पुनः स्नान और भोजन विश्राम और ४ बजे तक लेखन कार्य। ४ से १० बजे तक भेंट, शंका-समाधान, व्याख्यान आदि। रात्रि को केवल दूध पीते थे। ठीक दस बजे शयन। निद्रा इतनी वश में थी कि लेटते ही गहरी निद्रा में मग्न होजाते थे।

जिस दिन कोई बड़ा शास्त्रार्थ होना होता उस दिन प्रातः काल पानी के साथ ऋतु अनुसार सौंफ आदि फांक कर शौच को जाते और स्नान करके ध्यानावस्थित हो जाते—और दिनों की अपेक्षा उस दिन अधिक समय तक ध्यान करते थे।

मिताहार और मितव्यय—महर्षि को व्यय की परिमितता का भी पूरा ध्यान रहता था। रसोई में प्रत्येक वस्तु तोल कर दी जाती थी। एक दिन एक कर्मचारी ने कहा कि यह व्यवहार तो कृपणता का सूचक है, महर्षि ने कहा—मुझे इसकी चिन्ता नहीं; मिताहार और मितव्यय दुर्गुण नहीं, सद्गुण हैं।

पूना का निमन्त्रण व व्याख्यान—पूना के जज और बाद में बम्बई हाई कोर्ट के जज श्री महादेव गोविन्द रानाडे और महा-

देव मोरेश्वर कुण्टे के निमन्त्रण पर महर्षि पूना पधारे। यहां महर्षि विट्ठलपेन्ठ में पंच हौस के समीप शंकर सेठ के मकान में ठहरे। उनके व्याख्यान बुधवारपेन्ठ के भिड़े के बाड़े में और कैम्प में ईस्ट स्ट्रीट के मराठी स्कूल में हुए। पं० घासीराम लिखित जीवन चरित्र के अनुसार सब मिलाकर ५० व्याख्यान पूना में हुए—१५ नगर में और शेष कैम्प (छावनी) में। नगर में हुए १५ व्याख्यान पुस्तकाकार में प्रकाशित हो गये थे। व्याख्यानों का क्रम वही रहा—एक दिन व्याख्यान और दूसरे दिन शंकासमाधान। व्याख्यान शैली बड़ी आकर्षक थी—ध्वनि मधुर, धीर; एवं गंभीर। बीच-बीच में गाथा एवं दृष्टान्तों से मनोरंजन एवं व्यंग का पुट। व्याख्यानों की व्यवस्था नगर में श्री रानाडे और श्री कुन्ह ने की, छावनी में गंगाराम भाऊ आदि ने। १७ जुलाई को महर्षि ने अपना व्याख्यान संस्कृत में आरम्भ किया। लोग कहते थे कि महर्षि संस्कृत अच्छी नहीं जानते इसीलिए हिन्दी में बोलते हैं।

पौराणिक पंडितों का छल—महर्षि से शास्त्रार्थ के स्थान पर पौराणिक पंडित किस प्रकार छल कर रहे थे इसका इसका वर्णन उस समय के समाचार पत्रों की भाषा में इस प्रकार है:—१६ अगस्त १८७५ के 'इन्दु-प्रकाश' में लिखा था—'दयानन्द ने पूना आकर यह विज्ञापन दे दिया था कि वह किस-किस ग्रंथ को प्रामाणिक व किस किस को अप्रामाणिक मानते हैं। परन्तु आज तक कोई भी पण्डित उनके शास्त्रार्थ करने को अग्रसर नहीं हुआ। इसका कारण यह है कि पण्डित वेदज्ञ नहीं हैं; जिन ग्रन्थों को दयानन्द प्रामाणिक मानते हैं, उनको समझने की पण्डितों में अधिक शक्ति नहीं है। पण्डितों ने केवल यह समझ कर कि यदि वे चुप रहते हैं, तो सर्वसाधारण उन्हें मूर्ख समझेंगे और इससे उनकी आजीविका के मार्ग में बाधा पड़ेगी दयानन्द से शास्त्रार्थ करने का केवल विज्ञापन देदिया है और इसमें

ऐसे नियम और प्रतिबन्ध-निर्दिष्ट कर दिये हैं कि जिन्हें दयानन्द कभी स्वीकार न करेंगे। इसलिए इस प्रकार के विज्ञापन को सिवाय छल के और क्या कह सकते हैं।"

'हितेच्छु' (१८-८-१८७५) ने लिखा—"इस समय पूना समाज के पुरातन पूजक अंश (पौराणिक दल) में दयानन्द के कार्यों के कारण उतना ही आन्दोलन मचा हुआ है, जितना सात वर्ष पहले तब मचा था जब कि शंकेश्वर के शंकराचार्य के सभापतित्व में विधवा-विवाह के शास्त्रविहित होने के प्रश्न पर विचार करने के लिये सभा हुई थी। पूना के पत्र दयानन्द और पण्डितों की सभाओं के वर्णन से भरे हुए हैं। शास्त्रियों ने नोटिस के रूप में एक पत्र स्वामी जी को भेजा है, जिसमें वे नियम लिखे हैं जिनके अनुसार शास्त्री शास्त्रार्थ कर सकते हैं। यह पत्र स्वामी जी के पास एक असभ्य ढंग से भेजा गया था, अतः उन्होंने उस पर ध्यान नहीं दिया। परन्तु उन्होंने शास्त्रियों को सूचना दे दी है कि शास्त्रार्थ के जो नियम भी वे प्रस्तुत करें उनकी महादेव गोविन्द रानाडे और महादेव मोरेश्वर कुण्टे से स्वीकारी लेनी होगी। इसकी संभावना प्रतीत नहीं होती कि पूना के शास्त्री स्वामी जी के साथ खुले मैदान में शास्त्रयुद्ध करने का साहस करेंगे और यह प्रतीत होता है कि वह ओछी चालें ही चलते रहेंगे जिससे उनका शास्त्रार्थ न करने का मनोरथ पूर्ण हो।"

१५ अगस्त को विष्णु के मन्दिर में महर्षि के विरुद्ध हुई। सभा के परिणाम स्वरूप पण्डित रामदीक्षित आप्टे और पण्डित नारायण शास्त्री गोडबोले की ओर से शास्त्रार्थ का जो विज्ञापन प्रकाशित हुआ था उसके भीतर छिपे छल का उद्घाटन ऊपर के समाचार पत्रों के लेखों से भली भांति हो जाता है।

महर्षि के श्रावण शुक्ला ९ सं० १९३२ (१० अगस्त) को पूना

से श्री गोपालराव हरि को लिखे पत्र से इस समाचार की पुष्टि होती है—उसमें लिखा है कि 'यहां के पण्डित लोग सामने तो कोई भी नहीं आये किन्तु दूर से बड़-बड़ किया और करते भी हैं सो जानना।'

मिथ्या आरोप व भ्रांति का प्रसार—पण्डितों का छल तो असफल रहा। परन्तु महर्षि के व्याख्यानों से उत्पन्न आन्दोलन को दूसरी दिशा में मोड़ने के लिए पौराणिक दल ने दूसरे उपायों का अवलंबन लिया। अवकाश प्राप्त असिस्टैंट कमिश्नर श्रीनारायण भीकाजी जोगलकर की व्यवस्थापकता में रामशास्त्री और वासुदेवाचार्य के व्याख्यानों में महर्षि के व्याख्यानों का उत्तर देने का प्रयत्न किया गया। परन्तु इससे कार्य सिद्ध नहीं हुआ तो दूसरे छल प्रपंच पर उतर आये। २२ अगस्त की रात को किसी ने नगर की गणपति और अहल्या की मूर्तियां नालीमें फेंक दीं। पण्ढरपुरमें निबढोबा की मूर्ति टूट गई। इनके लिये ऋषि पर दोषारोप किया गया। यह भ्रम फैलाया गया कि महर्षि ने किसी व्याख्यान में रामचन्द्र जी को भड़वा कहा और यह कहा कि रामचन्द्रजी ने रावण को प्रसन्न करने के लिए स्वयं उस के साथ सीता जी को भेजा। और अन्त में प्रशासनतन्त्र को महर्षि के विरुद्ध करने के लिये कहा गया कि महर्षि के व्याख्यानों से सिपाही-विद्रोह के सरीखे दूसरे विद्रोह की आशंका है।

पूना में महर्षि का जुलूस—महर्षि ने पूना में लगभग तीन महीने रह कर जो क्रांति उत्पन्न की उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाशित करने के लिए श्री रानाडे प्रभृति नागरिकों ने उनका सम्मान करने और नगर तथा छावनी में उनका जुलूस निकालने की योजना बनाई। ५ सितम्बर रविवार का दिन इस कार्य के लिये नियत किया गया। इस दिन छावनी में महर्षि के व्याख्यान के पश्चात् इस जुलूस को निकालने की योजना थी। ३००) व्यय के लिये एकत्र किया गया।

सभा के लिए निमन्त्रण पत्र भेजे गये, मजिस्ट्रेट की आज्ञा लेकर हौदे समेत हाथी मंगवाया गया। उपद्रव की आशंका से पुलिस की व्यवस्था की गई। संवर्धना-सभा में महर्षि ने 'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः' वेद मन्त्र की सुन्दर व्याख्या की। पं० गंगाराम भाऊ भस्के और कई सज्जनों ने एक जोड़ा शाल, एक पगड़ी, एक रेशमी पीताम्बर और एक रेशमी चादर श्रद्धा पूर्वक भेंट की, पुष्प वर्षा हुई और उपस्थित लोगों में पान-सुपारी भेंट किये गये। इस सभा में नगर के चुने हुए १०० के लगभग प्रतिष्ठित व्यक्ति—जिसमें ईसाई, पारसी, मुसलमान, और यहूदी भी थे—सम्मिलित हुए। महर्षि ने भक्तों के असन्तोष का ध्यान रखते हुए ही यह परिच्छद लेना स्वीकार किया। परन्तु समारोहयात्रा के लिए प्रस्तुत हाथी पर सवार होना किसी भी प्रकार स्वीकृत न किया। वे सब के साथ पैदल ही चले। यात्रा के आरम्भ में ३००-४०० व्यक्ति थे—पीछे यह संख्या ३-४ हजार तक पहुँच गई।

महर्षि के इस सम्मान से विरोधियों की ईर्ष्याग्नि बुरी तरह भड़क उठी। उन्हें एक भद्दी शरारत सूझी। एक गधे को सजा कर उस पर गेरुए वस्त्र की झूल डाल दी। और लिख दिया—"गर्दभानन्द सरस्वती।" उसके आगे बाजा बजाते गर्दभानन्द की जय, दयानन्द गधे की जय' बोलते उसे बाजारों में ले चले। महर्षि का जुलूस ५ बजे सायंकाल छावनी से चलकर भवानी पेठ, गणेश पेठ, आदित्यवार पेठ, बुधवार पेठ से होते हुआ भिड़का बाड़े की ओर व्याख्यान-स्थल पर ७॥ बजे के लगभग मुड़ा। अन्धेरे के कारण मशालें जल गईं थी। दूसरी ओर से वह गर्दभदल भी आ पहुँचा। पुलिस ने यह धूर्तता देख गदहे को तो अपने अधिकार में ले लिया। वर्षा उस समय हो रही थी—मार्ग कीचड़ से भरा था। गर्दभदल वालों ने मशालें बुझा कर कीचड़, ईंटें, पत्थर और गोबर फेंकना आरम्भ कर दिया।

रात्रि के १० बजे तक उपद्रव चलता रहा। पुलिस ने शांति के लिए कोई कदम नहीं उठाया। अन्त में पुलिस सुपरिन्टेन्डेट पोर्टमैन और पुलिस इन्स्पैक्टर ट्रे ने १००-२०० सिपाहियों समेत आये। बड़ी कठिनता से उपद्रव शांत हुआ। सिपाही भी आहत हुए। इतने उपद्रव के पश्चात् भी पुलिस ने केवल एक साधारण व्यक्ति को गिरफ्तार किया। और इस गर्दभदल के १००० आदमी उपद्रव की समाप्ति के पश्चात् भी बुधवार पैठ में डटे खड़े रहे। 'श्रीमद्दयानन्द प्रकाश' में लिखा है कि महर्षि की इच्छानुसार रानाडे महोदय ने पुलिस को कोई गम्भीर कार्य करने से रोक दिया था। महर्षि और उनके साथी रानाडे महोदय इस अपमान से किंचित् भी विचलित नहीं हुए।

फिर व्याख्यान—शांति स्थापना के पश्चात् महर्षि का व्याख्यान हुआ। वे सदा की भांति निश्चिन्त एवं प्रसन्नवदन थे, स्वर में किंचित् भी कम्पन अथवा कातरता न थी। दुर्घटना होने पर भी श्रोतृवर्ग से व्याख्यानगृह भरा हुआ था। व्याख्यान के अन्त में कुण्टे और रानाडे महोदय ने नागरिकों की ओर से कृतज्ञता प्रकट करते हुए वेदादिग्रन्थों के भाष्य एवं प्रकाशन में सहायता देने के लिए २५०) रु० भेंट किये जो महर्षि ने सहर्ष स्वीकार किये। इस समय रात्रि के १२ बज गये थे। पुलिस इंसपेक्टर ने महर्षि से कहा कि रात्रि को वहीं विश्राम करें—बाहर जाने पर आक्रमण का भय है। परन्तु महर्षि ने कहा–रक्षा करना आपका कर्त्तव्य है, आप अपना कार्य करें—हम तो अपने ही निवास स्थान पर जावेंगे। विवश होकर पुलिस साथ में गई। इस समय भी विपक्षी दल ने महर्षि और पुलिस पर ईंटें फेंकी।

इस दंगे में केवल एक व्यक्ति पकड़ा गया, तीन को पीछे पहचाना गया। दो पर मुकद्दमा चला। एक का नाम गुन्नूबिनपण्डू और

दूसरे का गुन्नूबिनबिट्ठू था। दोनों को १७ सितम्बर को डब्ल्यू० आर० हैमिल्टन सिटी मैजिस्ट्रेट की अदालत से १९३ धारा के अन्तर्गत ६, ६ मास का सपरिश्रम कारावास और ५००), ५००) अर्थ दण्ड हुआ। जुर्माना न देने पर ३, ३, महीने का कारावास और धारा १४७ के अन्तर्गत ३, ३, महीने का कारावास पृथक् हुआ। इस अभियोग पर विपत्ती दल ने खूब डट कर पैरवी की और दिल खोल कर धन-व्यय किया।

मैजिस्ट्रेट ने अपने निर्णय में लिखा—"यह बात चाहे सुनने में कठोर लगे, मेरा विश्वास है कि सारी पुलिस ब्राह्मणों के प्रभाव में थी।"......"पुलिस ने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया और उनके ऐसा न करने के कारण स्पष्ट हैं। मैं इसे अपना कर्त्तव्य समझूंगा कि उसके व्यवहार को जिला मजिस्ट्रेट के नोटिस में लाऊं।" "मुझे बताया है कि उक्त लोगों (धर्मान्ध ब्राह्मणों) ने स्वामी जी से क्षमा प्रार्थना की जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया है और इस कारण मान-हानि और आघात पहुंचने का अभियोग जो ऊपर चलने वाला था, हटा लिया गया। इसलिये पुलिस को इन दो अकिंचनकर व्यक्तियों पर अभियोग चलाना पड़ा।"

इस निर्णय के विरुद्ध सैशनकोर्ट में अपील की गई। बम्बई के प्रसिद्ध बैरिस्टर मिस्टर ब्रैन्नसन ने पैरवी की। १९३ धारा के दण्ड से अभियुक्त छूट गये। हाईकोर्ट में निगरानी होने पर भी ८ दिसम्बर को १४७ धारा का दण्ड बहाल रहा।

इधर तो महर्षि ने घोर अपमान के पश्चात् भी अपराधियों के क्षमा मांगने पर क्षमा कर दिया, उधर पौराणिकदल ने कारावास से छूटने पर इन दोनों अभियुक्तों का जुलूस निकाला, कारावास के दिनों में उन्हें आर्थिक सहायता देते रहे और पीछे से १००)-१००) रु० पारितोषिक दिया और फिर नौकरी भी दिलाई।

प्रशासन-तन्त्र ने पौराणिक दल के नेता नारायण भीकाजी जोगले-कर से इस उपद्रव के कारण उत्तर भी मांगा था। देवेन्द्र बाबू ने इन्हीं महाशय से उपद्रव का कारण पूछा तो इन्होंने बताया कि यदि स्वामी जी केवल वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करते तो अनेक लोग उनके अनुयायी बन जाते। सुधारकदल के निमन्त्रण पर उन्होंने हिन्दुओं के देवी-देवताओं का जो खण्डन किया उससे जनता भड़क गई। इस कथन में कहां तक सच्चाई है, पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं। महर्षि का जीवन ही मूर्तिपूजा-खण्डन से आरम्भ हुआ, इसमें किसी से प्रेरणा की बात उनके लिए कहना सरासर हास्यापद है।

आर्यसमाज की स्थापना—विरोधियों ने सब कुछ किया पर शास्त्रार्थ के लिए खुले दिल से सामने नहीं आये। महर्षि की व्याख्यानमाला से सुधारकों को बल मिला और अन्त में *आर्य समाज की स्थापना भी हो गई*। आश्विन वदी २ शनिवार (१६ अक्तूबर) को बम्बई से जो पत्र महर्षि ने श्री गोपालराव हरि को लिखा था उस में लिखा है—आगे पूना और सातारा का वर्तमान (समाचार) वर्तमान पत्रों से सुन लिया होगा। एक नवीन बात यह है कि पूना में आर्य-समाज (का) स्थापन हो गया है। आगे आर्यसमाज की स्थापनार्थ दो सभा पूना में हुई थी। सो तो समाचार पत्रों से जाना होगा। परन्तु हम सातारे से आये तब यह निश्चित हुआ कि महादेव गोविंद रानाडे प्रधान, केशवराव गोड़बोले मन्त्री। जितने प्रार्थना समाज के सभासद् थे वे सब और अन्य बाबा गोकुले तथा काशीनाथ गाडगिल एवं गंगाराम भाऊ आदि लस्करस्थ (पूना छावनी के निवासी) ६० वा ७० सब सभासद् हुए हैं। और अन्य भी बहुत होने वाले हैं तथा सतारे से भी कल्याणराव खजांची हेडमास्टर तथा कृष्णराव विट्ठल विंचुर कर जज आदि सभी उसी वक्त मेरे सामने आरम्भ करने वाले

थे। परन्तु हमने कहा कि शीघ्रता मत करो। सो कुछ दिन के पीछे करने वाले हैं।"

हां अब तक के लिखे कुछ जीवनचरित्रों की एक न्यूनता की ओर ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक है। पं० लेखराम जी कृत उर्दू जीवन चरित्र तथा 'श्रीमद्दयानन्द प्रकाश' में महर्षि के सातारा जाने का उल्लेख नहीं है। पं० घासीराम जी संकलित जीवन चरित्र में सातारा से उनकी वापसी की तारीख २३ अक्तूबर लिखी है। परन्तु ऊपर उद्धृत किये पत्र (देखो ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' सम्पादक पं० भगवद्दत्त बी० ए० पृष्ठ ३५, पत्र संख्या ११) से स्पष्ट है कि (१) इस पत्र के लिखने की तारीख १६ अक्तूबर को महर्षि बम्बई में थे (२) वे पूना से सतारा और सतारा से फिर लौट कर पूना होते हुए बम्बई आये थे। (३) इन दिनों सातारा में तो आर्यसमाज की स्थापना नहीं हुई थी—परन्तु सातारा से लौटते समय पूना में आर्य समाज की स्थापना होगई थी। पं० घासीराम जी द्वारा संकलित जीवन चरित्र में यह भी उल्लेख है कि पूना का आर्य-समाज देर तक नहीं चला।

सतारा—सितम्बर १८७५ में महर्षि सतारा पहुँचे। श्रीकल्याण राम, सीताराम चित्रे तथा श्रीयुत राजे ने यहां उनके निवास आदि का प्रबन्ध किया। व्याख्यान यहां कोई न हुआ, परन्तु सत्संग के लिये अन्य महानुभावों से धर्मचर्चा होती रही।

शास्त्रार्थ के लिए भी चर्चा अवश्य हुई, परन्तु अध्यक्ष का निश्चय न होने से शास्त्रार्थ न हो सका। दीवान बाड़े में कुछ प्रतिष्ठित नाग-रिक और दिग्गज पण्डित एकत्र हुए—वेद मूर्ति अनन्ताचार्य, वेदज्ञ गजेन्द्र मोरकर, राम शास्त्री, गाडबोले, भाऊजी दीक्षित चिपलूण कर और अनन्त शास्त्री चिपलूणकर। इस सभा में महर्षि को शास्त्रार्थ के

आह्वान के लिए विज्ञापनपत्र प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। इस में यह शर्त थी कि मध्यस्थ का नियत करना अनिवार्य है। महर्षि ने इसे स्वीकृत न किया कारण कि सर्वसम्मत मध्यस्थ मिलना अशक्य था।

सतारा से लौट कर महर्षि पूना आये और पूना से तुरन्त बम्बई चले आये। बम्बई स्टेशन पर लगभग ५०० भक्तों ने आप का स्वागत किया। १६ अक्तूबर के उन के एक पत्र से ज्ञात होता है कि वे उस समय बम्बई थे। बम्बई समाज ने इस समय वेदभाष्य के लिए ५ हजार रुपया एकत्र कर लिया था और उस निधि में २५ हजार रुपये तक एकत्र होने की आशा थी। ३० अक्टूबर सन् १८७५ को "आर्यों का नये वर्ष का प्रथम दिवस" विषय पर महर्षि का एक व्याख्यान हुआ। इसके पश्चात् कुछ समय और बम्बई में रह कर वे बड़ौदा की ओर चल पड़े।

बड़ौदा में व्याख्यानमाला—सर टी. माधवराव ने महर्षि के आतिथ्य-सत्कार का प्रबन्ध राज्य की ओर से किया। राव बहादुर गोपाल राव हरिदेश मुख जज के पुत्र रावबहादुर रामचन्द्र गोपाल देशमुख ने भी इस आतिथ्य में पूरा सहयोग दिया।

महर्षि का निवास गोविन्दराम रोडिया की धर्मशाला में था। यहीं पर एक भाग में उन के व्याख्यान होने लगे। पहला व्याख्यान देशोन्नति और दूसरा वेदाधिकार पर हुआ। जब महर्षि दूसरे व्याख्यान के प्रारम्भ में वेदमन्त्र का उच्चारण करने लगे तो उपस्थित शास्त्री वृन्द कानों में ऊंगलियां देकर कोलाहल करने लगा। उन की धारणा थी कि शूद्रों और यवनों के सामने मन्त्रोच्चारण निषिद्ध है। उपस्थित भद्र पुरुषों—मणि भाई यश भाई, रावबहादुर गजानन्दविट्ठल आदि द्वारा समझाने पर भी जब कोलाहल शान्त न हुआ तो व्याख्यान रोक-

कर शास्त्रार्थ करने का ही निश्चय हुआ। और यह शास्त्रार्थ पंडितों के आग्रह पर हुआ भी संस्कृत में ही।

पंडित यज्ञेश्वर से महर्षि ने प्रश्न किया ,भू' धातु के लिंग लकारों का प्रयोग कैसे होता है...आदि आध घन्टे में ही पंडित परास्त हो गये; अप्पय शास्त्री से न्यायशास्त्र पर विचार हुआ। वे भी थोड़ी ही देर बोल पाये। बीच-बीच में महर्षि इन की व्याकरणसम्बन्धी अशुद्धियों की ओर ध्यान दिलाते जाते थे।

तीसरा व्याख्यान अधिक तय्यारी के साथ केदारेश्वर के मन्दिर में राज-धर्म विषय पर हुआ। इस में राज कर्मचारी, वकील और प्रतिष्ठित नागरिक बड़ी संख्या में उपस्थित थे—स्वयं राज्य के दीवान सर टी० माधवराव भी आये। महर्षि ने इस व्याख्यान में राजधर्म की इतनी सुन्दर व्याख्या की कि दीवान ने व्याख्यान की समाप्ति पर महर्षि को दण्डवत् प्रणाम कर निवेदन किया—"महाराज! आप राजनीति में हम से भी सौ गुना निपुण हैं।" महर्षि ने इस व्याख्यान में राजा, अमात्य और प्रजा के सम्बन्धों एवं कर्त्तव्यों पर प्रकाश डाला ही, राजाओं के ब्रह्मचर्य-पालन पर विशेष बल दिया। बाल-विवाह के निषेध के लिए कानून बनाने का परामर्श दिया और शिक्षा को भी राज की ओर से अनिवार्य कर देने की बात उठाई। महर्षि ने कहा—यदि भारतवासी योग्य हो जावेंगे तो विदेशी स्वयं उन्हें शासनकार्य संभाल अपने देश को चल देंगे।

पंडितों को जीविका-भय—यहां के पंडितों में महर्षि के प्रचार से जीविका जाने का भय उत्पन्न हो गया था। बड़ौदा में प्रतिवर्ष श्रावण मास में पूना, नासिक, सूरत आदि के ब्राह्मण 'वर्षाशन' लेने के लिए जाया करते थे। इन ब्राह्मणों को एक परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर राज्यकोष से वार्षिक सहायता देने का नियम था—इसे

वर्षाशन देना कहते थे; यह ४०) से १००) वार्षिक तक होता था। फिर, राजकर्मचारियोंसे महर्षि का सम्पर्क पंडित की आशंका का महान् कारण बना हुआ था। राज महिषी यमुनाबाई नेमहर्षि के दर्शन की उत्कट अभिलाषा प्रकट की और यद्यपि महर्षि ने उसे स्वीकार नहीं किया तो भी पंडितों को यह डर रहा कि कहीं यमुनाबाई महर्षि के कार्य में सहायता न देने लगे। वे यमुनाबाई के पास यह प्रार्थना लेकर गये कि दयानन्द नास्तिक है उसका मुख देखना उचित नहीं। इसी प्रकार की प्रार्थना उन्होंने रावबहादुर गजानन्द से भी की। श्री गजानन्द ने उन से स्पष्ट कह दिया कि ऐसा अनुरोध लेकर हमारे पास फिर न आना, स्वामीदयानन्द शास्त्रार्थ के लिए उद्यत हैं; आप उन्हें शास्त्रार्थ में परास्त करें।

निःस्पृहता की पराकाष्ठा—महर्षि दयानन्द ने काशी-शास्त्रार्थ के पश्चात् परोपकार के लिये द्रव्य की भेंट लेना आरम्भ कर दिया था। एक दिन एक पंडित ने पूछा—शास्त्र के अनुसार यतियों को स्वर्ण देना निषिद्ध है फिर आप धन क्यों लेते हैं। महर्षि ने पहले तो व्यंग्य में पूछा कि स्वर्ण देना निषिद्ध है तो क्या रत्नादि देने चाहिएं? और फिर उसको समझाया कि परोपकार में व्यय करने के लिये संन्यासी को धन देना पाप नहीं है। महर्षि ने कहा कि हम भी जब एक कौपीन लगाकर गंगा तट पर घूमते थे तो किसी से कुछ न लेते थे।

परन्तु महर्षि परोपकार के लिये दान लेते हुए भी अपने सिद्धान्त की रक्षा में अत्यन्त सावधान रहते थे। गोविन्द लिछाबाई देसाई के जामाता महर्षि के लेखक पंडित कृष्णराम के परिचित थे। इन्होंने कृष्णराम से कहा कि यदि मेरे श्वसुर के मुकदमे का फैसला स्वामीजी दीवान साहब से कहकर करादें तो मैं वेदभाष्य की सहायता के लिये

२०००) दूंगा। पंडित कृष्णराम ने जब यह बात महर्षि से कही तो उन्होंने उसको बहुत फटकारा और कहा कि रुपये का प्रलोभन दिखा-कर ऐसा प्रस्ताव हमसे फिर कभी मत करना। इस मामले में गोविन्द-राम को न्याय दिलाने में तो सहायता दी परन्तु २००० रुपये की बड़ी धन राशि की ओर आंख उठाकर भी न देखा।

इसी प्रकार कथावार्ता के पश्चात् भेंट चढ़ाने की प्रथा को वे अनिष्ट-कारी गुरूडम का अंग अतएव निषिद्ध समझते थे। इसीलिए एक दिन जब दीवान माधवराव ने घर पर कथावार्ता के पश्चात् विदाई के समय एक सहस्र मुद्रा उन्हें भेंट करनी चाही तो महर्षि ने स्पष्ट कहा "हम बल्लभाचारियों के समान दुकानदार नहीं हैं।" यह थी उनकी स्पृहणीय निःस्पृहता।

महर्षि जब बड़ौदे में थे तो 'संस्कारविधि' का लिखना समाप्त कर चुके थे। बड़ौदा से महर्षि राव बहादुर गोपाल राव हरि देश-मुख से मिलने के लिये अहमदाबाद गये और वहां से बम्बई लौट आये।

बम्बई में लौटे—मार्च सन् १८७६ में महर्षि बंबई लौट आये थे। इस बार दो मास और रहकर बंबई प्रांत में धर्म-प्रचार के लगभग १८ मास पूर्ण कर लिए और वे फिर इन्दौर होते हुए उत्तर-भारत की ओर प्रस्थान कर गये।

१ मार्च को श्री गोविन्द विष्णु के प्राइवेट इंग्लिश स्कूल में वेदों की श्रेष्ठता और पवित्रता पर महर्षि का सारगर्भित व्याख्यान हुआ। इस व्याख्यान में अन्य गण्यमान्य सज्जनों में संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर मोनियर विलियम्स व कलक्टर मि० शेफर्ड भी मिमंत्रित थे? संस्कृत बहुल भाषा में होने से प्रोफेसर महोदय भी व्याख्यान प्रायः

समझते रहे । व्याख्यान के पश्चात् भी विलियम्स साहब महर्षि से संस्कृत में बातें करते रहे । प्रोफेसर ने महर्षि की विद्वत्ता व भाषण-शैली की बड़ी प्रशंसा की । १६ मार्च को हरिश्चन्द्र चिन्तामणि हाल में दूसरा तथा २१ मार्च को टाउन हाल में तीसरा व्याख्यान, हुआ ।

शास्त्रार्थ का अन्तिम प्रयत्न--पौराणिकदल महर्षि के इस धुंआधार प्रचार से किंकर्त्तव्य विमूढ सा हो गया था । शास्त्रार्थ के लिए कोई प्रसिद्ध पंडित तो मिलता नहीं था-उन्हें भय होता कि हार गये तो मान-सम्मान मिट्टी में मिल जायगा । अतएव कोई भी पंडित तय्यार होता तो उसी को आगे करने के इच्छुक रहते । इन्हीं दिनों नदिया के पण्डित रामलाल ज्योतिषी वर्ष फल आदि बनाने उधर आये । मारवाड़ी उनके गले पड़ गये । विवश होकर नदिया और अपना नाम रखने के लिये उसे शास्त्रार्थ की स्वीकृति देनी पड़ी । २७ मार्च को भाई जीवनजी के हाल में शास्त्रार्थ हुआ । श्री झाऊजी शास्त्री मध्यस्थ रहे । शास्त्रार्थ शांति से हुआ ।

इस शास्त्रार्थ के अन्त में पण्डित रामलाल ने स्पष्टतः स्वीकार कर लिया कि हम मूर्तिपूजा को वेद से सिद्ध नहीं कर सकते । इस शास्त्रार्थ का श्रोताओं पर अमिट प्रभाव पड़ा ।

जीवनदयाल नेरकादयाल का विज्ञापन—४ अप्रैल को इस नाम के महोदय ने पत्रों में एक विज्ञापन दिया —"१८ मास से पण्डित दयानन्द बम्बई पधारे हैं और निरन्तर मूर्तिपूजा का खण्डन कर रहे है, पण्डित गट्टूलाल, पं० कमलनयनाचार्य और पं० रामलाल कोई भी मूर्तिपूजा को वेदविहित सिद्ध नहीं कर सके । अतः मैं यह निश्चय करके कि मूर्तिपूजा वेदानुमोदित नहीं है' आर्यसमाज का सभासद् हुआ हूं । फिर भी यदि कोई पण्डित मूर्तिपूजा की सिद्धि करने वाले किसी वेद मन्त्रों का अर्थ सहित पता देगा तो मैं उसे १२५) रु०

दक्षिणा दूंगा।''—यह विज्ञापन महर्षि के १८ महीने के कार्य की स्वयं आलोचना है।

बम्बई प्रांत के कार्य पर एक दृष्टि—बम्बई प्रांत में महर्षि की प्रचार यात्रा से क्या परिवर्तन हुआ इसका विवरण कलकत्ता के 'बङ्ग दर्शन' में प्रकाशित एक लेख में वर्णित किया गया था। इसका सार भाग निम्न प्रकार है:—

"बम्बई और पूना प्रभृति स्थानों में कितने ही लोग आर्य समाज में प्रविष्ट हो गए।—जहां तहां दयानन्द की ही चर्चा है। दयानन्द की वक्तृत्वशक्ति, दयानन्द का सामाजिक मन, दयानन्द की नवीन प्रकार की वेद व्याख्या पर सर्वत्र आलोचना होती है। दयानन्द सबल और दीर्घकाय हैं— दयानन्द ने एक बार मुझ से कहा था कि इस समय उनका कार्य दो प्रकार का है एक तो स्थान-स्थान पर आर्यसमाज स्थापित करना और दूसरा वेद का एक नूतन भाष्य लिखना। बम्बई आर्यसमाज में मैंने देखा—अनेक भद्र लोग एकत्र होकर धार्मिक और सामाजिक विषयों पर वक्तृता और तर्क वितर्क कर रहे थे।"

यह है महर्षि द्वारा आरंभ किये गये संगठन का प्रारम्भिक विवरण। यहां से महर्षि अप्रैल महीने में इन्दौर चले गए।

इन्दौर यात्रा का वर्णन पण्डित घासीराम जी संकलित जीवन चरित्र में ही है। ३ मार्च सन् १८७६ के "टाइम्स आव इन्डिया' में इन्दौर से ३० अप्रैल का एक संवाद छपा था। कि स्वामी जी आज (३० अप्रैल) को सायंकाल बनारस जाने वाले हैं। यहां उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। परन्तु लोग उनके आगमन से विचार करने लगे हैं।" यह संवाद देते हुए, आर्यसमाज की स्थापना का उद्देश्य ही सम्भवतः संवाददाता के मन में हो। यहां भी व्याख्यान हुए; नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति, राजकर्मचारी भी इन व्याख्यानों में

उपस्थित हुए। स्वयं महाराजा तुकोजीराव एक दिन पधारे। नरेश घोर शिवभक्त थे। परन्तु महर्षि के आदर-सत्कार में कोई त्रुटि नहीं रखी। विदाई के समय नरेश ने दुशाला आदि भेंट दिए और पूछा—महाराज! क्या यह मूर्तिपूजा नहीं है? महर्षि ने निःसंकोच कहा—मैं ऐसी मूर्तिपूजा का विरोधी नहीं, मृत-व्यक्तियों के उद्देश्य से की गई मूर्तिपूजा का निषेध करता हूँ। काशी तक का रेल भाड़ा और वेदभाष्य की ५० प्रतिशत क्रय करने का वचन भी नरेश ने दिया था। महर्षि ने शाल लेने में आपत्ति प्रकट की थी।

युक्त प्रदेश में फिर एक वर्ष

ज्येष्ठ कृष्ण १ सम्वत् १९३३ वि० (९ मई सन् १८७६) को महर्षि फर्रुखाबाद पहुँच कर श्री० जगन्नाथ के विश्रान्त घाट पर उतरे।

पाठशाला तोड़नी पड़ी—इस प्रवास में दो प्रसिद्ध घटनाओं का उल्लेख मिलता है। पाठशाला की अवस्था ठीक नहीं थी, विद्यार्थी और अध्यापकों में रूढ़ियों को छोड़ने का साहस नहीं था। अतएव पाठशाला तोड़दी गई। जो धन पाठशाला के नाम एकत्रित था वह दानियों और संचालकों की अनुमति से वेदभाष्य की सहायता में लगा दिया गया।

तोप का भी भय नहीं—दूसरी उल्लेखनीय घटना पादरी लूकस से भेंट की है। इसके साथ मोहनलाल नाम का एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण था, जो कुछ दिन पहले ही ईसाई हुआ था। इस भेंट में महर्षि ने पादरी लूकस को बताया था कि सत्य वेदोक्त धर्म तो यही बताता है कि ईश्वर के अवलंबन से मोक्ष होता है; ईसा पर विश्वास करने से नहीं। महाभारत के अनुसार शुक्राचार्य ने मृतसंजीविनी विद्या के द्वारा मृतपुरुषों को जिलाया था; परन्तु केवल इस आधार पर हम

उन्हें ईश्वर का अवतार अथवा ईश्वर का भेजा नहीं मान सकते। यदि उत्तम उपदेश देने के आधार पर ईश्वर को परित्राता माने तो कृष्ण उनसे बढ़ कर परित्राता हैः भगवद्गीता में बाइबल से कई गुणा अधिक अच्छे उपदेश हैं। और शंकराचार्य के कर्म ईसा से भी अधिक उत्तम कर्म हैं—इस आधार पर मानें तो शंकराचार्य भी परित्राता हैं।

इन पादरी जे. जे. लूकस से देवेन्द्र बाबू की भेंट हुई थी। महर्षि के संबन्ध में अपने अनुभवों का उल्लेख करते हुए पादरी लूकस ने बताया कि मूर्तिपूजा के विरुद्ध वे बड़े बल और विश्वास के साथ बोलते थे; मेरे पूछने पर उन्हों ने कहा था कि तोप के मुंह के सम्मुख रख कर भी यदि कोई मुझ से पूछे तो मैं मूर्ति पूजा का खण्डन नहीं छोड़ूंगा—तोप से चाहे कोई क्यों न उड़ा दे।

इन दिनों लाला जगन्नाथ के घर पर ही, धर्म का वास्तविक स्वरूप, ईसाई मत, मूर्तिपूजा और अवतारवाद; इन चार विषयों पर व्याख्यान हुए।

१९ दिन पश्चात् ज्येष्ठ शुक्ला १ को चल कर ज्येष्ठ शुक्ला ४ को महर्षि काशी पहुँचे और उत्तमगिरि गुसाईं के बाग में ठहरे। यहां लगभग पौने तीन महीने ठहरे। इस बार वे वेदभाष्य और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका की तय्यारी—लेखन छपाई आदि के प्रबन्ध में व्यस्त रहे। वेदभाष्य के कार्य में योग देने के लिए पण्डित भीमसेन को फरुखाबाद से काशी बुलवाया। एक मास तक ग्रन्थसंग्रह होता रहा और तब वेदभाष्य की रचना आरंभ हुई। पण्डित हेमचन्द्र चक्रवर्ती ने नेपाल जाते हुए यहां महर्षि के दर्शन किए। महर्षि ने उन्हें योग दर्शन (व्यास भाष्य) और महाभाष्य की प्रतियां प्रदान कीं।

आषाढ़ बदी ९ शुक्रवार को महर्षि ने यहां से जो पत्र लक्ष्मण

शास्त्री, पूर्णानन्द और नाथूराम आदि के नाम बंबई भेजा था, उसमें आर्याभिविनय की ५०० प्रतियां पण्डित सुन्दरलाल को प्रयाग भेजने के लिए लिखा है। इस पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि बंबई निवासी सहयोगी महर्षि के पत्रों के उत्तर और तदनुसार आज्ञापालन में बहुत सुस्ती से काम लेते थे। महर्षि ने इस संबंध में यह चौथे व्यक्ति को चिट्ठी भेजी थी और लिखा था कि इतना काम शीघ्र करना, क्योंकि इस देश में उसके ग्राहक बहुत हैं—इससे विलंब करने में हानि है।

भाद्रपद कृष्णा ११ (१४ अगस्त) को काशी से चल कर १५ अगस्त से १७ अगस्त तक ऋषि जौनपुर में रहे। पं० भीमसेन और एक रसोइया साथ में थे। व्याख्यान कोई नहीं हुआ; उपदेश देते रहे।

अयोध्या में वेदभाष्य का आरम्भ—भाद्रपद कृष्ण १४ को महर्षि अयोध्या पहुँच कर चौधरी गुरुचरणलाल के मन्दिर में उतरे। यहीं भाद्रपद शुक्ला १ से वेदभाष्य अर्थात् ऋग्वेदादि भाष्य-भूमिका का लेखन-कार्य आरम्भ किया।

शास्त्रार्थ-चर्चा—महर्षि ने यहां शंकासमाधान के लिए विज्ञापन किया। अतएव त्रिलोकीलाल रईस के आग्रह पर पंडितों और नगर के वैरागियों ने शास्त्रार्थ की चर्चा चलाई। परन्तु वैरागी चाहते थे कि महर्षि, अयोध्या नगर में, जहां वैरागियों की संख्या अधिक है, पहुँच कर शास्त्रार्थ करें। वह वस्तुतः शास्त्रार्थ नहीं, शस्त्र-प्रयोग करना चाहते थे। महर्षि इस बात को ताड़ गये और उन्होंने सरयू बाग में ही शास्त्रार्थ होने पर बल दिया। परिणाम यह हुआ कि शास्त्रार्थ नहीं हो सका।

यहां के एक पंडित श्रीहर्ष का भी महर्षि से संसर्ग रहा था। बा० देवेन्द्रनाथ के पूछने पर उक्त पण्डित ने अपनी बहुत बड़ाई की कि मैंने दयानन्द को हरा दिया था! वस्तुतः इनका कोई शास्त्रार्थ महर्षि से

नहीं हुआ; यहां महर्षि १ मास ६ दिन रहे।

आश्विन शुक्ला ६ (२६ सितम्बर) को महर्षि ने लखनऊ पहुँच कर हुसैनाबाद में स० विक्रमसिंह अहलूवालिया की कोठी में डेरा लगाया। लगभग ५ सप्ताह के पश्चात् वे यहां से शाहजहांपुर की ओर रवाना हुए।

विदेश जाने की इच्छा ?—लखनऊ में महर्षि एक बंगाली वनमालीबाबू से अंग्रेजी पढ़ा करते थे। सम्भवतः उनका विचार विदेश में जा प्रचार करने का भी हो। १८ अक्तूबर सन् १८७६ के 'विहार बन्धु' पटना में प्रकाशित एक संवाद में बताया गया है कि पण्डित दयानन्द सरस्वती विलायत जाना चाहते हैं।...अथवा जैसा कि आगे वर्णन है कि वेदों के मैक्समूलर आदि कृत अंग्रेजी भाष्यों को वे वनमाली बाबू से सुना करते थे। सम्भवतः वे अब इन्हें स्वयं पढ़ने और समझ सकने योग्य अंग्रेजी भाषा का अध्ययन करते हों!

महत्वपूर्ण प्रश्नोत्तर—यहां ३० सितम्बर को एक व्याख्यान 'ईश्वर की एकता' विषय पर छोटेलाल रोटीवाला के बाग में हुआ। इसमें आपने ब्राह्मसमाज के ईश्वर की एकता सम्बन्धी विचारों की प्रशंसा की थी। लाला ब्रजलाल की महर्षि से प्रश्नोत्तर रूप में धर्म-चर्चा भी हुई थी।

'आलम्भन' का अर्थ स्पर्श—एक दिन यहां महर्षि ने बताया कि पूर्व मीमांसा के सूत्रों में आलम्भन का अर्थ स्पर्श ही है, भाष्यकारों ने जो यहां 'वध' अर्थ लिया है, वह अप्रासंगिक है। वेदों के एक एक मंत्र पर पूर्ण विचार किया है, कोई भी बात युक्ति के विरुद्ध नहीं दिखाई देती।

शाहजहांपुर में ५ दिन—१ नवम्बर को यहां पधारे तो जिस बाग में गये वहां मन्दिर होने के कारण पौराणिकों ने ठहरने में

आपत्ति की—अतएव दूसरे स्थान पर ठहरे। व्याख्यान कोई नहीं हुआ। ऋग्वेदादि भाष्य को लिखाने में व्यस्त रहे।

बरेली में भी व्याख्यान न हो सके—कार्तिक शुक्ला १५ को महर्षि बरेली पधारे। ला० लक्ष्मीनारायण खजान्ची ने आपका आतिथ्य किया। उन्हीं की कोठी बेगमबाग में महर्षि उतरे और व्याख्यान देने लगे। व्याख्यानों की धूम मच गई। महाजन सेठ और छात्र तथा अध्यापकों ने इनमें बहुत रुचि दिखाई। परन्तु ३-४ व्याख्यानों के पश्चात् पण्डितों और पुजारियों ने सेठ के पास अनुरोध भेजा कि नास्तिक दयानन्द को व्याख्यान का अवसर न दें। खजांची के पास सीधे उनकी दाल न गली तो घर की भोली स्त्रियों को बहकाया गया। खजांची महोदय ने स्त्रियों के आगे घुटने टेक दिये। महर्षि से विनती की। उन्होंने कुछ सोच कर व्याख्यान बन्द कर दिये और वेदभाष्य में अधिक दत्तचित्त हो गये।

अंगद शास्त्री को पीलीभीत से बुलाकर शास्त्रार्थ की चर्चा भी की गई। महर्षि तय्यार हो गये। परन्तु समय पर अंगद शास्त्री ५००० पुरुषों की उजड्ड-उपद्रवियों से भरी भीड़ लेकर कोठी पर आधमके। सेठ लक्ष्मीनारायण ने उपद्रव की आशंका से इस भीड़ को बाग में नहीं घुसने दिया। शास्त्रार्थ नहीं हुआ। मूर्ख मण्डली में यह प्रसिद्ध किया गया कि स्वामीजी शास्त्रार्थ से टल गये।

सेठ लक्ष्मीनारायण ने वेद भाष्य की सहायतार्थ २००) रु० दिये।

मुरादाबाद—बरेली से महर्षि मुरादाबाद आकर राजा जयकिशनदास की कोठी में ठहरे। यहां सायंकाल व्याख्यान होने लगे। व्याख्यानों के पश्चात् शंकासमाधान का क्रम रात्रि के १०-११ बजे तक चलता रहता था।

पार्कर पादरी से शास्त्रार्थ—पंडितों में से तो कोई शास्त्रार्थ

के लिए नहीं आया। हां, पादरी डब्ल्यू पार्कर व उसके साथी मिस्टर बेली व रामचन्द्र से शास्त्रार्थ अवश्य हुआ। इसका कोई रिकार्ड नहीं रखा गया। महर्षि ने सिद्ध कर दिया कि किसी मनुष्य को ईश्वर मानना तथा उनके द्वारा मुक्ति की आशा रखना मूर्ति पूजा से भी बुरा है।

मुंशी इन्द्रमणि और इनके शिष्य ला० जगन्नाथदास यहीं, मुरादाबाद, के निवासी थे। इन्होंने इस्लाम के खण्डन में साहित्य लिख कर प्रकाशित किया था। ये अलीगढ़ में महर्षि से मिले थे। आगे चल कर आर्यसमाज के इतिहास में लोभवश कुख्यात भी हुए।

मुरादाबाद के साहू श्यामसुन्दर का भोजन महर्षि ने इस लिए स्वीकार न किया था कि वे दुराचारी थे। कुन्दरकी जि० मुरादाबाद के रईस रामदयालसिंह ने महर्षि के उपदेश से सुरापान छोड़ दिया और मरण पर्यन्त आर्यधर्म का पालन करते रहे।

महाशय बख्शीराम के बहुत पूछने पर योग के साधन के लिए व्याहृति-पूर्वक गायत्री मंत्र का अभ्यास करने का उपदेश दिया—जिस से उन्हें शान्ति-लाभ हुआ।

मुरादाबाद से बरेली और कर्णवास होते हुए महर्षि दिसम्बर में छलेसर जाने के लिए अतरौली स्टेशन पर उतरे। ठाकुर मुकुन्दसिंह ने यहां आप का स्वागत किया।

यहां की पाठशाला की अवस्था ठीक न थी। पंडित कुमारसेन के पश्चात् सं० १९३१ में पं० दिनेशराम अध्यापक हो गये थे। विद्यार्थी वैदिक ग्रन्थों को पढ़ कर भी लोभवश पाखण्ड का आश्रय ले लेते थे। आगे चलकर सं०१९३४ में महर्षि ने इस पाठशाला को स्वयं बन्द कर दिया।

रुहेलखण्ड की प्रथम यात्रा पर कुछ विचार— इस

प्रकार हम देखते हैं कि महर्षि की पहली रुहेलखण्ड यात्रा शास्त्रार्थ और खण्डन-मण्डन के उस उत्साहपूर्ण कोलाहल से वैसी गुंजायमान नहीं रही। मतभेद के कारण उनके आतिथ्य अथवा रहन-सहन की सुविधाएं मिलने में बाधा तो इसी यात्रा में अनुभव करनी पड़ीं। प्रतीत होता कि वेदभाष्य की रचना में अधिक दत्तचित्तता तथा व्यापृतता के कारण उन्होंने इधर कुछ ढील भी दे दी हो। रुहेलखण्ड में ईसाई पादरियों से उन की धर्म-चर्चा विशेष रही।

साथ ही हम एक पत्र लखनऊ के रामाधर बाजपेई के नाम महर्षि का लिखा पाते हैं। यह अंग्रेजी में बरेली से १८ नवम्बर को लिखा गया है। इस पत्र से ज्ञात होता है कि शाहजहांपुर और बरेली में महर्षि ने कुछ महत्वपूर्ण कार्य भी किया था। इसके विषय में वे कहते हैं "गंगेशस्वामी ने बताया ही होगा शेष मेरे बाबू से सुन लेना।" गंगेशस्वामी एक वृद्ध, सूक्ष्मकाय, संन्यासी था, इसकी एक पाठशाला लखनऊ में थी। महर्षि का इनसे प्रेम हो गया था। उन के देहावसान के दो वर्ष पश्चात् तक ये जीवित थे। इस पत्र में वर्णित बाबू से वनमालीसिंह का अभिप्राय प्रतीत होता है।

दिल्ली दरबार—इन दिनों लार्ड लिटन के दिल्ली दरबार की चर्चा बड़े जोरों पर थी। महर्षि ने इस दरबार में उपस्थित होने की इच्छा प्रकट की। भक्त ठाकुर मुकुन्दसिंह ने महर्षि के निवास व अन्य सुविधा की व्यवस्था दिल्ली में कर दी—दिल्ली में गाड़ी, घोड़े और डेरे आदि सब सामान भेज दिया गया। दिल्ली से दक्षिण की ओर अवध नरेशों के कैम्प के समीप एक बन वाटिका में महर्षि का डेरा लगा। यह बाग शेरमल का अनारबाग के नाम से प्रसिद्ध था और अजमेरी दरवाजे से पश्चिम दक्षिण की ओर कुतुब की सड़क पर स्थित था। इस बाग के बाहर स्थूलाक्षरों में अंकित कर दिया गया—

"स्वामी दयानन्द सरस्वती का निवास स्थान"। और दरबार के सब कैम्पों में एक विज्ञापन छपवाकर बंटवा तथा चिपका दिया गया कि सत्यासत्य निर्णय करने का यह अत्यन्त उपयुक्त अवसर है। महर्षि पौष शुदि २ रविवार सं० १९३३ को पहली बार दिल्ली पधारे। पौष शुदि ४ (१९ दिसम्बर १८७६) को एक पत्र वनमालसिंह के नाम दिल्ली से काशी को लिखा गया है। इस समय महर्षि के साथ ठाकुर मुकुन्दसिंह, कर्णवास के रईस ठाकुर गोपालसिंह, भूपालसिंह किशन-सिंह तथा पं० भीमसेन और मुरादाबाद निवासी पं० इन्द्रमणि भी थे।

महर्षि का उद्देश्यः राजाओं से वेद-प्रतिष्ठा—उस समय के राज प्रतिनिधि लार्ड लिटन ने इस दरबार की योजना महा-रानी विक्टोरिया को 'भारतसम्राज्ञी' घोषित करने के लिए की थी। स्पष्टतः अपने अधीनस्थ राजाओं और प्रजा पर अंग्रेजी शासन का वैभव अंकित करना उनका उद्देश्य था ही। महर्षि ने अनुभव किया-प्रजा के सब हितेच्छु और राजन्यवर्ग यहां एकत्रित होंगे ही। क्यों न इन्हें सत्पथ का झुकाव दे दिया जाय। कहते हैं कि महाराजा इन्दौर ने महर्षि से स्वयं यह अनुरोध किया था कि वे राजदर्बार के समय दिल्ली उपस्थित हों। वेदप्रतिष्ठा के विषय में परामर्श करने के लिए ये वहां उपस्थित राजन्यवर्ग की महर्षि से भेंट करायेंगे। कुछ भी हो महर्षि की यह आन्तरिक इच्छा थी कि देश का राजन्यवर्ग वैदिक धर्म के महत्व और स्वरूप को भली भांति समझकर उसे स्वीकार करले। उनका विचार था कि प्रजा तो राजानुगामिनी होती है—राजाओं के सुधार के पश्चात् प्रजा के सुधारने की समस्या शीघ्र हल हो सकेगी।

परन्तु राजाओं में से केवल महाराजा तुकोजी राव होल्कर से ही भेंट हो सकी—दूसरे राजाओं को तो अवसर ही नहीं था। कहते हैं

कि काश्मीर नरेश महाराजा रणवीरसिंह ने मिलने की इच्छा से अपने मन्त्री नीलाम्बर बाबू और दीवान अनन्तराम को महर्षि की सेवा में भेजा था; महर्षि ने भेंट की स्वीकृति दे भी दी थी—परन्तु फिर पंडितों ने महाराजा का मन फेर दिया। दिल्ली के पश्चात् जब महर्षि लाहौर में विराजमान रहे तब भी महाराजा की इच्छा उन्हें श्रीनगर के लिए निमंत्रित करने की थी; परन्तु पंडितों ने कह दिया, यदि आप दयानन्द को बुलाते हैं तो पहले देवमन्दिरों को गिरा दीजिए। काश्मीर के तत्कालीन धर्मशास्त्र के जज पं० गणेश शास्त्री ने यह बात पीछे पं० लेखरामजी के सम्मुख स्पष्टतः स्वीकार की। इन्हीं पं० गणेशशास्त्री ने सन् १८९२ में काश्मीर आर्यसमाज से पौराणिकों के शास्त्रार्थ के समय महाराजा प्रतापसिंह से स्पष्ट कह दिया था कि "महाराज! वेद में तो मूर्ति-पूजा है नहीं।" अस्तु, कुछ भी हो दिल्ली-दर्बार के समय महर्षि अपने इस महत्वपूर्ण उद्देश्य में सफल नहीं हुए।

सुधारकों का सम्मेलन—दिल्ली दर्बार में राजाओं से तो परामर्श का अवसर उपस्थित नहीं हुआ, परन्तु उस समय के भारत में उच्चकोटि के मानेजाने वाले सुधारकों का एक सम्मेलन महर्षि के निवास स्थान पर अवश्य हुआ। इस सम्मेलन में महर्षि के अतिरिक्त ६ विशिष्ट व्यक्तियों ने भाग लिया। मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी, बा० नवीनचन्द्रराय, बा० केशवचन्द्रसेन, मुंशी इन्द्रमणि सर सैयद अहमदखां और बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि उपस्थित थे। महर्षि ने प्रस्ताव रखा कि सब सुधारक एक होकर एक ही प्रकार से सुधार का कार्य करें तो भारत का अतिशीघ्र सुधार हो सकता है। परन्तु दुःख है कि सर्वसम्मत प्रस्ताव की रूप रेखा भी नहीं बन सकी। महर्षि का प्रस्ताव था कि वेद के ध्वज के नीचे भारत के सम्प्रदाय एकत्र हो सकते हैं अतएव वेद-प्रतिष्ठा के आधार पर सुधारकार्य करने से अधिक सफलता मिल सकती है। प्रस्ताव के प्रबल विरोधी ब्रह्म-

समाज के नेता बाबू केशवचन्द्रसेन रहे—और वे ही उस समय के सर्वाधिक प्रभावशाली सुधारक थे। फल यह हुआ कि महर्षि का यह प्रयत्न भी विफल हो गया।

दिल्ली से महर्षि के दो पत्र—इधर यह सब हुआ—उधर वेदभाष्य और उसके प्रचार की लगन लगातार बढ़ रही थी। महर्षि ने दिल्ली से ही दो विज्ञापन छपने के लिये भेजे—एक वेदभाष्य के सम्बन्ध में और दूसरा आर्यसमाज के नियमों के सम्बन्ध में। 'इंण्डियन मिरर' कलकत्ता तथा 'हिन्दू बांधव' लाहौर में छपे वेदभाष्य—सम्बन्धी विज्ञापन में इसके तय्यार होने, छपने, ग्राहक बनने तथा मूल्य आदि की व्यवस्था के अतिरिक्त बताया गया था कि वेद में एक ईश्वर की पूजा, उपासना के विधान रूपी सत्यार्थ को प्रकट करने के लिए इसे प्रकाशित किया जा रहा है।

दिल्ली से पौष शुदी ४ (१९ दिसम्बर) को काशी में स्थित वनमाली बाबू को एक पत्र लिखा कि वे वेद-भाष्य के प्रथम अंक और इस विषयक विज्ञापन की एक-एक हजार प्रतियां लेकर दिल्ली पहुँच जावें। यदि यह सब सामान लाजरस कम्पनी रेल से रवाना कर चुकी हो तो स्वयं आजावें। महर्षि वेदभाष्य सम्बन्धी अपने प्रचार के इस उपयुक्त अवसर को हाथ से नहीं खोना चाहते थे। परन्तु प्रतीत होता है, ये वस्तुऐं समय पर नहीं पहुँच सकीं।

वेदोक्त मार्ग के अनुयायी राजगण—एक और महत्वपूर्ण पत्र माघ कृष्ण ४ बुधवार (३ जनवरी १८७७) को दिल्ली से महर्षि ने रामगढ़ (सीकर) रि० जयपुर निवासी पं० कालूराम को भेजा था। इस पत्र में लिखा है:—"और वेदोक्त मार्ग को कितने पुरुष स्वीकार करते हैं सो इसका परिगणन नहीं कर सकते। असंख्यों में से दो-चार लिख देते हैं जैसे महाराजा इन्दौर के और बड़ौदा के और कपूर्थला के विक्रमसिंह महाराजा, राजा जयकृष्णदास, ठाकुर मुकुन्दसिंह तथा

ला० लक्ष्मीनारायण बरेली के इत्यादि बहुत जान लेना।"

इस पत्र से इतना तो ज्ञात होता है कि इन्दौर नरेश के अतिरिक्त बड़ौदा-नरेश गायकवाड़ को भी वे अपने सत्यप्रचार से प्रभावित समझते थे। सम्भवतः उनकी भेंट भी इन्दौर नरेश की भांति दिल्ली-दरबार में भी हुई हो। महाराजा डुमराऊं तो एक से अधिक बार महर्षि की सेवा में उपस्थित हुए थे।

पंजाब से निमन्त्रण—सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया, पं० मनफूल, कोहनूर प्रेस के स्वामी मुंशी हरसुखराय, मुंशी कन्हैया-लाल अलखधारी आदि सज्जनों ने महर्षि से प्रार्थना की कि वे पंजाब प्रांत को अपने उपदेशों से तृप्त करें। महर्षि ने प्रार्थना स्वीकार कर यथावसर उधर भ्रमण करने का वचन दिया। मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी को महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश, वेद विरुद्ध मत खण्डन, पंच-महायज्ञ-विधि, नित्यकर्म व्यवहार, उपकार सभा और आर्याभिविनय की एक एक प्रति भेंट की थी।

मेरठ और सहारनपुर—१६ जनवरी सन् १८७७ को महर्षि दिल्ली से मेरठ पहुँचे। यहां सूर्यकुण्ड के समीप डिप्टी महताबसिंह की कोठी में आसन लगाया। कहते हैं कि यह कोठी युरोपियन लोगों के ठहरने के लिए बनाई गई थी, अतएव गोरों के आने जाने से महर्षि की शान्ति में विघ्न हुआ—वे १० दिन के पश्चात् लेखराज के बाग में चले गये।

इस यात्रा में कोई व्याख्यान नहीं हुआ—आने वालों से धर्मालाप अवश्य होता रहा। निद्धि नामक एक पंडित बड़े उत्साह से साथियों और पोथियों सहित महर्षि को हराने (?) गया; पर उनके सामने पहुँचते ही वह घबरा उठा; ऋषि के यह पूछने पर कि कहिए कैसे आना हुआ? वह स्पष्ट कुछ नहीं कह सका, उसकी घिग्घी सी बंध गई और इस प्रकार लज्जित होकर वापस लौट गया।

४ फरवरी को महर्षि सहारनपुर पहुँचे और पनचक्की के समीप लाला कन्हैयालाल के शिवालय के कमरे में ठहरे। अम्बहटा नीवाली मुंशी चण्डीप्रसाद के प्रश्नों के उत्तर में महर्षि ने जो कुछ बताया उस का मुख्यार्थ निम्न प्रकार है:—

प्रश्नोत्तर— वेद विधान में एक मात्र परमेश्वर ही उपास्य है; भूत, प्रेत, जिंद, परी आदि का कोई अस्तित्व नहीं। मरने के पश्चात् जीव वायु में रहता है। पुनर्जन्म अवश्य होता है। स्वर्ग-नरक सब जगह पर हैं। सृष्टि उत्पन्न करना परमेश्वर का स्वभाव है। स्त्री-पुरुष की इच्छा और पसन्द से ही विवाह होने चाहिएं। विधुर की भांति विधवा को भी पुनर्विवाह का अधिकार होना चाहिए। ईसाई-मुसल्मान हो जाने पर पश्चात्ताप करके वैदिक धर्म में वापस आना चाहे तो उसे अवश्य लेना चाहिए। ब्रह्मा के चार मुख नहीं थे, चारों वेद उनको कण्ठस्थ थे। द्विरागमन (गौना वा मुकलावा) की रीति व्यर्थ है।

सहारनपुर में महर्षि के पहले तीन व्याख्यान चित्रगुप्त के मन्दिर में हुए। तीन-तीन चार-चार घन्टे व्याख्यान हुए जनता के उत्साह का ठिकाना न था, आरती की भी कोई चिंता न करता था, भीड़ इतनी होती की तिल भर भी स्थान न बचता। आरती में विघ्न होता देख अगले व्याख्यान महर्षि के निवास स्थान पर होने लगे। परन्तु यह भी मन्दिर था। पुजारी ने करबद्ध प्रार्थना की कि मन्दिर में मूर्ति-खण्डन तो नहीं होना चाहिए। इसके पश्चात् रामबाग में व्याख्यान होते रहे।

व्याख्यान के विषय अतिरोचक एवं शिक्षाप्रद रहे। 'आर्य कौन है, कहां है ?'' 'सत्य' 'सृष्टियुत्पत्ति' ''सुखी कौन है और दुखी कौन ?'' आदि शीर्षकों से यह बात प्रमाणित होती है। अन्तिम विषय पर व्या-

ख्यान देते हुए महर्षि ने सब सुख-सुविधाओं से सन्नद्ध एक धनी व्यक्ति का उदाहरण दिया जो मुकदमे की चिंता के कारण अपनी सुख-सामग्री का आस्वाद ही नहीं कर सका। महर्षि ने एक व्याख्यान में यह भी बताया कि बन्धन-रहित कोई नहीं रह सकता; हां, धर्म का बन्धन अन्य बन्धनों की अपेक्षा अच्छा है।

सहारनपुर के प्रसिद्ध भागवती पंडित बलदेव व्यास और साधु दीवानदास शंका समाधान से आगे बढ़कर शास्त्रार्थकर्त्ता के रूप में महर्षि के समक्ष उपस्थित हुए, परन्तु निरुत्तर हुए।

वेद भाष्य की प्रगति—वेद-भाष्य के ग्राहक बनाने में लखनऊ के पं० रामाधार बाजपेयी, हेडकलर्क सरकारी तारघर विशेष प्रयत्न शील थे। उनको इस समय लिखे गये महर्षि के अनेक पत्र उपलब्ध हुए हैं। मेरठ से इन्हीं दिनों दो पत्र ६ तथा १२ फरवरी को लिखे गये। वेद भाष्य प्रकाशित हो चुका था। ५ प्रतियां रामाधार बाबू को भेजी जा चुकी थीं। ६ मार्च को सहारनपुर से लिखे पत्र से ज्ञात होता है कि पं० रामाधार को ५ प्रतियां और भेजी गई।

चांदापुर का "ब्रह्म विचार-मेला—सहारनपुर से २८ फर्वरी को महर्षि ने पं० रामाधार को लिखा—"मैं आपको यह बताने में बड़ा प्रसन्न हूँ कि अब मैं चान्दापुर धार्मिक मेले में जाऊंगा, जो कि रुहेलखण्ड जिला शाहजहांपुर में है और जहां कि मेले के अध्यक्षों और दूसरों से मैं बारम्बार निमन्त्रित हूँ। यह मेला आर्यावर्त के सब धार्मिक दार्शनिकों को एकत्र करने के लिए बुलाया गया है और उनसे पूछा जायगा कि मुक्ति प्राप्त करने के लिए परमात्मा का सत्य धर्म कौनसा है ? मैं ११ मार्च को सहारनपुर से चलूंगा और मेला स्थान पर १५ को पहुँचूंगा। आपको भी अपने मित्रों के साथ जो आना चाहते हैं मेले में आना चाहिए जो कि एक सप्ताह तक रहेगा

(तीन दिन से एक सप्ताह के लिए हो गया है) मेला बड़ा रुचिकर और देखने योग्य होगा और बहुत से पंडित, मौलवी और पादरी भारत के सब स्थानों से आयेंगे और निश्चय ही इसे सुशोभित करेंगे।"

६ मार्च के पत्र से भी ज्ञात होता है कि यह मेला १९ मार्च से एक सप्ताह तक होने वाला था।

उपर हमने महर्षि का उक्त पत्र अविकल उद्धृत किया है; इससे यह स्पष्ट है कि (१) महर्षि को इस मेले के अध्यक्षों अथवा पुरस्कर्ताओं ने बार-बार निमन्त्रित किया था (२) उन्हें यह आशा दिलाई गई थी कि सब धर्मों—विशेषतः वेद, कुरान और बाइबल के समर्थक अनेक गण्य मान्य प्रतिनिधि देश के कोने-कोने से निमन्त्रित होकर आवेंगे (३) फिर उन्हें विचार-विमर्श के लिए कम से कम एक सप्ताह दिया जायगा। महर्षि की प्रबल इच्छा रहती थी कि किसी प्रकार देश में विविध धर्मों और विश्वासों का झमेला मिट कर एक वैदिक, वेदाधारित सत्य धर्म की स्थापना हो तथा देश उन्नति के पथ पर अग्रसर हो। अतएव वे ऐसे किसी भी अवसर को हाथ से नहीं देना चाहते थे। दिल्ली से पंजाब के लिये निमन्त्रित होकर आये थे—वे पंजाब जाना चाहते थे; परन्तु इस निमन्त्रण के पश्चात अपने सब कर्मचारियों को सहारनपुर में ही छोड़ ११ मार्च को अकेले वनमाली बाबू के साथ शाहजहांपुर की ओर चल दिये।

पण्डित घासीराम जी ने लिखा है कि चांदपुर के जिमीदार मुन्शी प्यारेलाल और मुक्ता प्रसाद दोनों भाई पैतृक कबीरपंथी थे। मुंशी मुक्ताप्रसाद के विचार महर्षि दयानन्द से प्रभावित हो गये थे। अतएव दोनों ने अपने विचारों को अन्तिम रूप देने के लिये चांदपुर में इस धार्मिक मेले की आयोजना की। 'दयानन्द प्रकाश' में लिखा है कि

चांदपुर में मुसलमान और ईसाइयों का प्रचार होता था और कबीर पन्थियों से विचार विनिमय होता रहता था। एक बार मुन्शी प्यारे लाल ने 'ब्रह्म-मेला' लगाया—इसमें लोगों की दृष्टि से कबीर पंथियों का पक्ष निर्बल हुआ। अतएव इस वर्ष इस मेले के लिये मुसलमानों को उत्तर देने के लिए मुरादाबाद से मुंशी इन्द्रमणि को निमन्त्रित किया गया। मुन्शी इन्द्रमणि ने मुन्शी प्यारेलाल को महर्षि का नाम सुझाया और स्वयं भी उपस्थित होने का वचन दिया।

कुछ भी हो, महर्षि इस मेले में निमन्त्रित हो १५ मार्च को चांदपुर पहुंचे। बरेली के प्रसिद्ध पादरी जे. टी. स्काट ईसाइयों के और देवबन्द जि० सहारनपुर के प्रसिद्ध मौलवी मुहम्मद कासिम इस्लाम के प्रतिनिधि थे।

महर्षि की निराशा— जैसा कि उद्धृत पत्र से ज्ञात है महर्षि यही आशा लेकर प्रस्थित हुए थे कि यह *'ब्रह्म विचार मेला'* कम से कम ७ दिन तो चलेगा ही फिर सम्भवतः ५ दिन की अवधि रही। परन्तु १९ मार्च को जब सब बातों का निर्णय होरहा है तो पादरी स्काट ने स्पष्ट कहा हम तो दो दिन की ही व्यवस्था करके आये हैं अतएव अधिक नहीं ठहर सकते। इन दिनों में पहला दिन तो प्रारंभिक बातों के निर्णय में ही बीत गया। अतएव केवल एक दिन में क्या विचार हो सकता था। महर्षि को निराशा होनी स्वाभाविक थी, फिर भी समय का अधिक से अधिक सदुपयोग करने में वे बड़े सावधान रहे।

प्रारम्भिक निर्णय—महर्षि के कथन पर यह निर्णय हुआ कि ५ प्रश्नों पर सब धर्म वाले अपना अपना मत मेले में रखें; सब मिल कर सत्य का निर्णय करें, कोई किसी का पक्षपात न करे, न विरोध करे। प्रत्येक धर्म का प्रतिनिधि पहले आध आध घण्टे में अपना मत स्पष्ट

करे, इस पर आक्षेप अथवा विरोध करने वाले दस दस मिनट में अपना भाषण करे और दस मिनट में ही प्रथम वक्ता उत्तर दे। बीच में और कोई न बोले। पांच विषय जो निश्चित हुए वे ये थे:—१ परमेश्वर ने जगत् को किस वस्तु से, किस समय और किस उद्देश्य से रचा ? २ ईश्वर सर्वव्यापक है या नहीं ? ३ ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ? ४ वेद, बाइबल और कुरान के ईश्वर का वाक्य होने में क्या प्रमाण है ? ५ मुक्ति क्या पदार्थ है और वह किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ?

यहां यह भी ध्यान देने योग्य है कि इस दिन दोपहर के पश्चातकी कार्यवाही के आरम्भ में मुन्शी प्यारे लाल ने परमेश्वर को धन्यवाद दिया कि उसने हमें ऐसे सम्राट् के राज्य में रखा है जिसमें सब लोग स्वतन्त्रता पूर्वक धर्मविचार कर सकते हैं।

ईसाई और मुसल्मानों के ५-५ वक्ता निश्चित हो जाने पर हिंदुओं की ओर से भी ५ व्यक्ति नियत करने की बात हुई तो महर्षि और मुन्शी इन्द्रमणि ने कहा—हम दो ही पर्याप्त हैं। मौलवियों ने पं० लक्ष्मीदत्त शास्त्री का नाम लिखाना चाहा—महर्षि ने कहा आप आर्यों के निर्णय में क्यों हस्ताक्षेप करते हैं ? उन्होंने इतने से न मानने पर उनमें सुन्नतशीआ और ईसाइयों में प्रोटेस्टैंट व रोमन कैथलिक आदि भेदों का निर्देश किया। इस पर वे चुप हो गये।

पहले प्रश्न पर विचार—२० मार्च को ७॥ से ११ तक पहले प्रश्न पर विचार हुआ। पादरी ने बताया—हम ठीक ठीक नहीं बता सकते कि इस संसार को ईश्वर ने किस वस्तु से, कब और क्यों बनाया। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि ईश्वर ने हमारे सुख के लिये अपने हुक्म से सृष्टि को अभाव से भाव में ला खड़ा किया है।

मौलवी ने कहा—खुदा ने दुनिया को वजूदे खास से प्रकट किया।

सब वस्तुएं मनुष्य के लिये बनाईं और मनुष्य को अपनी इबादत (आराधना) के लिये बनाया।

महर्षि ने बताया—कारण के बिना कार्य असंभव है। परमेश्वर ने जगत् को उपादान कारण प्रकृति से बनाया। प्रकृति अव्यक्त, व्याकृत और परमाणु रूप है। वह अनादि एवं अनन्त है। इसके दो और कारण निमित्त कारण तथा साधारण कारण क्रमशः परमेश्वर और दिशाकाल आदि हैं। सृष्टि प्रवाह से अनादि है। वैदिक धर्म के अनुसार सृष्टि की आयु १९६०८५२९७६ वर्ष हुई और अभी यह २३३३-२२७०२४ वर्ष और रहेगी। (*महर्षि की इस गणना के अनुसार सृष्टि की सम्पूर्ण आयु ४२९४०८०००० वर्ष होती है जो १४ मन्वन्तरों के योग से ठीक बैठती है। परन्तु इस योग में १५ सन्धियों के काल २५९२०००० वर्ष नहीं जोड़े गये, इनको जोड़ने पर सृष्टि की सम्पूर्ण आयु ४३२०००००००० वर्ष होती है।*) ज्योतिष शास्त्र तथा संकल्प वचनों में हम इसका प्रायः पाठ करते हैं। प्रलयकाल में बिन भोगे कर्मों के फलभोग तथा अपनी अनन्त विद्या, ज्ञान आदि के साफल्य के लिए ईश्वर सृष्टि का सर्जन करता है।

पादरी के आक्षेप के उत्तर में महर्षि ने बताया, कारण प्रकृति अनादि है, जगत् जो कार्य है वह अनादि नहीं। मौलवी साहब को बताया कि प्रकृति जड़ है, स्वयं कार्य रूप होकर जगत् नहीं बन सकता अतएव चेतन परमेश्वर की आवश्यकता है।

'मुक्ति' पर विचार—दोपहर पश्चात् और प्रश्नों को छोड़ मुक्ति पर विचार आरंभ हुआ। इस बार पहले महर्षि बोले। आपने बताया कि सब दुखों से छूट कर एक सच्चिदानन्द परमेश्वर को प्राप्त कर सदा आनन्द में रहना और जन्म, मरण आदि के दुःख सागर में न गिरना ही मुक्ति है। मुक्ति का पहला साधन सत्य-आचरण है। दूसरा

साधन—सत्यविद्या; तीसरा–सत्संग, चौथा–योगाभ्यास, पांचवा–ईश्वर स्तुति और छठा–ईश्वर प्रार्थना हैं।

पादरी साहब ने—दुखों से छूटना अपितु पापों से बचने और स्वर्ग में पहुँचने का नाम मुक्ति बताया। ईश्वर ने तो आदम को पवित्र बनाया था, शैतान ने बहका कर पाप करवाया। स्वभाव से पापी मनुष्य को ईसा पर विश्वास करने से मुक्ति मिलती है।

मौलवी साहब ने कहा—ईश्वर की इच्छा है चाहे जिसको मुक्ति दे या न दे। समय के हाकिम पर विश्वास करना चाहिए। इस समय का हाकिम हमारा पैगम्बर है, उस पर विश्वास करने से मुक्ति हो सकती है। विद्या से अच्छे काम हो सकते हैं, परन्तु मुक्ति तो उसी के हाथ में है।

महर्षि ने आक्षेप किया—आदम के पाप से उसकी सारी सन्तान कैसे पापी हो गई? शैतान सबको बहकाता है तो शैतान को किसने बहकाया? परमेश्वर इस शैतान को क्यों नहीं दण्ड देता? आदि। यदि ईश्वर दूसरे के कहने से मुक्ति देता है तो वह मुक्ति देने में पराधीन हो जायगा और पराधीन को ईश्वर नहीं कह सकते।

इस धर्म विचार का विवरण विस्तार से 'सत्य धर्म विचार' नाम से मुद्रित है।

अभी चार ही बजे थे कि नमाज का समय हो गया कह कर मौलवी उठ गये। पादरी ने महर्षि से एकांत में बातें करना चाही। ये लोग उठे तो और लोग सभामंच पर पहुँच गये और किसी ने घोषणा कर दी कि मेला समाप्त हो गया। महर्षि भी आखिर अपने डेरे पर चले गये।

रात्रि में पादरी स्काट दो दूसरे पादरियों समेत महर्षि के डेरे पर आये और आवागमन आदि पर बात करते रहे। इस बात चीत में महर्षि ने पादरी से कहा आप लोग 'सभ्य' अवश्य हैं परन्तु 'आर्य' नहीं। आर्य का अर्थ श्रेष्ठ धर्मात्मा है, आपकी धर्म पुस्तक तो आपको ऐसा नहीं बताती।

कबीर पन्थ पर विचार विमर्श—मेले के संस्थापक मुंशी प्यारेलाल और सहारनपुर के एक स्कूल मास्टर बाबू लेखराज ने कबीर के सिद्धान्तों पर महर्षि से विचार विनिमय किया।

८

संगठन प्रगतिपथ पर

(सं० १६३४ व इसके पश्चात्)

पंजाब की उर्वरा भूमि में

चांदपुर से महर्षि २३ मार्च को वापस चले और सहारनपुर पहुँचे। कुछ दिन सहारनपुर में विश्राम कर वे वैशाख कृष्ण ४ सं० १६३४ (३१ मार्च सन् १८७७) को लुधियाना पहुँचे।

यहां हम महर्षि द्वारा प्रवर्तित संगठन के एक ऐसे स्थान पर पहुँच जाते हैं जिसे प्रगति का नाम दिया जा सकता है। महर्षि ने पहले वैदिक पाठशालाएं स्थापित कर संगठन का आरोपित करना चाहा। परन्तु देश में आजीविका का प्रश्न इतना विकट हो चुका था कि आचार विचार के पक्के व्यक्तियों का मिलना दुर्लभ था। भोजन और वस्त्र के लोभ में विद्यार्थी पाठशाला में नाम लिखवा लेते थे। अध्यापक पण्डित थोड़े से वेतन के लोभ में पहुँच तो जाता था विद्यालय में—परन्तु वैदिक सिद्धांतों पर दृढ़ न रहता था—मूर्तिपूजन, पूजापाठ आदि से होने वाले आर्थिक लोभ से वह वंचित न रहना चाहता था।

पाठशालाओं से लाभ न देख कर वे तोड़ दी गईं। अब पुस्तक लेखन विशेषतः वेदभाष्य की ओर महर्षि का सारा ध्यान केन्द्रित था। बंबई में पहले आर्यसमाज की स्थापना कर उन्हें विश्वास हो गया था कि धीरे-धीरे ऐसे प्रेमी व भक्त मिल जायंगे जो सभाओं में

संगठित होकर वेद का अध्ययन कर अपने जीवन को आर्य बनाने का पूरा उद्योग करेंगे। वे आगरा व अवध प्रान्त में अपने विचार-बीज का वपन कर उसके फूलने-फलने का अवसर देख ही रहे थे कि पंजाब से निमन्त्रण मिला। इसलिए चांदपुर के धर्म मेले से छुट्टी पाकर महर्षि सहारनपुर से लुधियाना चले गये।

लुधियाना में—यहां महर्षि ११ दिन रहे, वैशाख कृष्णा ५ (३१ मार्च) से वैशाख शुक्ला ६ (१६ अप्रैल) तक प्रसिद्ध सुधारक मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी ने भक्तिभाव से स्वागत किया। लाला बंशीधर वैश्य के बाग में ठहरे। जटमल खजान्ची के घर व्याख्यान होते रहे। इस बार प्रचार की शैली कुछ बदली गई, सात-दिन लगातार व्याख्यान होते रहे। ८ वां दिन शंका—समाधान के लिए रखा गया। परन्तु शंका-समाधान के दिन कोई विशेष प्रश्न नहीं हुआ। पादरी वेरी उपदेश सुनने व वार्तालाप के लिए आते रहे। कुछ राज-कर्मचारियों ने भी महर्षि का दर्शनलाभ लिया। स्टीफन महोदय तो वेद भाष्य के ग्राहक भी बन गये। रामशरण गौड़ नाम का एक ब्राह्मण जो ईसाइयों के चुंगल में पड़कर उस ओर झुका जा रहा था महर्षि के सत्संग के कारण ईसाई होने से बच गया।

पंजाब के हृदय में प्रवेश—१६ एप्रिल को जब ऋषि लाहौर पहुँचे तो पंडित मनफूल, मुंशी हरसुखराय, अध्यक्ष 'कोहेनूर' तथा ब्राह्मसमाज एवं सत् सभा के अन्य कतिपय सभासद् स्टेशन पर उपस्थित थे। महर्षि को रतनचन्द दाढ़ी वाले के बाग में ठहराया गया। ब्राह्म लोगों ने आतिथ्य का भार ग्रहण किया। वस्तुतः ब्राह्म समाजियों का उद्देश्य महर्षि को अपना सभासद बना कर ब्राह्मसमाज का बल बढ़ाना था—इसी हेतु इन्होंने महर्षि को पंजाब पधारने का निमंत्रण दिया था।

रुढि का गढ़ हिल उठा—महर्षि के व्याख्यान बावली साहब में

होने लगे। पहला व्याख्यान २५ एप्रिल को 'वेद और वेदोक्त धर्म' पर हुआ। ५०० के लग-भग श्रोता थे। वेद के स्वरूप, उस की शाखाओं, वेद के तीन कांड आदि का उल्लेख करते हुए महर्षि ने बताया-देवता पृथक् योनि-विशेष नहीं, विद्वान् व बुद्धिमान् मनुष्य को ही देव कहते हैं। हवन का लाभ वायु शुद्धि है, वेद के पढ़ने का अधिकार मनुष्य मात्र को है। स्वार्थ के कारण वेद के अलङ्कारों से कहानियां गढ़ ली गई हैं...आदि। दूसरे व्याख्यान में भी इसी विषय का शेष प्रतिपादन किया और वर्ण व्यवस्था, छुआ-छात, विधवा विवाह और नियोग पर वैदिकमत बताया। मूर्ति-पूजा को सर्वांश में वेदविरुद्ध सिद्ध किया।

इस प्रचार से पौराणिक दल में खलबली मच गई, परन्तु पंजाब में यह दल प्रायः पंडितों से शून्य था। पंडित भानुदत्त, हरप्रसाद तथा पं० श्रद्धाराम फिल्लोरी ने नन्दगोपाल की धर्मशाला में आक्षेपों का कुछ उत्तर देने का प्रयत्न किया परन्तु परिणाम कुछ न निकला। जनप्रवाह महर्षि की ओर अदम्य गति से बढ़ चला।

आर्य जाति का दुर्भाग्य—महर्षि के विचारों का न्यायपूर्वक खण्डन करने में हतोत्साह हो कर अब वे ओछे हथियारों पर उतर आये। रतनचन्द दाढ़ी वाले के पुत्र दीवान भगवानदास को बहका और डरा कर महर्षि को उस की कोठी से हटवाया। ब्राह्मसमाजी तो पहले ही किनारा कर चुके थे। ब्राह्म मन्दिर में हुए व्याख्यानों में महर्षि ने वेदों को ईश्वरोक्त होने तथा आवागमन के सिद्धांत की पुष्टि की थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्यजाति के सच्चे सेवक महर्षि को लाहौर में आर्यों का आतिथ्य भी प्राप्त न हो सका। पं० मनफूल ने कहा—आप मूर्तिपूजा का खंडन छोड़ दें तो हिन्दू जनता और महाराजा जम्मू व काश्मीर भी आप से प्रसन्न हो जायेंगे। महर्षि का एक ही उत्तर था—"मैं महाराजा कश्मीर या लोगों को प्रसन्न करूं या ईश्वरीय आज्ञा का

पालन करूं ?"

एक मुसलमान की शिष्टता—इस समय खानबहादुर डाक्टर रहीम खां ने अपनी कोठी के द्वार महर्षि के लिए खोल कर आर्यजगत् को सदा के लिए अपना ऋणी बना लिया। डाक्टर रहीमखां की कोठी पर अब यह नियम हो गया कि एक दिन व्याख्यान और एक दिन शंका समाधान, होने लगे।

शंका-समाधान—दो महीनों तक यही क्रम जारी रहा। पादरी हूपर को गोमेध, नर-मेध अश्वमेध आदि का ठीक अर्थ समझाया। राष्ट्र अथवा प्रजा का न्याय पूर्वक पालन ही अश्वमेध है। अन्न, इन्द्रियों, अन्तःकरण और पृथ्वी आदि को पवित्र करने का नाम गोमेध और मृत पुरुष के शव का विधिवत् दाह ही नरमेध है। पंडित मथुरादास वेदान्ती को बताया 'अहं ब्रह्मास्मि' वेद वाक्य नहीं, उपनिषद का वाक्य है। और वहां भी इसका अर्थ जीव ब्रह्म है—ऐसा नहीं है। पं० शिवनारायण अग्निहोत्री भी मिलते रहते थे। एक दिन उन्होंने कहा सामवेद में उल्लू की कहानी है—पर महर्षि के कहने पर वे पुस्तक में नहीं दिखा सके। एक बार एक पंडित ने एक श्लोक मूर्ति-पूजन के विधान में पढ़ा और उसे मनुस्मृति का श्लोक बताया—परंतु वह भी पुस्तक में उसे नहीं दिखा सका। 'आयान्तु नः पितरः सोम्यास' मन्त्र का शुद्ध अर्थ करके बताया कि इसका मृतक श्राद्ध से कोई सम्बन्ध नहीं है।

आप बीती का वर्णन—डाक्टर रहीम खां की कोठी पर महर्षि ने कई दिन तक आप बीती भी सुनाई थी। एक बार उन्हें सघन बन में शेर मिला; महर्षि सीधे चलते रहे; वह मुंह फेर कर जंगल में घुस गया। एक बार अकारण द्वेषी साधुओं ने रात को उनकी पर्ण कुटी में आग लगादी थी; महर्षि बाल-बाल बचे। काशी में उन्हें पान में विष दिया गया.........इत्यादि।

आर्यसमाज की स्थापना—दो महीनों के इस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि जनता का मूर्ति-पूजा से विश्वास उड़ने लगा—अनेक लोगों ने देव मूर्तियों को रावी में बहा दिया। लाला बालकराम खत्री ने अपने ठाकुरों की चौकी बाजार में पटक दी थी। श्रद्धालु जनों के प्रस्ताव पर ज्येष्ठ शुक्ला १३ संवत् १९३४ (२४ जून सन् १८७७) को डाक्टर रहीम की कोठी में लाहौर आर्यसमाज की स्थापना हुई। ईश्वरोपासना और हवन के पश्चात् विधिवत् आर्यसमाज की स्थापना का कार्य महर्षि के आशीर्वाद से सम्पन्न हुआ।

दस नये नियम—बम्बई में आर्यसमाज के जो २८ नियम बनाए गये थे, अनुभव के आधार पर महर्षि ने उनमें यह परिवर्तन किया कि, उनमें से उद्देश्य व मन्तव्यपरक नियमों को पृथक् कर उनको संशोधित रूप में नियम बना दिया गया। आर्यसमाज के संगठन व सदस्यों के परस्पर व्यवहार सम्बन्धी विषयों को उपनियम शीर्षक से आगे चलकर वर्गीकृत किया गया। लाहौर आर्यसमाज की स्थापना के साथ महर्षि द्वारा प्रचारित दस नियम ही आज तक स्वीकृत नियम चले आते हैं। ये निम्न हैं:—

१—सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी दयालु अजन्मा, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम-धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत

रहना चाहिये ।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिये ।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ।

७—सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए ।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ।

९—प्रत्येक को अपनी उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किंतु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ।

१०-सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ।

वेद सम्बन्धी तीसरे नियम पर ब्रह्म समाज के सभासदों ने महर्षि से निवेदन किया कि यदि ये न रहे तो हम भी आर्यसमाज में सम्मिलित हो सकते हैं । फिर राय मूलराज ने इस नियम में से 'सत्य' शब्द निकालने का प्रस्ताव किया । परन्तु महर्षि सिद्धान्तों के साथ समझौता करना सीखे ही न थे ।

आर्यसमाज लाहौर का दूसरा अधिवेशन १ जुलाई को सत्सभा के स्थान पर हुआ । परन्तु पुराणों का खण्डन इस सभा के अनेक सदस्यों को सहन न हुआ । २ जुलाई के पत्र में इस सभा ने आर्यसमाज को स्थान देने से इन्कार कर दिया । अब आर्यसमाज का साप्ताहिक अधिवेशन अनारकली मुहल्ले में २०) मासिक किराये के मकान में होने लगा । थोड़े ही समय में सभासदों की संख्या १०० हो गई, जुलाई के अंत में यह संख्या ३०० थी ।

वेदभाष्य के लिए सरकारी सहायता—महर्षि ने ६ जून को एक पत्र पं० गोपालराव हरि देशमुख के नाम लिखा था । इसमें

आपने लिखा—"मुझे पूरा विश्वास है कि अज्ञानी भारत का अज्ञानान्धकार—'जिसके कारण वे इतने गिर गये हैं और फिर भी इधर से इतने असावधान हैं—एक दिन दूर हो जायगा जब कि वेदों का सच्चा ज्ञान देश भर में फैल कर अपना प्रकाश फैलायेगा और सभ्यता का सूर्य अपनी चमक दिखायेगा।" महर्षि द्वारा परिवर्तित संगठन का उद्देश्य एकमात्र यही था कि वेदों का पठन-पाठन ठीक से प्रचलित होकर देश का अज्ञान दूर हो और इस प्रकार देश की सर्वांगीण उन्नति हो।

इसलिए हम महर्षि को इस सम्बन्ध में राज-सहायता के लिए प्रयत्न करते देखते हैं। १४ मई सोमवार को लगभग १० बजे वे पंजाब के गवर्नर से मिले। उस दिन वार्तालाप के पश्चात् महर्षि ने वेदभाष्य की सहायतार्थ पंजाब सरकार को पत्र लिखा। साथ ही लिखा कि इसे सरकारी कालेजों में पढ़ाया जाय। महर्षि ने प्रचलित संस्कृत-पाठविधि के दोष भी दिखाए थे और गवर्नर की अनुमति के अनुसार अभीष्ट पाठ विधि भी बना कर भेजी थी।

पंजाब गवर्नर ने वेदभाष्य के संबन्ध में अन्तिम निश्चय का भार पंजाब विश्वविद्यालय की सीनेट और डायरेक्टर आफ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन को सौंप दिया। १४ नवम्बर १८७७ को इस कार्यवाही के पश्चात् महर्षि को सूचना दी गई कि शोक है कि आपका वेदभाष्य ऐसा नहीं है कि उसे सरकारी सहायता का अधिकारी माना जाय।

इस सम्बन्ध में २५ अगस्त को आर्यसमाज लाहौर ने भी एक आवेदनपत्र गवर्नर महोदय की सेवा में भेजा था। यह आवेदनपत्र बम्बई, पूना, मुरादाबाद, शाहजहांपुर, लाहौर और अमृतसर के आर्यसमाजों का प्रतिनिधित्व करता था। बात यह हुई कि पंजाब सरकार ने काशी संस्कृत कालेज के प्रिंसिपल ग्रिफिथ, कलकत्ता प्रेसीडेन्सीकालेज

के प्रिंसिपल टानी, ओरियण्टल कालेज लाहौर के मुख्य व द्वितीय पण्डित गुरुप्रसाद व पंडित हृषीकेश; संस्कृत कालेज लाहौर के प्रो० भगवानदास से महर्षि के वेदभाष्य पर सम्मतियां मांगी—इनका विरोध स्वाभाविक था। इनकी विरुद्ध सम्मतियों के प्रकाशित होते ही उक्त आवेदनपत्र भेजा गया तथा महर्षि ने अपने वेदभाष्य के विरोधियों को जो उत्तर दिया वह भी साथ ही भेजा गया। परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला।

आर्यसमाज ने वेदभाष्य की सहायता में निम्न युक्तियां दी थीं:—

(१) भारतीय वाङ्मय का आरम्भ वेदों से है; अतएव वेदों का प्रचार अत्यावश्यक है (२) इस वेदभाष्य के प्रकाशित होने से खोज को प्रेरणा मिलेगी (३) वैदिक ज्ञान के प्रचार से हिन्दुओं में फैला मिथ्या-विश्वास और हठ दूर होंगे। (४) स्वामी दयानन्द का आधार प्रबल प्रमाण है—और इन्हें युरोपीय विद्वान् भी स्वीकार करते हैं। (५) ब्राह्मणों की स्वार्थपरता और युरोपीय विद्वानों की भ्रान्तिपूर्ण धारणाओं के कारण उक्त भाष्य के सम्बन्ध में इनकी सम्मतियां निष्पक्ष नहीं हैं अतएव उक्त भाष्य को परीक्षा का अवसर अवश्य मिलना चाहिए। युरोपीय विद्वानों की भ्रांति का उदाहरण देते हुए बताया गया था कि ऋग्वेद के 'उतब्रवन्तु' मंत्र का छः विद्वानों ने छः प्रकार से अर्थ किया है; मैक्समूलर ने तो अपने अनुवाद के अशुद्ध होने का स्वयं संकेत किया है। महर्षि का भाष्य निरुक्त, निघण्टु आदि प्रमाणों से सर्वथा प्रमाणित है।

मि० ग्रिफिथ के उत्तर में महर्षि ने बताया था (१) मेरा भाष्य पुराने भाष्यों पर आधारित है। (२) मैंने अपने भाष्य के प्रमाण में स्थल स्थल पर ऐतरेय, शतपथ, निरुक्त और अष्टाध्यायी के वचन उद्धृत किये हैं अतएव स्वेच्छाचारी अर्थ करने का मुझ पर किया गया आरोप निराधार है। (३) 'दि वेदाज' (कोलब्रुक), "हिन्दूमाईथालोजी"

(कोलमैन), 'भगवत्‌गीता' (रेवरेण्ड केरट) और 'हिस्ट्री आफ एंसेएट संस्कृत लिटरेचर' (मैक्समूलर) प्रभृति के उद्धरण से महर्षि ने बताया कि वेदों में आए देवतावाचक शब्द सरसरी दृष्टि से बहु-देवता-वाचक प्रतीत होते हुए भी निघण्टु आदि के आधार पर एक ईश्वर को ही प्रकट करते हैं। (४) मेरे वेदभाष्य के १००० ग्राहक बन जाना प्रमाणित करता है कि विद्वान् लोग इसका आदर कर रहे हैं।

प्रिंसिपल टानीके उत्तरमें महर्षि ने लिखा सायण और अंग्रेजी भाष्यों की भूलों का खण्डन हो जाने में मेरा क्या दोष है। उन्नतिशील सभ्यता की कसौटी पर झूठ टिक नहीं सकता—सत्य ही ठहर सकता है। पंडितों के व्याकरण और छन्दसम्बन्धी आक्षेपों का आपने सप्रमाण निराकरण किया।

अस्तु ! यह सब कुछ करने पर भी कोई परिणाम नहीं निकला। वेदभाष्य की सहायता में सरकार से कानी कौड़ी भी न मिली, वेद-भाष्य को पाठविधि में स्वीकृत करना तो दूर की बात थी।

श्यामजी कृष्णवर्मा से सम्बन्ध—लुधियाना में १२ एप्रिल का लिखा बम्बई आर्यसमाज के प्रधान तथा वेदभाष्य के प्रबन्धक बा० हरिश्चन्द्र चिन्तामणि का एक पत्र मिला। इसके उत्तर में महर्षि ने लुधियाना से ही १६ एप्रिल को जो पत्र लिखा उसमें उन्होंने श्रीश्याम-जी कृष्ण वर्मा के तीन वर्ष के लिए इंग्लैंड जाने पर हर्ष प्रकट करते हुए सम्मति दी है कि उनको यह अवसर नहीं जाने देना चाहिए इससे इंग्लैंड और भारत दोनों देशों के वासियों को लाभ पहुँचेगा। उसे अपनी पत्नी भी साथ लेते जाना चाहिए।

लाहौर से ६ जून को महर्षि ने एक पत्र पं० गोपालरावहरि देश-मुख को उनके ३० एप्रिल के पत्र के उत्तर में लिखा। इसमें श्री श्याम

जी के सम्बन्ध में लिखा—मेरी इच्छा है कि ऑक्सफोर्ड में जाने से पहले श्यामजी मेरे पास रहता—मैं उसे वेद के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण संकेत देना चाहता हूँ जो उसके लिए अत्यन्त आवश्यक है।

पूर्व परिचय श्यामजी कृष्णवर्मा के जीवन-चरित्रलेखक श्रीइन्दुलाल याज्ञिक ने लिखा है कि सन् १८७५ में श्यामजी स्वामी दयानन्द के सम्पर्क में तब आये, जबकि बम्बई का वातावरण स्वामीजी के विजय से चमत्कृत हो रहा था। श्यामजी स्वयं संस्कृत का मेधावी छात्र था। वह शीघ्र ही महर्षि से प्रभावित होगया और उनके अनुयायियों में से अल्पतम वय वाला एक अनुगत प्रसिद्ध हुआ। उसकी आयु इस समय केवल १८ वर्ष की थी। श्यामजी को अपनी शिक्षा के लिए सहायता की आवश्यकता थी। इधर महर्षि के अनुयायियों ने इसके संस्कृत-पांडित्य और भाषणशक्ति से लाभ उठाना चाहा। सन् १८७५-१८७६ में इसने बम्बई व बम्बईप्रान्त के आर्य भाइयों से मेलजोल बढ़ाया। सन् १८७७ की १ ली और दूसरी एप्रिल को उसने नासिक में संस्कृत भाषा में समाज सुधार पर दो भाषण दिये। इनके भाषण पौराणिक पंडितों को भड़काने वाले भी न थे, फिर भी आर्यसमाज के नेताओं को इससे कुछ आशा बन्धी। वे महर्षि के इस नवयुवक अनुगत को और ऊंचा उठाने के यत्न में लगे। श्री देशमुख इससे पहले ही श्यामजी की ऑक्सफोर्ड जाने की इच्छा के सम्बन्ध में महर्षि को सूचित कर चुके थे। अब उन्होंने ऑक्सफोर्ड के डा० मोनियर विलियम्स को श्याम जी कृष्णवर्मा की सिफारिश में एक पत्र लिखा। "वह बहुत होनहार नवयुवक है तथा संस्कृत भाषण की उसकी योग्यता महान् है।" स्पष्टतः यह सिफारिश महर्षि के संकेत पर ही की गई होगी और डा० विलियम्स ने ४ मई १८७७ के पत्र में श्री श्यामजी को अपना सहायक बना लेनेकी अनुमति प्रकट की। इसके पश्चात् श्यामजी का महर्षि तथा आर्यसमाज से क्या संबंध रहा इसका यथास्थान वर्णन आगे किया

जायगा। यहां इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि महर्षिने इस नवयुवक को किस प्रकार 'वैदिक धर्म' के प्रचार के लिए तय्यार करना चाहा था।

महर्षि का प्रभाव—लाहौर में महर्षि के प्रचार का जो प्रभाव जनता पर पड़ा उसका दिग्दर्शन उस समयके समाचार पत्रों से होता

"बिरादरे हिन्द" तथा "ब्राह्म समाचार पत्र में लिखा—"जाति से अविद्या, हठ, दुराग्रह को दूर करना, विद्या का प्रचार कर जाति में एकता उत्पन्न करना-इस पुरुष का साधारण और विशेष अन्तिम ध्येय है।"

२८ जुलाई के 'कोहेनूर' लाहौर ने लिखा—"इतिहास के देखने से स्पष्ट है कि पिछले २५०० वर्ष के समय में स्वामी शंकराचार्य के पश्चात् कोई ऐसा श्रेष्ठ नेता और ऋषीश्वर उत्पन्न न हुआ था जो सन्मार्ग बताता।"

हंसराज जो पीछे 'महात्मा हंसराज' बने—इन्हीं दिनों लाहौर आये। आप मिशन स्कूल के छात्र थे। महर्षि के व्याख्यानों से गुंजित वातावरण का प्रभाव था कि इस कच्ची उम्र में वे अपने इसाई हैड मास्टर से आर्यों की निन्दा सहन नहीं कर सके। स्पष्ट विरोध करने पर पीटे भी गए, स्कूल से निकाले भी गये, परन्तु फिर ससम्मान वापस बुलाए गये। पीछे इन्हीं के बलिदान से पंजाब और उससे बाहर भी दयानन्द स्कूल व कालेज के रूप में आर्यसमाज का वृक्ष खूब फूला व फला।

अमृतसर में धर्म प्रचार—लाहौर से महर्षि ५ जुलाई को अमृतसर पधारे। अंग्रेजी दैनिक'ट्रिब्यून'के संस्थापक सरदार दयालसिंह मजीठिया ने यहाँ एक कोठी ४०) मासिक किराए पर लेकर दी। महर्षि के अमृतसर पधारने का समाचार बिजली की भांति सारे नगर में फैल गया। कोठी में व्याख्यान होने लगे—श्रोताओं की संख्या दिन-प्रति दिन बढ़ती हुई सहस्रों तक पहुँच गई। सदुपदेशों का अन्त में

प्रभाव हुआ और १२ अगस्त को इसी कोठी में आर्यसमाज की स्थापना हो गई। स्वयं महर्षि ने हवन कराया। ईश्वरोपासना के पश्चात १० सज्जनों ने सदस्यों में नाम लिखाये। लाहौर से शारदा बाबू भट्टाचार्य और लाला श्रीराम० एम० ए० इस स्थापनोत्सव में भाग लेने के लिये अमृतसर आये थे। कुछ दिन पश्चात् मलवई बुंगे के मोहल्ले में एक स्थान आर्यसमाज के लिए लिया गया। प्रथम अधिवेशन के दिन यहां भी हवन महर्षि ने करवाया। ला० गुरुमुखराम वकील के साथ महर्षि कमिश्नर परकिंस से भी मिले थे। इनसे हुए वार्तालाप में महर्षि ने वैदिक धर्म को समुद्र से उपमा दी और इसकी विविध विचारधाराओं को लहरों से उपमा दी। आपने बताया कि मैं तो यही चाहता हूं कि लोग वेद की आज्ञाओं का पालन करें।

श्रावण शुक्ला ६ संवत् १९३४ (१५ अगस्त १८७७) को अमृतसर में 'आर्योद्देश्यरत्नमाला' की रचना समाप्त हुई।

अमृतसर में भी कोई पण्डित शास्त्रार्थ के लिये सन्मुख न आया। प्रसिद्ध विद्वान् रामदत्त तो लोगों के तानों से तंग आकर हरिद्वार चले गये, वे स्पष्ट कहते थे कि शास्त्रार्थ करने का सामर्थ्य उनमें नहीं है।

गालियां पंडित बकते ही रहे। एक दिन पाठशाला के एक अध्यापक ने बच्चों से महर्षि पर ईंटें बरसवाईं कुछ बालकों को पुलिस ने पकड़ लिया तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि लड्डुओं के लोभ में उन्होंने वैसा किया। महर्षि ने उन्हें स्वयं लड्डू मंगवाकर दिये।

गुरुदासपुर में—श्रावण शुक्ला ९ (१८ अगस्त) को महर्षि शिकरम द्वारा गुरुदासपुर पहुँचे। डा० बिहारीलाल का आमन्त्रण था। नगर के अनेक प्रतिष्ठित सज्जनों और कुछ सरकारी कर्मचारियों ने आपका नगर १ मील पहले स्वागत किया। सायंकाल ५ बजे डा० बिहारीलाल के मकान पर ठहरे और थोड़ी देर विश्राम के पश्चात् ही उपदेशमाला आरम्भ कर दी।

यहां के प्रतिष्ठित रईस मियां हरिसिंह और मियां शेरसिंह दृढ़ मूर्तिपूजक थे। उन्होंने पहले तो गणेशगिरि नामक एक विरक्त पुरुष से आग्रह किया कि वे स्वामी जी से शास्त्रार्थ करें। उनके तय्यार न होने पर पण्डित लछीधर और दौलतराम को गुरुदासपुर से बुलाया। जिस समय ये पहुँचे महर्षि शिवपुराण की आलोचना कर रहे थे। ये ऐसी अशिष्टता से पेश आए कि विवश होकर सब नियम भंग करके महर्षि को इन से शास्त्रार्थ करना पड़ा। परन्तु 'गणानां त्वा' मंत्र का ठीक अर्थ करने पर ये फिर झुंझला उठे और उठ कर चले आये। भादों वदी १ सं० १९३४ को गुरुदासपुर में आर्यसमाज की स्थापना हो गई। मौलवी बाकरअली से यहां आवागमन पर चर्चा चली थी।

२६ अगस्त को महर्षि बटाला होते हुए अमृतसर लौट आए। १३ सितम्बर को यहां से जालन्धर को रवाना हुए। इन दिनों महर्षि लेखन व उपदेश में लगे रहे। वेदभाष्य के संबन्ध में विरोधी पण्डितों के उत्तर लिखाने का कार्य यहीं समाप्त हुआ।

गुरुमन्त्र—लाला मुरलीधर के गुरुमन्त्र के लिए आग्रह के उत्तर में कहा—सदा सत्य ग्रहण और असत्य का त्याग करो और इसी को गुरुमन्त्र जानो।

जालन्धर में महर्षि सरदार सुचेतसिंह की कोठी में ठहरे। प्रथम व्याख्यान भी यहीं 'सृष्ट्युत्पत्ति' विषय पर हुआ। आपने बताया कि प्रारंभ में मनुष्य युवा उत्पन्न हुए—बाल या वृद्ध होते तो कुछ न कर सकते थे।

दूसरा व्याख्यान विक्रमसिंह की कोठी पर हुआ। भीड़ इतनी थी कि छत आंगन सब मनुष्यों से भर गए थे। इस प्रकार यहां ३४-३५ व्याख्यान हुए। मौलवी अहमद हसन से आवागमन और 'करामात' (विभूति) पर शास्त्रार्थ २४ सितम्बर को हुआ। मौलवी साहब किसी

करामाती का नाम नहीं बता सके। महर्षि ने कहा—ईश्वर के कामों की भी सीमा है, जैसे वह मर नहीं सकता, अज्ञानी नहीं हो सकता, ऐसे ही वह अपने स्वभाव के विरुद्ध काम भी नहीं करता—यह शास्त्रार्थ पृथक् मुद्रित हुआ था।

बल परीक्षा—एक दिन स० विक्रमसिंह की जिज्ञासा पर महर्षि ने बताया कि ब्रह्मचर्य का जैसा महत्व शास्त्रों में वर्णित है, यह यथार्थ है। परन्तु सरदार का इससे कुछ सन्तोष नहीं हुआ। सत्संग के पश्चात् सरदार अपनी गाड़ी पर सवार होकर चलने लगे। पर घोड़े आगे बढ़ने का नाम न लेते थे; कोड़े खाकर भी वे अडिग थे। सरदार ने पीछे मुड़ कर देखा तो महर्षि को गाड़ी पकड़े पाया। ब्रह्मचर्य के बल का प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त कर सरदार को विस्मय होना स्वाभाविक था।

यहां महर्षि ने एक ईसाई की शुद्धि की थी। व्याख्यानों में एक वार कहा—कंजरी रखने वाला कंजर होता है। सरदार विक्रमसिंह में यह अवगुण था। उन्होंने कहा—महाराज! आज तो आप हम पर भी बरस पड़े। महर्षि ने उत्तर दिया—हम तो सबको ही कहते हैं, किसी का पक्ष नहीं करते।

लाहौर में दूसरी बार—१५-१६ तथा १७ की प्रातः तक अमृतसर ठहरते हुये १७ अक्टूबर सन् १८७७ को महर्षि जालन्धर से पुनः लाहौर पहुँचे। और नवाब रजाअली के उद्यान में ठहरे। इस यहां कई व्यक्तियों ने महर्षि से प्राणायाम और उपासना की विधि सीखी।

धन अवनतिका कारण—एक दिन एक पादरी और एक मिशनरी महिला ने महर्षि से भेंट की। वार्तालाप में महर्षि ने कहा—धन की अधिकता भी जाति के पतन का कारण बनती है। आज के अंग्रेज की दिनचर्या इसी कारण बिगड़ती जा रही है—पहले हमें प्रातःकाल

के भ्रमण में अनेक अंग्रेज स्त्री-पुरुष मिलते थे, अब वे बहुत दिन पढ़े उठते हैं।

वेद में ऋषि— महर्षि ने एक प्रश्न के उत्तर में बताया—वेदों में आये ऋषियों के नाम इतिहासपरक नहीं हैं; इन शब्दों को वेदों से लेकर ऋषियों के नाम रखे गये हैं।

कस्मै देवाय ?—एक दिन एक बिशप ने भेंट में 'कस्मै देवाय' का अर्थ यह बताया कि हिरण्यगर्भ सूक्त के इस तथा अन्य मन्त्रों में ईश्वर के सम्बन्ध में अज्ञान प्रकट किया गया है। महर्षि ने बताया यहां "कस्मै" का अर्थ सुख स्वरूप है।

नियमों के प्रतिकूल न कहें—लाहौर आर्यसमाज के एक अधिवेशन में शारदा बाबू ने कह दिया कि वेद-कुरान-बाइबल एक से ईश्वरीय ज्ञान हैं। महर्षि को पता लगा तो उन्होंने कहा यह कथन आर्यसमाज के नियमों के प्रतिकूल है; नियमों के प्रतिकूल आचरण करने या कहने पर प्रत्येक सभासद् को अधिकार है कि ऐसे व्यक्ति को रोक दे।

फिरोजपुर में—फिरोजपुर में एक हिन्दू सभा स्थापित थी। महर्षि के व्याख्यानों एवं सिद्धांतों की चर्चा सुन इस सभा के प्रधान ला० मथुरादास ने महर्षि को फिरोजपुर में बुलवा भेजा। २९ अक्टूबर को महर्षि फिरोजपुर पधारे। लाला मथुरादास के आग्रह पर भी वे एकांत न होने के कारण नगर में उनके मकान में न ठहरे बाहर एक कोठी में ठहरे।

यहां महर्षि के आठ व्याख्यान हुए। पहले व्याख्यान में गोपाल शास्त्री ने सभा के बीच में प्रश्न पूछने का आग्रह कर गड़बड़ डालनी चाही। परन्तु महर्षि के तेज के सम्मुख वह विक्षिप्त-सा हो तुतलाने लगा। 'यह गप्पाष्टक है' आदि कहता चला गया।

पंडित कृपाराम क्लर्क-मैगजीन ने महर्षि से अनेक प्रश्न किये। महर्षि ने परमेश्वर को सर्वव्यापक बताया तो पण्डित कृपाराम ने घड़ी निकाल कर पूछा इसमें पमेश्वर कहां ? महाराज ने उत्तर दिया— जैसे मेरा लोटा सर्वव्यापक आकाश से बाहर नहीं है, वैसे ही कोई वस्तु सर्वव्यापक ईश्वर से रहित नहीं है। यही पण्डित कृपाराम पीछे महर्षि के अनुगत हो गये।

एक सज्जन स्वरूपसिंह को जप-पाठ में बड़ी निष्ठा थी। इन्हें महर्षि ने योग के कई रहस्य बताये।

४ नवम्बर को महर्षि लाहौर के लिये चल पड़े। फिरोजपुर में आर्यसमाज की स्थापना महर्षि के प्रस्थान करने के पश्चात् हुई।

उपनियम भी बनगये—महर्षि ५ नवम्बर को लाहौर पहुँचे। ६ नवम्बर को आर्यसमाज के सभासदों ने उपनियमों की विधिवत् स्वीकृति की; महर्षि उपस्थित थे, परन्तु मत-प्रदान तभी किया जब कि महर्षि को सभा ने नियम पूर्वक सदस्य स्वीकार कर लिया।

रावलपिंडी में शास्त्रार्थ की चर्चा—७ नवम्बर को महर्षि रावलपिंडी की ओर चले। २७ दिसम्बर को हम उन्हें जेहलम में विराजमान देखते हैं लगभग डेढ़ मास तक महर्षि रावलपिंडी में धर्म प्रचार करते रहे। ब्रह्मसमाज के सदस्य, डिप्टीकमिश्नर के हेड क्लर्क बाबू निराशचन्द्र ने उन्हें यहां आमन्त्रित किया था। इनकी व्यवस्था के आधीन महर्षि का डेरा पहले जामास्पजी पारसी की कोठी में हुआ। परन्तु सेठ जी ८-१० दिन में ही बहक गये; पौराणिकों ने उन्हें टकमाया। यह देख कर महर्षि के भक्तों ने सरदार सुजानसिंह के बाग की बारादरी में व्यवस्था कर दी।

आर्यों की दुर्दशा—यहां भी प्रति सायं उपदेश-व्याख्यान होते

रहे । महर्षि के विरुद्ध नास्तिक, ईसाई, आदि होने के असत्य प्रचार के होते हुए भी भक्तों और श्रोताओं की संख्या निरन्तर बढ़ती रही। महर्षि ने आर्यों की दशा का एक शोचनीय पहलू यह बताया कि आज अपनी और दूसरों की धर्म पुस्तकों का ज्ञान न होने से आर्य अपनी रक्षा में सर्वथा असमर्थ हो गये है। ईसाई-मुसलमान ब्रह्मा की-सी अप्रमाणिक कहानियों के आधार पर पौराणिक धर्म पर आक्रमण करते हैं और हम इतना भी नहीं जानते कि लूत की-सी कथाएं बाईबिल में वस्तुतः विद्यमान हैं।

शास्त्रार्थ चर्चा—एक दिन शास्त्रार्थ चर्चा भी चली। कनखल के विद्वान् संन्यासी सम्पतगिरि तो, जो उन दिनों वहां आये हुए थे, शास्त्रार्थ के लिए तय्यार न हुए परन्तु पं० ब्रजलाल और हरिपुर के पण्डित हरिश्चन्द्र दल-बल समेत आये। पं० ब्रजलाल ने मूर्तिपूजा के मण्डन में एक श्लोक पढ़ा—पर वे यह न बता सके कि वह कहां का और किस समय का है। हरिश्चन्द्र ने जो श्लोक बोला वह महा अशुद्ध बोला—महर्षि को इस प्रकार बोलने पर रोष हुआ। पण्डित ब्रजलाल ने भी महर्षि का अनुमोदन किया। पण्डित लक्ष्मीराम ने शास्त्रार्थ के लिए जो पत्र भेजा वह इतना अशुद्ध लिखा था कि उसकी अशुद्धि जतलाने पर उसे महर्षि के सम्मुख आने का साहस ही नहीं हुआ।

महर्षि ने यहां भी अपने जीवन की अनेक घटनाओं का वर्णन किया। परन्तु अपना पितृदत्त नाम नहीं बताया।

नरेश-निमन्त्रण—महाराजा जम्मू व काश्मीर ने निमन्त्रण भेजा परन्तु यह कह कर कि नरेश ने अनेक मन्दिर बनवाये हैं, हम उनका खण्डन करेंगे अतएव उपद्रव की आशंका है—वे वहां जाने को तय्यार नहीं हुए। इसी प्रसंग में महर्षि ने यह बताया कि मारवाड़ का एक

नरेश जो १५ सेर रुद्राक्ष धारण करता और ५ सेर मिट्टी के शिवलिंग प्रतिदिन बनाता था—उनके उपदेश से सुधर गया था। यह राजा जब फिर मिला तो केवल एक रुद्राक्ष पहने था और महर्षि के गुण गाता था।

सम्पद्गिरि से भेंट—सम्पद्गिरि की महर्षि से एक दिन भ्रमण के समय भेंट हुई। कुशल क्षेम के पश्चात् दोनों संस्कृत में वार्तालाप करते रहे। सम्पद्गिरि पीछे से महर्षि की प्रशंसा करते रहे और कहा कि वे साथ पढ़ते रहे हैं।

आर्यसमाज की स्थापना—रावलपिंडी में आर्यसमाज की स्थापना महर्षि के सम्मुख हो गई। भक्त किशनचन्द मन्त्री और लाला गोपीचन्द सहकारी मन्त्री नियुक्त हुए। लाला गोपीचन्द के प्रस्ताव पर वेदांग-प्रकाश की रचना करना महर्षि ने स्वीकार किया।

जेहलम में—महर्षि गुजरात के प्रसिद्ध वेदान्ती डा० बिशनदास के निमन्त्रण पर गुजरात जा रहे थे। रावलपिंडी के भक्तों ने उन्हें शिकरम द्वारा जेहलम स्टेशन पर पहुँचा दिया। यहां पर ही उन की मास्टर लछमनप्रसाद से भेंट होगई—ये महर्षि के दर्शन लखनऊ में कर चुके थे। मास्टर लछमनप्रसाद के आग्रह से महर्षि यहां रुक गये। नदी के निकट एक बंगले में डेरा लगा। पहला व्याख्यान सराय मंगलसैन के निकट और दूसरा निवासस्थान पर हुआ। गवनमेंटस्कूल के ईसाई हेडमास्टर शिवचरण घोष तथा उन के ६ पादरी साथियों से धर्मचर्चा हुई। फिर तो उन्होंने आग्रहपूर्वक स्कूल में ही महर्षि के व्याख्यान कराये। बाइबल के आधारपर दिये गये महर्षि के उत्तरों और कटाक्षों के सम्मुख ईसाई निरुत्तर हो गये।

आर्यसमाज के प्रसिद्ध संगीतशास्त्री और भजन निर्माता महता अमीचन्द ने महर्षि के दर्शन पहले पहल यहीं किये। धीरे-धीरे वे

पक्के ऋषिभक्त बन गये। आर्यसमाज की स्थापना महर्षि की उपस्थिति में हो गई और मास्टर लछमनदास ने ब्रह्मसमाज की सदस्यता छोड़ आर्यसमाज का प्रधान पद ग्रहण किया। परन्तु पीछे ये पुनः ब्रह्म-समाज में जा मिले।

दिनचर्या—इन दिनों वेद भाष्य के लिखने के लिए तीन पण्डित अंग्रेजी पत्र व्यवहार के लिए एक कलर्क और अन्य चार-पांच सेवक महर्षि के साथ थे। व्याख्यान के समय सिर पर रेशमी पीताम्बर; पीली रेशमी धोती और ऊनी चोगा पहना करते थे। इस भव्यवेश में महर्षि अपूर्व तेज और प्रभाव से परिपूर्ण दिखाई देते थे। रात का अधिक भाग ध्यान में बिताते थे। भोजन परिमित था।

यहां एक वृद्ध संन्यासी से भी भेंट हुई। यह नदी किनारे रहते थे। और योगी प्रसिद्ध थे। पण्डित गुरुदत्त स्वयं इन्हें योगी कहते थे।

जेहलम से लिखे पत्रों से ज्ञात होता है कि वेद भाष्य, सन्ध्यो-पासना आदि वैदिक साहित्य के प्रचार में लखनऊ के पण्डित रामाधार बाजपेयी और सीकर के पं० कालूरामजी विशेष उद्योग कर रहे थे।

ईसाई-गढ़ गुजरात में—गुजरात उन दिनों ईसाई पादरियों के प्रचार का गढ़ था। गवर्नमेंट हाई स्कूल के हेडमास्टर मिस्टर बुचानन स्वयं ईसाई थे। अज्ञता के कारण हिन्दू अपने पूर्व पुरुषाओं के चरित्रों पर किये गये लाञ्छन झेल रहे थे—बहुतेरे ईसाई भी बनते जा रहे थे। परन्तु सुधारकों का कार्य भी जारी था। हिन्दू सभा इसी दृष्टिकोण से स्थापित हो चुकी थी। परन्तु ऋषि दयानन्द के नाम की गूंज यहां भी पहुँच चुकी थी। १३ जनवरी सन् १८७८ को जब महर्षि गुजरात पधारे तो सब स्थानों से अधिक यहां की दिशाएं उन की चर्चा से मुखरित हो उठीं। व्याख्यानों का प्रबन्ध गवर्नमेंटस्कूल के बोर्डिंग हाउस

वाले मकान में हुआ। महर्षि लग भग २० दिन रहे। इतने दिन महर्षि के व्याख्यानों की धूम मची रही।

सत्य हो तो मानो—महर्षि ने पहले व्याख्यान में कहा–मेरी बात भी सत्य हो तो मानो—चाटुकारिता करना छोड़ो। आंख मीचकर चलनेकी रीत छोड़ दो। यह मेरी आन्तरिक इच्छा है। मेहता ज्ञानचन्द ने पहले पहल महर्षि के दर्शन यहीं किये। आप महर्षि की विशाल-मूर्ति देखकर स्तम्भित रह गये। मूर्ति-पूजा के खण्डन में महर्षि का दूसरा व्याख्यान हुआ। पंडित होशनाकराय और गोस्वामी शब्ददास 'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्' को वेद में तथा मूर्तिपूजा विधान के श्लोक को मनुस्मृति में नहीं दिखा सके। मि० बुचानन से भी एक दिन प्रश्नोत्तर हुए। इन का ढंग अशिष्ट था। एक मंत्र से वेद में शव के गाड़ने का विधान सिद्ध करना चाहते थे—महर्षि ने उस के सही अर्थ बताकर निरुत्तर कर दिया। महर्षि के तीन व्याख्यान अधिक महत्वपूर्ण रहे—(१) वेद का महत्व (२) ब्रह्मचर्य का महत्व और तीसरा सन्ध्या पर था। सन्ध्या पर व्याख्यान देते हुए महर्षि ने गायत्री मंत्र की अपूर्व व्याख्या की—मौलवी मुहम्मददीन भी उस गायत्री के भक्त बन गये।

साहित्य के अभाव पर दुःख—महर्षि के व्याख्यानों के पश्चात् पौराणिक शिक्षितों में जान आ गई। वे अब ईसाई मुसलमानों से आंख मिलाने योग्य हो गये। दूसरी ओर पुराणों की पोल खुलने से ब्राह्मण उन के द्वेषी हो गये, छद्मवेषी ईसाई कहकर महर्षि को कोसने लगे। एक दिन शास्त्रार्थ करना भी निश्चित हुआ। परन्तु जम्मू के वे पंडित शास्त्रार्थ में एक ऐसी पुस्तक ले कर उपस्थित हुए जिस के पहले पृष्ठ पर कुछ मन्त्र लिखे हुए थे। और शेष सारे पन्ने खाली थे। महर्षि ने एक लम्बी सांस खींचकर कहा—अहा! गुजरात का सारा नगर वेदों की एक पुस्तक भी उपस्थित नहीं कर सकता! इंजील की पुस्तकें

प्रत्येक भाषा में दो-दो आने में उपलब्ध हैं! सभा में सन्नाटा छाया रहा। पंडितजी मौन बैठे रहे और शास्त्रार्थ यहीं समाप्त हो गया।

प्राणहरण का षड्यन्त्र—द्वेषी ब्राह्मणों ने उनके प्राणहरण का षड्यन्त्र भी रचा। 'अन्हीदापुत्तर' नाम से कुख्यात बदमाश को बहकाया। वह खुले बाजार महर्षि को मारने की धमकी देता फिरा—पुलिस ने भी उसे कुछ न कहा। परन्तु महर्षि के लिए यह नई बात न थी। उन्होंने यथापूर्व अपना कार्य चालू रखा। एक दिन मार्ग में कुछ दुष्टों ने ईंट धूलि भी फैंकी।

आप ज्ञानी हैं वा अज्ञानी ?—यहां महर्षि से एक प्रश्न उनको हराने की कुंजी समझ कर किया गया; वह यह कि आप ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी। महर्षि ने कहा दोनों—कुछ बातों में ज्ञानी तो कुछ में अज्ञानी। महर्षि की सूझ पर सबको आश्चर्य हुआ।

उर्दू अंग्रेजी में वेदभाष्य नहीं होगा—पत्र व्यवहार के आधार पर कहा जा सकता है कि महर्षि का वेदभाष्य दूसरे वर्ष में प्रवेश कर रहा था। वे नये वर्ष से अच्छा कागज और मूल्य बढाने की योजना बना रहे थे। अंग्रेजी और उर्दू में वेदभाष्य के अनुवाद करने के बम्बई वालों के प्रस्ताव को इसलिये अमान्य ठहराया कि इससे संस्कृत सीखने के प्रति लोगों का उत्साह ढीला पड़ जायगा। ऋग्वेद के १० सूक्त और यजुर्वेद के प्रथम अध्याय का भाष्य माघ वदी १३ सं० १९३४ (३१ जनवरी १८७८) तक लिखा जा चुका था।

पंजाब के बहुत से नगरों में आर्यसमाजों की स्थापना हो चुकी थी। पंजाब से लौटकर महर्षि बंगाल प्रान्त की ओर जाना चाहते थे।

वजीराबाद में मार पीट—वजीराबाद में आर्यसमाज की स्थापना पहले ही हो चुकी थी। महर्षि यहां २ फर्वरी को गुजरात से

पधारे। फकीरुल्ला के बाग में ठहरे। वहीं व्याख्यान आरम्भ हुए। यहां तीसरे दिन के व्याख्यान में मारपीट की नौबत आ गई। शास्त्रार्थ हो रहा था—महर्षि ने वेदमन्त्र पेश करने को बार-बार कहा। इसका उत्तर देने के स्थान पर एक लड़के ने शोर मचाना आरम्भ कर दिया। चुप कराते हुए ला० लब्धाराम साहनी ने उसे एक-दो छड़ी मार दी। बस फिर क्या था। बहाना मिल गया। महर्षि और लाला लब्धाराम को सुरक्षित मकान में पहुँचा दिया गया। परन्तु महर्षि का एक क्लर्क जोश में आकर भीड़ से भिड़ गया; इसको बचाने के लिए महर्षि स्वयं लाठी लेकर बाहर निकले। महर्षि के गर्जन से भयभीत हो लोग भाग निकले। इसके पश्चात् भी महाराज कुछ दिन वजीराबाद में रहे पर व्याख्यान नहीं हो सका। वे ७ फरवरी को गुजरानवाला चले गये।

ईसाइयों की पोल खुल गई—गुजरानवाला में महर्षि सरदार महासिंह की समाधि के विशाल भवन में ठहरे। दो दिन पश्चात् आर्योद्देश्य रत्न माला के उद्देश्यों पर एक-एक करके व्याख्यान होने लगे। पादरियों ने पहले तो पंडितों को उकसाया; परन्तु जब पंडित विद्याधर ने कहा 'स्वामी दयानन्द से हमारा मतभेद निजी मामला है, हम आप निपट लेंगे" तो पादरियों ने स्वयं शास्त्रार्थ की छेड़-छाड़ आरम्भ करदी।

शास्त्रार्थ का दिन १९ फरवरी नियत हुआ। पादरी सोलफीट उपनाम लाशा देसी ईसाइयों का नेता था। प्रवेश के लिए टिकट होने पर भी एक सहस्र से अधिक जन उपस्थित थे। डिप्टी गोपालदास मध्यस्थ नियत हुए। पादरी ने प्रश्न किया—जीव भी अनादि है तो जीव और ईश्वर में भेद क्या रहा। महर्षि ने दोनों का सेव्य-सेवक सम्बन्ध दर्शाते हुए अकाट्य युक्तियों से अपना पक्ष सिद्ध किया। सायं ४ से ८ तक दो दिन इसी में लग गये, मध्यस्थ का निर्णय महर्षि के

पक्ष में था। तीसरे दिन पादरियों ने बिना सूचना दिये समय बदल कर १२ बजे कर दिया और ठीक समय महर्षि को इसकी सूचना दी। उस समय वेदभाष्य का समय होने से न तो महर्षि जा सके और मध्यस्थ भी उस समय जाने को तय्यार न हुए। ईसाइयों ने शोर मचा दिया 'स्वामी दयानन्द शास्त्रार्थ से कतरा गये"। परन्तु गिरजाघर के समीप ही महर्षि के व्याख्यानों का प्रबन्ध हुआ और ईसाई मत का खण्डन होने लगा।

इस शास्त्रार्थ में वजीराबादी शरारती लोग भी उपस्थित थे। महर्षि ने उन्हें पहचान कर भी शास्त्रार्थ में उपस्थित होने की सुविधा दी। पश्चात् महाराज के व्याख्यानों को सुनकर उनका द्वेष काफूर हो गया। पं० वासुदेव ने तो महर्षि से क्षमाप्रार्थना भी की। इसके पश्चात् ४ मार्च तक महर्षि वहां रहे। शास्त्रार्थ का नाम लेने तक का किसी को साहस नहीं हुआ। मुन्शी नारायणकृष्ण और पुजारी भगवद्दत्त जैसे विरोधी महर्षि के भक्त बन गये।

ब्रह्मचर्य की महिमा पर बोलते हुए महर्षि ने कहा "५१ वर्ष की आयु में मैं कहता हूं कि किसी को अपने बल का घमंड हो तो आवे तो मैं उसका हाथ पकड़ लेता हूँ, छुड़ा लेवे अथवा मैं हाथ खड़ा करता हूँ, उसे झुका देवे। ५०० की उपस्थिति में, काश्मीर पहलवानों के होते हुए भी, कोई सामने नहीं आया।

फाल्गुन कृष्णा ३ सं० १९३४ (३ मार्च १८७७) को यहां आर्य समाज की स्थापना हुई। महर्षि ने ४ मार्च को लाहौर के लिए प्रस्थान कर दिया। एक सप्ताह लाहौर ठहर कर १२ मार्च को मुलतान चले गये। ११ मार्च को अपने डेरे नवाब रजाअली खां की कोठी पर मुसलमानी मत की आलोचना पर व्याख्यान दे रहे थे। नवाब नवाजिश अली खां, मालिक कोठी, पास टहल रहे थे और व्याख्यान सुन रहे

थे। किसी ने कहा ऐसा न हो कि नवाब अप्रसन्न हो जाय, महर्षि ने कहा—परमात्मा को छोड़ कर मुझे किसी और से भय नहीं है।

मुल्तान में ३५ व्याख्यान—मुलतान निवासी सुधारक देर से निमन्त्रण दे रहे थे। ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द लिवाने भी आ पहुँचा। महर्षि का स्वागत कर उन्हें बेगी बाग में ठहराया। ये दिन होलियों के थे। मुलतान गोकुलिये गुसाइयों का गढ़ था। महर्षि ने इस मत की लीलाओं का जोर शोर से खण्डन आरम्भ किया। गोपालदास गोसाईं इनका नेता था, उसने दंगा करने का यत्न किया। परन्तु पुलिस की उपस्थिति के कारण असफल रहा।

चार व्याख्यान नगर में होने के पश्चात् २ व्याख्यान छावनी में हुए। महर्षि मुलतान में ३६ दिन रहे। केवल रुग्णता का एक दिन छोड़ कर प्रतिदिन व्याख्यान हुए। इनमें यज्ञोपवीत, योरुप की आबादी प्राचीन काल में विवाह की रीति, पौराणिक कथाओं में वैदिक अलंकार स्वास्थ्य रक्षा, सन्तमत, सिक्खमत, प्राचीन काल में वैज्ञानिक उन्नति, मांस भक्षण निषेध, गायत्री का महत्व आदि रोचक एवं ज्ञानवर्धक विषयों का वर्णन किया गया। ईसाइयों ने शास्त्रार्थ करना चाहा; परन्तु महर्षि ने गुजरानवाला के अनुभव के आधार पर गिरजाघर के भीतर शास्त्रार्थ करना स्वीकार नहीं किया। कई मुसलमान भी महर्षि के समीप शंका समाधान के लिये आये। सागरचन्द नाम का एक इंजीनियर अपने आपको कट्टर नास्तिक कहा करता था महर्षि से उनकी तीन दिन तक चर्चा चली। वह ईश्वर का अस्तित्व मानने पर बाध्य हुआ।

एक दिन एक ब्राह्मण महर्षि के लिए रेशमी छाता लाया—महर्षि ने कहा कि यह किसी नटवे को देना। पण्डित कृष्णनारायण को बताया कि मांसभक्षण शरीर के लिए हानिकारक न भी हो तो आत्मोन्नति में

तो निश्चित बाधक है। पण्डित कृष्णनारायण ने पीछे अनुभव के पश्चात् इसका समर्थन किया। महर्षि ने कहा—मांस में स्वयं बल वर्धकता का गुण नहीं है। स्वाद भी मसाले घी का ही है।

आर्यसमाज की स्थापना—४ अप्रैल को मुलतान में आर्यसमाज की स्थापना हुई। प्रारम्भ में ७ ही सभासद् बने। ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द इस पर हंसे तो महर्षि ने भी हंसी में उत्तर दिया—मुसलमानों के पैगम्बर की तो केवल एक स्त्री ही सहायक थी; हमारे तो यहां सात सहायक हैं। १६ अप्रैल को महर्षि लाहौर लौट पड़े।

लाहौर में एक मास—१७ अप्रैल से १४ मई तक महर्षि लाहौर में रहे। आर्य भाइयों की उत्कट इच्छा थी कि महर्षि वहां कुछ काल और रहें परन्तु महर्षि ने समझाया—अन्य स्थानों में भी उनके जाने की आवश्यकता है। ८ मई को आर्यसमाज की अन्तरंग सभा में प्रधानपद के लिये किसी ने उनका नाम प्रस्तुत कर दिया। महर्षि ने कहा—प्रधान उपस्थित हैं तो नया प्रधान कैसा? महर्षि नियम के बड़े पक्के थे।

१५ मई को महर्षि अमृतसर पहुंच गये। इस बार सरदार भगवानसिंह के उद्यान में ठहरे। व्याख्यान मलवई बुंगे में होते रहे।

शास्त्रार्थ का तमाशा—पौराणिकों की लीला भी विचित्र होती थी। पहली बार तो अमृतसर में कोई शास्त्रार्थ के लिए आया ही नहीं था—इस बार भी महीना भर तो चुप रहे—जब महर्षि का जाने का समय हुआ तो एक दिन स्वयं ही विज्ञापन छापकर १४-१५ जून को घण्टाघर और तेजसिंह के शिवालय में वसन्तगिरि की मध्यस्थता में शास्त्रार्थ की घोषणा कर दी। आर्यसमाज इस पर भी तय्यार हो गया, परन्तु उपद्रव का उत्तरदायित्व वहां या अन्यत्र कोई लेने को

तय्यार नहीं था, अलबई बुंगे में, जहां आर्यसमाज सब प्रकार का दायित्व लेने को तय्यार था, पौराणिक शास्त्रार्थ करने को उद्यत न हुए।

अब आर्यसमाज ने १८ जून ६॥ बजे सायंकाल—स्थान सरदार भगवानसिंह—नियत कर दिया। इस शास्त्रार्थ के विज्ञापन पर पहले विज्ञापन देने वाले पं० चन्द्रभानु ने हस्ताक्षर भी नहीं किये परन्तु ठीक समय पर प्रबन्ध हुआ। ५-६ सहस्र लोग एकत्र होगये। शास्त्रार्थ के लिये किसी को आता न देख महर्षि का व्याख्यान आरम्भ हुआ ही था कि पण्डित लोग आगये। उन्हें नियम दिये गए तो उन पर विचार कर उत्तर देने की बात कह दी गई। इतने में सभास्थल पर ईंट-रोड़े पड़ने लगे। बड़ी कठिनता से उपद्रव शांत हुआ। पश्चात् २० जून तक प्रतीक्षा की गई—पौराणिक पण्डितों ने नियमों का ही कोई निर्णय नहीं किया और शास्त्रार्थ का यह तमाशा यों ही समाप्त हो गया।

महर्षि के सिक्खमत खंडन से निहंग उत्तेजित हो गये—उन्होंने कहा स्वामीजी को अकेला पाकर हम उनका वध अवश्य कर देंगे—उस रात महर्षि अकेले ही रहे; उन्हें परमेश्वर पर अटल विश्वास था। एक भंगोड़ी ब्राह्मण एक दिन सोटा लेकर उनकी ओर लपका। उसे पकड़ लिया गया, महर्षि ने छुड़वा दिया।

ईसाई चेते—पादरी बेरंग को भी चिन्ता हुई। उसने शास्त्रार्थ के लिये पहले पंडित खंगसिंह को बुलाया।

पण्डित खंगसिंह जो १२ वर्ष से ईसाई ही नहीं, ईसाइयत का प्रचारक भी था, महर्षि के दर्शनमात्र से बदल गया। इसके बाद वह वैदिक धर्म का प्रचार करता रहा, दो कन्याओं का विवाह भी आर्यों में ही किया। पादरी बेरंग ने अब कलकत्ता के के० एन० बनर्जी को तार दिया। महर्षि उनकी प्रतीक्षा में रुके भी, परन्तु कन्या की बीमारी

के कारण वह न आ सका। ईसाई मत की ओर से कई प्रसिद्ध व्यक्तियों के मन फिर गये। अध्यापक ज्ञानसिंह ने नौकरी की परवाह न कर आवागमन के सिद्धांत का समर्थन किया। ४० हिन्दू युवक जो अपने आपको बपतिस्मा न पाए हुए ईसाई कहते थे, ईसाई होने से बचे।

लाहौर के सरदार दयालसिंह मजीठिया ब्राह्मसमाजी थे। एक दिन समय नियत कर वेद-विषय पर बातचीत करने लगे। वार्तालाप में नियम भंग किया तो महर्षि ने टोका, सरदार साहब रुष्ट होकर चले गये।

एक से हजारों—पण्डित पोहलोराम यहां महर्षि के एक अनन्य भक्त थे। वे आर्यों की संख्या से निराशा प्रकट करते थे। महर्षि ने कहा—मैंने जब कार्य आरम्भ किया तो मैं तो अकेला ही था—आप तो अब बहुत हैं, निराश नहीं होना चाहिए।

११ जुलाई तक महर्षि अमृतसर रहे। अमृतसर से चल कर जालंधर में एक दिन ठहरे। वहां से १२ जुलाई को लुधियाना पहुँचकर ३-४ दिन ठहरे—व्याख्यान कोई नहीं दिया। लुधियाना से अम्बाला ठहरते हुए रुड़की चले गए।

अष्टाध्यायी की वृत्ति—चैत्र सं० १९३५ के अन्त में लिखे गए एक विज्ञापन से ज्ञात होता है कि महर्षि ने इन दिनों अष्टाध्यायी की वृत्ति लिखने की तैयारी की थी। यह वृत्ति पंजाब छोड़ने के पश्चात् लिखी गई, परन्तु ग्राहकों के अभाव में छपी नहीं। १००० ग्राहक हो जाने पर महर्षि इसे छपाना चाहते थे।

२६ जून को अमृतसर से लिखा—उसमें बताया कि यहां के कई लोगों ने जो पोपों की ओर थे, हाकिम से आर्यसमाज की चुगली खाई थी, जिसका परिणाम सत्य के प्रताप से यह हुआ कि अब कोई आर्यसमाज की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता।

पंजाब की उर्वराभूमि--इस प्रकार हम देखते हैं कि महर्षि की पंजाब यात्रा संगठन की दृष्टि से अत्यन्त सफल रही। बात यह थी कि पंजाबियों में कट्टरपन के संस्कार नहीं थे, वे ग्रहणशील अधिक होते हैं। पंजाब में ईसाइयत की लहर चल रही थी—सतसभा, हिन्दू सभा आदि का संगठन इस लहर के विरोध में चालू था, परन्तु पौराणिक धर्म की गन्दगी का उत्तर देने वाला कोई नहीं था, शिक्षित वर्ग को पौराणिक धर्म आकृष्ट नहीं कर रहा था। महर्षि ने वैदिक धर्म का सुपथ दिखाकर ईसाइयत की बाढ़ को एकदम रोक दिया। यह पौराणिक दल काशी और दक्षिण के पण्डितों के समान पाण्डित्य पूर्ण भी नहीं था—अतएव शास्त्रार्थों की तो केवल चर्चा ही होकर रह गई। हुल्लड़बाजी अवश्य हुई--पर महर्षि उससे डरने वाले नहीं थे। पंजाब महर्षि के प्रचार के लिए सर्वथा उर्वरा भूमि सिद्ध हुई। आर्यसमाज की खेती कुछ ही दिनों में लहलहा उठी। चारों ओर से आर्यसमाज का नाम गूंज उठा। अब महर्षि के लिये आवश्यक नहीं था कि उनके पहुँचने पर ही आर्यसमाज की स्थापना होती। वे संयुक्त प्रदेश की ओर अपना कार्य करने के लिये प्रस्थान कर गये।

युक्तप्रदेश में संगठन

व्याख्यानों पर पहली बार प्रतिबन्ध—२५ जुलाई को महर्षि रुड़की में विराजमान थे। यहां महर्षि के प्रारम्भिक दर्शक एवं श्रोता थामसन कालेज के अध्यापक एवं छात्र थे। कुछ मुसलमान भी आते थे। पण्डित उमरावसिंह महर्षि के निमन्त्रण-दाताओं में से थे। पहला व्याख्यान निवास स्थान बंगला शम्भुनाथ दिल्ली वाले में ईश्वरोक्त ज्ञान के सिद्धांत पर हुआ। दूसरे दिन से कैम्प मजिस्ट्रेट की आज्ञा लेकर आरमन स्कूल के समीपस्थ मैदान में व्याख्यान का प्रबंध हो गया। सत्य धर्म और वेद, मूर्तिपूजा और आवागमन पर दो

व्याख्यान हुए। तीसरा व्याख्यान इंजील और कुरान की शिक्षा पर हुआ। एक मौलवी द्वारा हिन्दू तथा ईसाइयों के अशिष्ट खण्डन के कारण ईसाई कुछ उत्तेजित थे—हिन्दू तो दब्बू थे ही। महर्षि के आगमन को मुसलमानों ने चुनौती समझा। जब यह तीसरा व्याख्यान हुआ तो किसी ने संकेत किया कि महर्षि मुसलमानों के विरुद्ध न बोलें। परन्तु महर्षि ने इस ओर ध्यान नहीं दिया—पूर्ववत् व्याख्यान देते रहे। चौथे व्याख्यान में उपद्रव की आशंका से पुलिस का प्रबन्ध था- इस व्याख्यान में महर्षि ने पाश्चात्य दर्शन, डारविन के सिद्धांत, इस्लाम व ईसाइयत के दार्शनिक सिद्धांत तथा पुराणों की बुद्धि-विरुद्ध गाथाओं पर प्रकाश डाला। श्रीमुख से वैज्ञानिक विश्लेषण सुन कर शिक्षित समुदाय को आश्चर्य हुआ कि वेदादि प्राचीन ग्रंथों के आधार पर सूर्य का न घूमना, पृथ्वी का घूमना, मेघ का वर्णन, अमरीका का वर्णन आदि नूतनतम समझे जाने वाले विषयों की व्याख्या महर्षि क्योंकर कर गये।

इस प्रकार यहां चार व्याख्यान ही हो पाये थे कि हरिद्वार के पंडों की शिकायत पर तीर्थों के खण्डन के कारण महर्षि के धार्मिक व्याख्यान रोक दिए गये। महर्षि अब अपने निवास स्थान पर ही धर्मोपदेश देते रहे।

कर्नल मानसल और कप्तान स्टुअर्ट उस दिन व्याख्यान में थे जिस दिन महर्षि ने इंजील की आलोचना की। आक्षेपों को सुन कर वे उत्तेजित तो हुए पर बोले नहीं। व्याख्यान के पश्चात् इन्होंने महर्षि से वाद-प्रतिवाद भी किया—पर उत्तर न दे सके।

शास्त्रार्थ की छेड़छाड़—शास्त्रार्थ तो कोई नहीं हुआ परन्तु मुसलमानों से इस सम्बन्ध में छेड़छाड़ काफी लम्बी रही। मुसलमान उत्तेजित तो हो ही गये थे, उन्होंने मौलवी अहमदअली और हाफिज रहीमुल्ला से शास्त्रार्थ कराना चाहा—मौलवी कटुभाषी था और हाफिज

अरबी से अनभिज्ञ। ८ अगस्त को मुसल्मानों ने देवबन्द के मौलवी मुहम्मद कासिम को बुला लिया। परन्तु शर्तें तै न हो सकी। कर्नल मानसल और कप्तान स्टुआर्ट के सन्मुख ८-१० नियम तै भी हुए तो मौलवी साहब पीछे से मुकर गये। वे शास्त्रार्थ को लिखवाना नहीं चाहते थे; केवल ४०० मनुष्य नहीं—भीड़ चाहते थे। महर्षि ने लिखा जो बातें सबके सम्मुख निर्णीत हो गई हैं मैं उनके विरुद्ध नहीं जा सकता। उधर मौलवी साहब ने मुसल्मानों से मजिस्ट्रेट को प्रार्थना पत्र दिला दिया कि हमें सार्वजनिक सभा में छावनी में शास्त्रार्थ की आज्ञा दी जाय। स्वभावतः उन्हें निषेध करना था—उन्होंने कहीं भी शास्त्रार्थ करना निषिद्ध कर दिया। १७ अगस्त को कप्तान स्टुआर्ट ने पुनः दोहराया कि यदि ४०० व्यक्ति स्वामीजी के स्थान पर एकत्र होकर शास्त्रार्थ करें तो उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु अब मौलवी साहब कर्नल की आज्ञा पर डट गये। इस प्रकार यहां शास्त्रार्थ की छेड़-छाड़ ही होकर रह गई।

२० अगस्त को रुड़की में आर्यसमाज की विधिवत् स्थापना हो गई। महर्षि २१ अगस्त को मेरठ के लिए प्रस्थित होगये।

थियोसोफ़िकल सोसायटी से सम्बन्ध—कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवैटस्कीने अमरीका में उक्त नाम से एक सोसाइटी सन् १८७५ ई० में स्थापित की थी। बम्बई के एक भाटिया व्यापारी मूलजी ठाकुरसी का अमेरिका में इन लोगों से परिचय हुआ। इसी मूलजी से कर्नल ने महर्षि के सम्बन्ध में जिज्ञासा की। यह पत्र मूलजी ने महर्षि को दिखाया और भिजवा दिया। कर्नल ने १८ फर्वरी सन् १८७८ को उत्तर में महर्षि को एक लम्बा पत्र लिखा। इस पत्रव्यवहार के भाषान्तर का भार श्यामजी कृष्ण वर्मा, राय मूलराज और हरिश्चन्द्र चिन्तामणि पर था। कर्नल ने पहले पत्र में अत्यन्त विनीत एवं शिष्यभाव प्रकट करते हुए महर्षि को अपनी सोसाइटी का कौरेस्पौंडिंग फैलो बनाने का

प्रस्ताव रखा। महर्षि ने इन्हें वैदिक धर्म का जिज्ञासु जानकर इनका स्वागत किया। और इस पत्र का २१ अप्रैल को जो उत्तर दिया उसमें ईश्वर विषयक अपने सिद्धान्तों का स्पष्टतः प्रतिपादन किया। कर्नल की पहली चिट्ठी में उनके धर्म का "थियोसोफिस्ट" नाम देखकर महर्षि ने लोगों से उसका अर्थ पूछा तो उन्हें इसका अर्थ "ईश्वर की बुद्धि मत्ता" बतलाया गया। महर्षि ने अनुमान लगाया कि ये ईश्वर वादी हैं। २३ मई के पत्र में कर्नल ने महर्षि के २१ अप्रैल की प्राप्ति की सूचना देते हुए बताया कि सोसाइटी ने दोनों सभाओं के मिल जाने और उसका नाम बदल जाने के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है। इससे यह ज्ञात हुआ कि कर्नल ने महर्षि के ईश्वर-विषयक विचारों को जानते हुए भी आर्यसमाज से सम्बन्ध स्थापित किया। ५ जून को कर्नल ने महर्षि को पुनः पत्र भेजा। इसमें उन्होंने स्पष्टतः लिखा—"हम आर्य वंश के हैं......आप आज्ञा दें तो हम थियोसोफिस्ट लोग अपने आपको आपका शिष्य कहने और पश्चिमभर में आर्यसमाज और उसके सिद्धान्तों का ठीक ठीक ज्ञान फैलाने में अपना गौरव समझेंगे।" यह पत्र महर्षि को अमृतसर में ७ जुलाई को मिला। इस पत्र के आधार पर महर्षि ने २७ जुलाई को बाबू दयाराम को लिखा कि थियोसोफिकल सोसाइटी आर्यसमाज की शाखा बन गई है। अमेरिका में इन संस्था का नाम अब 'थियोसोफिकल सोसाइटी आफ दी आर्यसमाज आफ इंडिया' तथा भारत में "आर्यसमाज आफ थियोसोफिकल सोसाइटी" रहेगा—ऐसा लिखा।

कर्नल का जो पत्र महर्षि को ७ जुलाई को मिला उसका उत्तर महर्षि ने २२ जुलाई १८७८ को (श्रावण वदी ११ सं० १८३५ शुक्रवार को) रुड़की से भेजा। यह पत्र संस्कृत में था। इसमें महर्षि ने आर्यसमाज के सिद्धान्तों का विशद वर्णन किया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महर्षि ने २६ जुलाई १८७८ को

थियोसोफिकल सोसाइटी और आर्यसमाज के गठ-बन्धन को स्वीकार किया।

अलीगढ़ में नेताओं से भेंट—२१ अगस्त को रुड़की से प्रस्थान कर महर्षि २२ अगस्त को अलीगढ़ पहुंचे। यहां पंडित आफ-ताबराय के बाग में ठहरे। छलेसर के ठाकुर मुकुन्दसिंह आदि भक्त पहले ही विद्यमान थे। बम्बई से मूलजी ठाकुरसी, हरिश्चन्द्र चिन्ता-मणि और श्यामजी कृष्ण वर्मा महर्षि से भेंट करने आये। ला० मूल-राज एम० ए० लाहौर को महर्षि ने २० अगस्त को एक निजी पत्र लिखा था जिसमें लिखा था कि बा० हरिश्चन्द्र चिन्तामणि और श्याम जी कृष्ण वर्मा १८ अगस्त को बम्बई से चलकर २१-२२ अगस्त को अलीगढ़ पहुँच रहे हैं, हम भी २२ को वहां पहुँचेंगे, आपको उचित है कि आप भी अकेले ही २२-२३ को वहां पहुँचें। इस पत्र तथा अपने आने की प्रसिद्धि मत करना।

फिर २५ अगस्त को महर्षि ने अलीगढ़ से लाला मूलराज को पत्र लिखा उसमें उन्होंने बम्बई के उक्त तीनों सज्जनों के लाहौर पहुँचने व उनके स्वागत व व्याख्यान के सम्बन्ध में निर्देश दिये। इससे प्रतीत होता है कि लाला मूलराज इन्हें अलीगढ़ अथवा मेरठ में नहीं मिले। पीछे के एक और पत्र से ज्ञात होता है कि पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा अकेले ही ६ सितम्बर को मेरठ से लाहौर गये। इस भेंट में महर्षि ने क्या परामर्श किया यह ज्ञात नहीं हो सका।

न बुराई न भलाई—कुंवर ज्वाला प्रसाद के प्रश्न के उत्तर में महर्षि ने बताया—अन्य जाति व धर्म वालों के हाथ का पका वा छुआ हुआ खाने में वैदिक धर्मियों को न कुछ बुराई, न कुछ भलाई।

अस्वस्थता के कारण महर्षि ने केवल एक व्याख्यान दिया जिसमें कई सहस्र जन उपस्थित थे। मौ. फरीदुद्दीन सब जज ने व्याख्यान के अन्त में महर्षि की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

२७ अगस्त को महर्षि मेरठ पहुँचे। एक सप्ताह तक तो उनके निवास स्थान बाबू दामोदरदास जी के बरामदे में ही उपदेश होते रहे। फिर 'जलवये नूर' प्रेस के अध्यक्ष राय गनेशीलाल की कोठी पर व्याख्यान होने लगे। तीन दिन तक धर्माधर्म, ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना विषयों पर भाषण हुए। चौथे दिन प्रश्नोत्तर पूछने वाला न होने से सृष्टि विषय पर व्याख्यान हुआ। ५ सितम्बर से १२ सितम्बर तक लाला रामसरनदास के घर शहर में ६ दिन व्याख्यान व ३ दिन प्रश्नोत्तर होते रहे। सनातन धर्म रक्षिणी सभा ने मूर्ति-पूजा, गंगा तीर्थ और अवतारवाद पर प्रश्न किये।

शास्त्रार्थ का आडम्बर—७ सितम्बर को अब्दुल्ला नाम के व्यक्ति ने आपको शास्त्रार्थ के लिए कहा। महर्षि ने उसे लिखा शहर के प्रतिष्ठित रईसों के द्वारा लिखित शास्त्रार्थ कीजिए। उसने यह स्वीकार नहीं किया और शास्त्रार्थ नहीं हुआ। अब्दुल्ला के अतिरिक्त सनातन धर्म रक्षिणी सभाने तो शास्त्रार्थ का वृहत् आडम्बर रच डाला। पंडितों और हिन्दू रईसों ने मिलकर ६ सितम्बर को सभा को और महर्षि को शास्त्रार्थ का चैलेंज दिया। परन्तु इस चिट्ठी पर किसी के हस्ताक्षर नहीं थे। इसके पश्चात् १८ सितम्बर तक परस्पर पत्रव्यवहार होता रहा। सनातनी रईस ला० किसनसहाय का नाम लेकर चिट्ठियां भेजी गईं। शास्त्रार्थ की शर्तें भी रखी गईं परन्तु अन्त तक महर्षि के बार-बार आग्रह करने पर भी, ला० किसनसहाय ने अपने हस्ताक्षरों से कोई चिट्ठी नहीं भेजी। अंतिम पत्रों में तो वे महर्षि को अपशब्द लिखने लगे।

१४ सितम्बर के पश्चात् महर्षि के व्याख्यान बा० छेदीलाल गुमाश्ता कमसरियट की कोठी पर होते रहे। २६ सितम्बर को मेरठ में आर्यसमाज की स्थापना हो गई। प्रारम्भ में ८१ सभासद् बने लाला रामसरनदास प्रधान चुने गये। सनातनी रईस ला० किशनसहाय के

पुत्र मुन्नालाल साहू भी आर्यसमाज के सभासद् बने। वे पीछे कोषाध्यक्ष बने और इस पद पर आजन्म बने रहे।

वेदभाष्य के प्रबन्ध की चिन्ता—मेरठ से महर्षि तीन अक्तूबर को दिल्ली पहुंचे। दिल्ली से ७, १४, २२ अक्टूबर तथा पश्चात् श्यामजी कृष्णवर्मा को लिखी गईं महर्षि की चिट्ठियों से ज्ञात होता है कि ला० हरिश्चन्द्र चिन्तामणि वेदभाष्य का प्रबन्ध ठीक से नहीं कर रहे थे। महर्षि अब यह काम श्यामजी को सौंपना चाहते थे। परन्तु बा० हरिश्चन्द्र ने श्यामजी को अन्ततः काम नहीं सौंपा।

दिल्ली में महर्षि सब्जीमण्डी के काबुलीगेट पर स्थित ला० बालमुकन्द व केसरीचन्द के बाग में ठहरे। कुछ दिन तक वहीं उपदेश होता रहा। १३ अक्तूबर से मोहल्ला छत्ताशाह जी में व्याख्यान होने लगे। महर्षि के यहां प्रतिदिन व्याख्यान होते रहे। २६ अक्तूबर के एक पत्र से ज्ञात होता है कि उन दिनों वैदिक विषय पर महर्षि के व्याख्यान हुए। दो नवम्बर के पत्र से ज्ञात होता है कि दिल्ली में आर्यसमाज की स्थापना इससे पहले हो गई थी।

महर्षि दिल्ली से पुष्कर जारहे थे। वहां अचरौल (जयपुर राज्य) के ठाकुर रणजीतसिंह महर्षि के भक्त थे। उन्होंने महर्षि की अध्यक्षता में एक वृहद् यज्ञ का अनुष्ठान कराने का संकल्प किया था। जोशी रूपराम उन्हें लिवा लेजाने के लिए दिल्ली आ चुके थे और महर्षि ने निमन्त्रण स्वीकार कर गायत्रीपुरश्चरण की विधि जोशीजी को लिखा दी थी।

दानापुर से भी देर से निमन्त्रण आ रहा था। वहां के बा० माधोलालजी वेदभाष्य के ग्राहक बनाने में सयत्न थे। वे दिल्ली में महर्षि की सेवा में पधारे और दानापुर के प्रेमियों की ओर से महर्षि को निमंत्रित किया। परन्तु महर्षि जयपुर, अजमेर और पुष्कर का कार्यक्रम

बना चुके थे। फिर हरिद्वार के कुम्भ पर भी उन्हें जाना था अतएव दानापुर का निमन्त्रण स्वीकार नहीं कर सके।

भक्त का देहपात—७ नवम्बर को जब महर्षि दिल्ली से जयपुर स्टेशन पर पधारे तो उन्होंने देखा कि जोशी रामरूप व अन्य सेवकों के शिर मुंडित हैं। ठाकुर साहब जोशी जी के दिल्ली से वापस पहुँचने से पहले ही रुग्ण हो गये थे, फिर भी यज्ञ की तय्यारी चालू रही—परन्तु कार्तिक शुक्ला दशमी को ही उनका देहपात हो गया था। महर्षि ने सुनकर शोक प्रकट किया। वे उसी समय पुष्कर जाने के लिए अजमेर जाने वाली गाड़ी से चल पड़े।

एक प्रतिष्ठित विद्वेषी ?—अजमेर का कार्यक्रम बनाने से पहले एक मनोरंजक घटना घटी। महर्षि को किसी जुगलबिहारी का अजमेर से भेजा पत्र मिला—जिसमें लिखा था कि चन्दा नहीं प्राप्त हो सका; अभी आने का समय नहीं, फाल्गुन में सब काम पक्का रखेंगे। महर्षि ने इसे सच समझते हुए मुन्शी समर्थदान को लिखा—प्रयत्न न करने पर भी चन्दा नहीं हुआ तो चिन्ता मत करो। फिर सही। जैसे ही यह पत्र अजमेर पहुँचा—भक्तों ने महर्षि को वास्तविक स्थिति का ज्ञान कराया। जब महर्षि अजमेर पहुँचे तो वह पत्र मुंशी समर्थदान ने देखा—वे पहचान गये कि यह नगर के किस प्रतिष्ठित (?) व्यक्ति की करतूत थी। परन्तु नाम प्रकट नहीं किया।

मसूदाधिपति भेंट—पुष्कर में महर्षि महाराजा जोधपुर के घाट पर नवनाथ जी के दरीचे में ठहरे। दर्शक और जिज्ञासुओं का तांता लग गया। मसूदाधिपति राव बहादुरसिंह जी ने महर्षि के सर्व प्रथम दर्शन यहीं पर किये।

यहां कुछ वाममार्गी साधुओं ने अपने आपको सिद्ध घोषित कर रखा था। महर्षि के पहुँचने पर वे उनके सामने आने तक का साहस न

कर सके, लोग उनके पाखण्ड से परिचित हो गये।

अजमेर में ग्रे से शास्त्रार्थ—पुष्कर से महर्षि १४ नवम्बर को अजमेर लौटे और रामप्रसाद के बाग में ठहरे। उसी दिन से व्याख्यानमाला आरम्भ हो गई। चौथे व्याख्यान में इन्जील की समालोचना की गई थी। इस समय पादरी ग्रे ने कहा था कि आप प्रश्न लिखकर भेजें तो हम उत्तर दें। तदनुसार महर्षि ने इन्जील के ६४ वाक्य लिखकर भेज दिए थे।

२८ नवम्बर को इन्हीं प्रश्नों को लेकर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। पादरी डाक्टर हजबैण्ड भी ग्रे के साथ थे। पहले दिन का शास्त्रार्थ लिखा गया परन्तु ग्रे ने उस पर हस्ताक्षर नहीं किये। २९ नवम्बर को पादरी ने लिख भेजा कि यदि प्रश्नोत्तर न लिखे जांय तो हम शास्त्रार्थ करने आवें; महर्षि ने स्वीकार नहीं किया।

रा० बा० श्यामसुन्दरदास ने जो पीछे किशनगढ़ के दीवान बने, देवेन्द्र बाबू से कहा था कि इस शास्त्रार्थ में पादरी ग्रे की निश्चित पराजय हुई थी।

गो रक्षा का समर्थक मौलवी—"राजपूताना गजट" के सम्पादक मुहम्मद अली महर्षि से पांच बार मिले और अनेक प्रश्न किये। इन्होंने बताया—"मेरे प्रश्नों के उत्तर इतने युक्ति संगत थे कि मेरा सन्तोष हो गया। मौलवी साहब गो-रक्षा के समर्थक थे। महर्षि ने यह जान कर प्रसन्नता प्रकट की और अपना फोटो दिया।

मूर्तिपूजा पर मृदु आक्रमण से हानि—रा० ब० श्यामसुन्दरलाल से एक बार महर्षि ने कहा था—"मूर्तिपूजा पर मृदु आक्रमण करने व उससे किसी प्रकार की सन्धि करने से हमारे सिद्धान्तों की वही दुर्दशा होगी जो अन्य सिद्धान्तों की हुई। समयान्तर में आर्यसमाज पौराणिक होकर हिन्दुओं में मिल जायगा।

२ दिसम्बर को अपने भक्त राव बहादुरसिंह के निमन्त्रण पर महर्षि मसूदा चले गये । धर्मालाप और व्याख्यानों में एक सप्ताह बीत गया । विदा के समय रावसाहब ने २००) रु० भेंट किये ।

१० दिसम्बर को बग्घी पर सवार होकर *नसीराबाद छावनी* पहुंचे । पण्डित सुखदेव प्रसाद अध्यापक ने भक्तिभाव से महर्षि को यहां निमन्त्रित किया था ! तीन व्याख्यान हुए । पण्डित सुखदेव प्रसाद के विचार ईसाई धर्म की ओर झुके हुए थे—वे बदल गये । मिशन स्कूल छोड़ कर नार्मल स्कूल में अध्यापक हो गये और आजन्म आर्य-समाजी रहे ।

नसीराबाद से महर्षि १४ दिसम्बर को जयपुर पहुँचे । श्राद्ध और मूर्तिपूजा के खण्डन के कारण जयपुर नरेश महर्षि से रुष्ट थे । इस बात को लेकर महर्षि के जयपुर में बन्दी होने की अफवाह भी फैली । पर यह बहुत दिन नहीं रही । श्रीप्रसाद मोहतिमिम बन्दोबस्त ने, जो महर्षि का भक्त था, महर्षि को शीघ्र जयपुर छोड़ने की सलाह दी । परन्तु महर्षि ने *निर्भिकता से ६ दिन व्यतीत किये* । ठाकुर लक्ष्मणसिंह की हवेली में तीन व्याख्यान हुए । कहते हैं कि चुगल-खोरों की चुगली पर श्रीप्रसाद को महर्षि का सत्संगी होने के कारण दूसरे बहाने से बन्दीगृह में डाल दिया गया ।

रिवाड़ी—के प्रमुख जागीरदार राव युधिष्ठिरसिंह ने दिल्ली दरबार में महर्षि के दर्शन किये थे । उसके निमन्त्रण पर महर्षि जयपुर से २५ दिसम्बर को रिवाड़ी पधारे । राव महोदय की व्यवस्था से यहां महर्षि के ११ व्याख्यान हुए । राव महोदय और उनके भाई वैदिक धर्म के अनुयायी बन गये थे । शास्त्रार्थ की चर्चा चला कर भी पंडित महर्षि के स्थान पर नहीं आये ।

६ जनवरी १८७८ को महर्षि *दिल्ली* पधारे । दिल्ली में तीन

व्याख्यान हुए । १६ जनवरी को मेरठ गये और मेरठ से कुम्भ पर
प्रचार करने के उद्देश्य से मुजफ्फरनगर, देवबन्द, सहारनपुर और रुड़की
होते हुए फाल्गुन शुक्ला ६ संवत् १९३५ (२० फरवरी) को हरिद्वार
पहुँच गये ।

सं० १९३६ का कुम्भ—कुम्भ पर धर्म प्रचार की तैयारी
पहले ही करली गई थी । एक सुन्दर विज्ञापन की कई हजार प्रतियां
महर्षि ने मेरठ में ही छपवाली थीं । यहां महर्षि ने श्रवणनाथ के बाग
के पास निर्मलों की छावनी के सामने मूला मिस्त्री के खेतों में डेरा
लगाया । विज्ञापन बंटते ही दर्शन और सत्संग के लिए जनसमुदाय
आने लगा । महर्षि अब अज्ञात व्यक्ति नहीं थे । सारे मेले में महर्षि के
आगमन की धूम-मच गई ।

दिन-चर्या—प्रश्नोत्तर व सत्संग प्रातः सात बजे से ११ बजे तक
होते रहते थे—कभी-कभी १२ बज जाते थे । १ बजे से ५ बजे तक
व्याख्यान देते थे । और ७ बजे फिर उपदेश देने लगते थे । इस समय
प्रायः आर्य-सभासद ही उपस्थित होते थे । कभी-कभी वे किसी विषय
पर आपस में ही शास्त्रार्थ करते थे और महर्षि मध्यस्थ होते थे । ६
बजे सब लोग शयन को उठते थे । महर्षि रात्रि में भी थोड़ी देर सोते
और शेष समय योगाभ्यास करते थे ।

निरन्तर परिश्रम के परिणामस्वरूप महर्षि को रोग ने आ घेरा—
उन्हें १०-१२ दस्त प्रतिदिन आने लगे । शरीर निर्बल हो गया ।

अमरीका से कर्नल अल्काट और मैडम ब्लैवस्टकी १५ फरवरी को
बम्बई आ गये थे । वे महर्षि के दर्शनों को लिए उत्सुक थे । महर्षि
भी उनसे भेंट करना चाहते थे । परन्तु अपने कार्यक्रम और निर्बलता
के कारण महर्षि बम्बई तो जा नहीं सके—उन्हें पत्रों द्वारा सान्त्वना
देते रहे ।

महर्षि के पत्रों से ज्ञात होता है कि इस कुम्भ में भीड़ कम थी। २ लाख यात्रियों में अधिकतर वैरागी और साधु ही थे। मेले के अन्त में हैजा भी फैल गया था।

महत्वपूर्ण घटनाएं—इस समय अनेक छोटी-बड़ी घटनाएं और ऋषि-वाक्य प्रसिद्ध हैं। कुछ यहां दिये जा रहे हैं:—

एक दिन एक ८० वर्षीय संन्यासी आनन्दवनजी महर्षि से वार्तालाप के लिए आये। दोनों ने घंटों धर्मचर्चा की। वेदान्त पर २ बजे तक वार्तालाप होता रहा। महर्षि ने इस वृद्ध विद्वान् संन्यासी का बड़ा आदर किया। वार्तालाप के अन्त में उन्होंने शिष्यों को सुना कर कहा—*"मैंने दयानन्द का मत ग्रहण कर लिया।"*

नदिया से तीन *जिज्ञासु विद्वान्* पधारे जिन्होंने ११ बजे तक संशय-निवारण किया।

मेले में एकत्रित साधुओं में से स्वामी विशुद्धानन्द; स्वामी जीवनगिरि और सुखदेव गिरि को महर्षि विद्वान् समझते थे। इन तीनों को एक दिन महर्षि ने पत्र लिखा कि आप मेरी बात की सत्यता को जानते हुए भी सब के सम्मुख प्रकट क्यों नहीं करते।

वेदान्ती साधु रामसिंह को महर्षि ने बताया—जैसे भूख, प्यास आदि न्यूनताएं अन्न-जल से पूरी होती है वैसे *आत्मा की न्यूनताएं ईश्वर प्रार्थना से पूरी होती हैं।*

महाराजा कश्मीर ने एक पत्र भेज कर ऐसा ग्रन्थ बनाने की प्रार्थना की कि जिस में वैदिक धर्म से विमुख हुए स्वजातीय और विधर्मी ईसाई मुसलमानों को भी पुनः स्वधर्म में लेना विहित दर्शाया गया हो। महर्षि ने कहा *ऐसा ग्रन्थ शास्त्र प्रमाणयुक्त सहज ही में बन सकता है।*

उम्मेदखां को महर्षि ने बताया था कि आर्य अर्थात् श्रेष्ठ और सत्यमार्ग पर चलने से मुसलमान भी आर्य बन जाता है।

चोरी के कारण आर्यसमाज अमृतसर से बहिष्कृत नवयुवक को पश्चात्ताप करने पर फिर से सभासद् बनाने की प्रेरणा की।

पं० श्रद्धाराम फिल्लौरी ने—इस मेले पर महर्षि के साथ अनेक धूर्तताएं कीं। इस के साथी ३० पंडितों ने महर्षि को शास्त्रार्थ के लिए पत्र लिखा—परन्तु इस में शरारतभरा षड्यन्त्र था। महर्षि ने उत्तरमें लिख दिया कि स्वामी विशुद्धानन्द मध्यस्थ बनें तो शास्त्रार्थ करने को तय्यार हूँ। स्वामी विशुद्धानन्द के पास जब ये लोग गये तो उन्होंने इन पंडितों को दुत्कार दिया और कहा तुम दयानन्द के सामने एक अक्षर भी नहीं जानते। स्वामी विशुद्धानन्द ने महर्षि को भी लिख भेजा कि आप ऐसे शरारतियों की बातों पर ध्यान न दें।

पर्व से अगले ही दिन महर्षि हरिद्वार से देहरादून चले गये। पं० कृपाराम को सूचना दे दी गई थी। उन्होंने महर्षि के ठहरने की व्यवस्था करानी थी। १४ अप्रैल से ३० अप्रैल तक महर्षि देहरादून में रहे। प्रारम्भ में कुछ दिन विश्राम किया। फिर व्याख्यान होने लगे। सत्संग तो चलता ही रहा। कुल ६ व्याख्यान देहरादून में हुए।

एक दिन बाइबल की आलोचना सुन कर पादरी मारिसन रुष्ट हो सभास्थल छोड़ गये। दूसरे अंग्रेज भी सभा में थे—पर वे चुप-चाप सुनते रहे।

पं० कृपाराम ने महर्षि के आतिथ्य के लिए लोगों से जो चन्दा एकत्र किया था उनमें दो को छोड़कर शेष ब्राह्मसमाजी थे। ब्राह्मसमाज का खंडन सुन कर ये लोग रुष्ट हो गये और सहायता देना बन्द कर दिया। महर्षि ने अनुभव के आधार पर पं० कृपाराम को यह सम्भावना पहले ही बतादी थी।

२६ एप्रिल को देहरादून में आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

यन्त्रालय खोलने का विचार—हरिद्वार जाते हुए मेरठ में ला० रामशरणदास से परामर्श कर छापाखाना खोलने का विचार महर्षि ने किया था। इसके लिए १००)-१००) के हिस्से रखे गये थे। सब से पहले महर्षि ने अपने दो हिस्से २००) रु० के सम्मिलित किये। देहरादून से २४ एप्रिल को दानापुर के बा० माधोलाल को लिखा कि मुरादाबाद में मुंशी इन्द्रमणि की अध्यक्षता में यन्त्रालय खोलने का विचार है। इस के लिए ५०००) रु० चन्दा एकत्र करना आवश्यक है। १००) रु० के प्रति भाग द्वारा २५००) रु० अब तक एकत्र हो चुके थे।

सहारनपुर में कर्नल एस० आल्काट और मैडम मिले। उन को साथ लेते हुए महर्षि मेरठ आ गये। कर्नल व मैडम के साथ मूलजी ठाकुरसी भी था। मेरठ से महर्षि ने एक पत्र मुंशी समर्थदान प्रबन्धक वेदभाष्य को बम्बई के पते पर लिखा। इस में उन्होंने बताया कि साहब की और हमारी सम्मति मिल गई है। हरिश्चन्द्र ने जो शंका उनके चित्त में डाली थी वह निवृत्त हो गई है। साहब अत्यन्त शुद्ध अन्तःकरण के सज्जन हैं।" महर्षि ने साहब पर इतना विश्वास किया कि साहब को अपनी अनुपस्थिति में 'आर्यसमाज के पूर्वीय और पश्चिमीय थियोसिफिष्टो के प्रधानाध्यक्ष रूप में' साधारणतया महर्षि का अधिकार बर्तने का प्रमाणपत्र दे दिया।

साहब ने यहां महर्षि के सामने यह स्वीकार किया कि "आगे ऐसा न होगा और जो आर्यसमाज के नियमों को पसन्द नहीं करता है वह थियोसोफिकल सोसाइयटी में नहीं रहेगा।"

७ मई को कर्नल और मैडम बम्बई लौट गये।

शास्त्रार्थ-चर्चा—देवबन्द के मौलवी मुहम्मद कासिम ने मेरठ आकर शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट की। १० मई को शास्त्रार्थ के नियम निर्धारण के लिए सभा हुई। बहुत भीड़ हो जाने से दस सज्जनों की एक समिति बना दी गई। गवर्नमेंट स्कूल के हेडमास्टर कैस्पियन भी इस में सम्मिलित हुए। परन्तु नियमों का निश्चय नहीं हो सका।

२२ मई को महर्षि अलीगढ़ गये। वहां जाकर अधिक रुग्ण हो गये। २८ मई को छलेसर गये। वहां चिकित्सा ठीक ढंग से कराई गई; ३ जुलाई को मुरादाबाद पहुँचे।

राजनीति की अपूर्व व्याख्या—शरीर रुग्ण होने के कारण इस बार तीन ही व्याख्यान यहां हो पाये। एक व्याख्यान ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट मिस्टर स्पीडिंग की इच्छा और व्यवस्था के अधीन राजनीति पर हुआ। प्रवेश टिकटों से था। नगर के चुने हुए प्रतिष्ठित ३०० व्यक्ति उपस्थित थे। राजा और प्रजा के धर्म की व्याख्या सुन कर श्रोता मुग्ध हो उठे। स्पीडिंग साहब ने अन्त में कहा—राजा और प्रजा का परस्पर ऐसा व्यवहार होता तो क्यों १८५७ के विद्रोह की नौबत आती!

यहां महर्षि की चिकित्सा डाक्टर डीन ने की। परन्तु देने पर भी उसने फीस नहीं ली।

नमस्ते पर विचार—मुंशी इन्द्रमणि और महर्षि का यहां नमस्ते पर वाद-विवाद हुआ। मुंशी इन्द्रमणि "परमात्मा जयते 'जयते परमात्मा" का प्रचार चाहते थे। इसमें मुसल्मानियत की पुट थी। महर्षि ने बताया नमस्ते का अर्थ मान और सत्कार है। छोटे-बड़े दोनों को परस्पर मान और सत्कार करना चाहिए।

२० जुलाई को मुरादाबाद में राजा जयकिशनदास की कोठी के बाग में आर्यसमाज की स्थापना की गई। बाग की रविश में हवन कुंड खोदा गया था—परन्तु वर्षा के कारण कमरे के भीतर हवन कुंड में ही हवन करना पड़ा।

रक्षाबन्धन का अर्थ—मुरादाबाद से चलकर महर्षि ३१ जुलाई को रात्रि के तीन बजे बदायूं पहुँचे। यहां आर्यसमाज की स्थापना मई में ही हो चुकी थी। महर्षि ने 'रक्षाबन्धन' त्यौहार के विषय में बताया कि प्राचीनकाल में इस दिन उपाकर्म अर्थात् वेदाध्ययन का पुनः आरम्भ करने का उत्सव हुआ करता था। इसका शुद्ध नाम श्रावणी अथवा ऋषितर्पण था।

४ अगस्त को कुछ पंडितों से शास्त्रार्थ हुआ जो दो दिन चलता रहा। इस शास्त्रार्थ के समय महर्षि ने बताया कि 'सहस्रशीर्षाः पुरुषः" में सहस्र का अर्थ असंख्यशिर, आंख, पैर वाला सम्पूर्ण जगत् है।" ये पंडित दुराग्रही नहीं थे। जिस प्रश्न का वे उत्तर नहीं दे सके वहां अपना अज्ञान स्पष्ट स्वीकार करते गये।

बदायूं में महर्षि के तीन सार्वजनिक व्याख्यान हुए। मुसल्मानों से शास्त्रार्थ की इच्छा प्रकट करके रह गये। शाहजहां के अंग्रेज पादरी विनीत भाव से प्रश्न करके चले गये।

पादरी स्काट से शास्त्रार्थ—१४ अगस्त को महर्षि बरेली चले गये। यहां २५-२६-२७ अगस्त को पादरी टी. जी. स्काट से १ आवागमन २ अवतार ३ और ईश्वर पाप क्षमा करता है इन तीन विषयों पर शास्त्रार्थ हुआ। यह शास्त्रार्थ पुस्तकालय में हुआ। तीनों दिन शांतिपूर्वक शास्त्रार्थ होता रहा।

मुंशीराम का सौभाग्य—आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द (मा० मुंशीराम) के पिता इन दिनों बरेली के कोतवाल थे। मुंशीराम काशी में पढ़ते थे। छुट्टियों के कारण वह बरेली में ही थे। उस समय मुंशीराम घोर नास्तिक थे। इनके पिता को लड़कों के नास्तिक होने का दुःख था। महर्षि के भाषण सुनकर

उन्होंने मुंशीराम को उनके व्याख्यानों में जाने की प्रेरणा की। 'ओ३मु' के व्याख्यान में पिता-पुत्र दोनों उपस्थित थे। महर्षि की दिव्य छटा देखकर मुंशीराम स्तम्भित रह गया। इसके पश्चात् वे किसी व्याख्यान से अनुपस्थित नहीं रहे। फिर तीन दिन तक प्रश्नों का समाधान करते रहे। ५ मिनट में ही निरुत्तर हो जाते तो यह कहकर चले जाते—"महाराज! आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है। आपने मुझे निरुत्तर तो कर दिया, परन्तु मुझे विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर है।" अन्तिम दिन महर्षि ने कहा—"देखो तुमने प्रश्न किये मैंने उत्तर दिये। तुम्हारा विश्वास ईश्वर पर तब होगा जब कि ईश्वर तुम्हें स्वयं अपने ऊपर विश्वास करायेगा।" और सचमुच ही यह हुआ। घोर नास्तिक मुंशीराम आगे चलकर ऐसा आस्तिक हुआ कि संन्यास-आश्रम में अपना नाम भी 'श्रद्धानन्द' पसन्द किया।

कोई अप्रसन्न हो हम तो सत्य ही कहेंगे—एक दिन महर्षि पुराणों के दोष दिखला रहे थे। उपस्थित श्रोताओं में कलक्टर कमिश्नर, पादरी स्काट आदि अंग्रेज भी थे जो बड़े विनोद से हंस रहे थे। महर्षि ने पुराणों के पश्चात् "अब किरानियों की सुनो" कहकर बाइबल से मरियम की कथा सुनाई। कमिश्नर ने अगले दिन बा० लक्ष्मीनारायण खजांची से कहा—"स्वामी जी को कह दें यदि हिन्दू-मुसलमान उत्तेजित हो गये तो व्याख्यान बन्द हो जायेंगे।" बा० लक्ष्मी-नारायण ने बड़ी कठिनता से अटक-अटक कर महर्षि से कहा—"अंग्रेजों को अप्रसन्न करना भी अच्छा नहीं।"

अगले दिन महर्षि ने आत्मा के स्वरूप पर व्याख्यान देते हुए सबको सुना कर कहा—"लोग कहते हैं, सत्य को प्रकट न करो, कलक्टर क्रुद्ध होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा। अरे! चक्रवर्ती राजा क्यों न हो हम तो सत्य ही कहेंगे।" बहुत देर तक महाराज के शब्द भवन में गूंजते रहे—स्तब्धता छा गई थी वहां।

गिरजाघर में—पादरी स्काट महर्षि के भक्त बन गये थे। उन्हें महर्षि भक्त स्काट कहने लगे थे। इस दिन रविवार के कारण स्काट गिरजाघर गये थे। व्याख्यान की समाप्ति पर महर्षि भी वहीं पहुँच गये थे। पादरी साहब अपना उपदेश समाप्त कर पाये थे। १८० के लगभग श्रोता थे। महर्षि को आता देख पादरी साहब वेदी से उतर आये और महर्षि से उपदेश की प्रार्थना की। महर्षि ने खड़े ही खड़े २० मिनट तक मनुष्यपूजा का खण्डन किया।

स्वलिखित जीवन-चरित्र—थियोसोफिस्ट भक्तों का आग्रह था कि महर्षि अपना आत्मचरित लिखें—पहल पहल बरेली से महर्षि ने आत्मचरित का कुछ भाग भिजवाया। इसका अंग्रेजी अनुवाद 'थियोसोफिस्ट' में छपता रहा।

फिर अंगद शास्त्री—शाहजहांपुर में आर्यसमाज की स्थापना पहले ही हो चुकी थी। महर्षि जब ४ सितम्बर को वहां पधारे तो आर्य पुरुषों ने प्रेम व श्रद्धापूर्वक स्वागत किया। खजांची साहब के बंगले पर व्याख्यान व शंका समाधान का विज्ञापन कर दिया गया। सायंकाल पांच से सात तक व्याख्यान होने लगे।

पंडित लक्ष्मण शास्त्री ने एक दिन कहा कि *वेद तो शंखासुर ले गया*। महर्षि ने उत्तर दिया कि हमने आपके आलस्य और प्रमाद रूपी शंखासुर का वध करके वेद जर्मनी से मंगाये हैं और यह सामने रक्खे हैं।

जब लक्ष्मण शास्त्री की यह अवस्था देखी तो पौराणिक दल ने पीलीभीत के पंडित अंगदराम शास्त्री को शास्त्रार्थ के लिए बुलवाया सितम्बर को पंडित अंगदराम ने शास्त्रार्थ के लिये चिट्ठी लिखी। परन्तु पंडित अंगदराम (१) अपने ही स्थान पर शास्त्रार्थ करने और (२) ऐसे समय शास्त्रार्थ करने का आग्रह करते रहे जिस समय कि

राजकर्मचारी तथा शिक्षित वर्ग शास्त्रार्थ में सम्मिलित नहीं हो सकते थे। परिणाम यह हुआ कि नियमों का निर्णय ही न हो सका।

शाहजहांपुर से महर्षि १७ सितम्बर को प्रस्थित होकर १८ को लखनऊ पहुँचे। वहां छः दिन ठहर कर २४ सितम्बर को कानपुर ठहरे और २५ सितम्बर को फर्रुखाबाद पहुँच गये।

गोवध में हमारा अपराध-अनैक्य—फर्रुखाबाद में आर्यसमाज की स्थापना महर्षि के आगमन से श्रावण कृष्णा ९ सम्वत् १९३६ को हो चुकी थी। इस बार यहां पर तीन व्याख्यान हुए, जिनके विषय—गोरक्षा, दान का महत्व और धर्म थे। गोरक्षा के संबन्ध में महर्षि ने गोवध से होने वाली हानियों का वर्णन करते हुए कहा कि इसमें केवल शासकों का ही अपराध नहीं है हमारा अनैक्य भी हमारे अपराध का कारण है।

तीन व चार अक्टूबर को महर्षि की अनुमति से आर्यसमाज के लिए धन एकत्रित किया गया। इस समय एक हजार रुपया वेदभाष्य के लिये तथा एक हजार रुपया आर्यसमाज की सहायता के लिए एकत्रित हुआ।

छः अक्टूबर को २५ प्रश्न बाबू बलदेवप्रसाद बी० ए० के नाम से महर्षि को मिले। ७ अक्टूबर को इनके उत्तर लिखवाकर तथा आर्यसमाज के अधिवेशन में सुनाकर १२ अक्टूबर को बाबू बलदेव-प्रसाद के पास भेज दिये गये।

कुछ महत्वपूर्ण प्रसंग—उन दिनों बाजार की नाप हो रही थी। बीच में एक मढ़िया थी यहां लोग धूप-दीप दिया करते थे। बाबू मदन मोहनलाल ने महर्षि से कहा कि आप स्काट साहब से कहकर इस मढ़िया को निकलवा दीजिये। महर्षि ने उत्तर दिया कि मेरा काम

लोगों के मन-मन्दिरों से मूर्तियां निकलवाना है, ईंट पत्थर के मंदिरों को तोड़ना फोड़ना नहीं।

एक दिन महर्षि ने देखा कि एक गरीब बुढ़िया ईंधन के अभाव में अपने युवा पुत्र के शव को गंगा में बहाकर चली गई। देश की इस निर्धनता पर महर्षि की आंखों में आंसू आ गये। वे प्रायः कहा करते थे कि देश की भूमि इतनी उपजाऊ है कि अधिकार (स्वराज्य) प्राप्त करने पर थोड़े ही समय में देश फिर से धनवान हो जायगा।

फर्रुखाबाद से महर्षि पुनः कानपुर आये। यहां वेदभाष्य की रचना के कार्य में लगे रहे। कानपुर में इनके आगमन का परिणाम आर्यसमाज की स्थापना हुआ।

१७ अक्टूबर को महर्षि प्रयाग पहुँचे और छः दिन ठहरे। अधिक समय वेदभाष्य की रचना में बीता। व्याख्यान केवल तीन हुए-सृष्टि उत्पत्ति, पुनर्जन्म, मृतक श्राद्ध और नवीन वेदान्त विषय रहे। इन दिनों महर्षि को ज्वर था। संग्रहणी रोग से भी छुटकारा नहीं हो पाया था।

२३ अक्टूबर को महर्षि मिर्जापुर पहुँचे। यहां रुग्ण होते हुए भी तीन व्याख्यान दिये। इन व्याख्यानों में आपका स्वर सदा की भांति उच्च और स्पष्ट था। दानापुर के भक्त महर्षि को देर से बुला रहे थे। यहां से महर्षि ३० अक्टूबर को दानापुर पहुँचे।

दानापुर के उत्साही भक्त—बाबू जनकधारीलाल, माधव लाल आदि दानापुर निवासी सज्जन सं० १८६४ से ही मूर्तिपूजा से विरक्त थे। वे अपने आपको विचारपन्थी कहते थे। मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकें पढ़ कर इन्होंने अपनी सभा का नाम हिन्दू सत्य सभा रक्खा। कुछ दिन पश्चात् काशी में आदिम सत्यार्थ

प्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास के कुछ रद्दी प्रूफों को पढ़कर बाबू जनकधारीलाल महर्षि के विचारों की ओर आकृष्ट हुए। इसके पश्चात् इनकी सभा में सत्यार्थ प्रकाश की प्रति मंगाई गई। फिर जनवरी सन् १८७८ में ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका पढ़ कर इस सभा के सभासद् पूर्णतया वैदिक धर्मी बन गये। महर्षि से पत्र व्यवहार आरम्भ हो गया और उनके आदेशानुसार अप्रैल सन् १८७८ में हिन्दू सत्य सभा का नाम आर्यसमाज रख दिया गया।

इस परिस्थिति में ३० अक्टूबर सन् १८७६ को जब महर्षि दानापुर पहुँचे तो रेलवे स्टेशन पर सैकड़ों भक्तों और उत्सुक दर्शनार्थियों ने आपका स्वागत किया।

चतुर्भुज की धूर्तता—यहां पर २ नवम्बर से ६ नवम्बर तक विविध विषयों पर चौदह व्याख्यान हुए। पौराणिक पंडित चतुर्भुज ने शास्त्रार्थ तो क्या करना था महर्षि को पीटने का षड्यन्त्र रचा। एक दिन व्याख्यान के पश्चात् शास्त्रार्थ के नियम निर्धारण करने के बहाने कुमारी सहाय के घर पर महर्षि को बुलवा भेजा। महर्षि ने वहां जाकर देखा चतुर्भुज का पता न था। वहां एकत्रित उपद्रवी लोगों के रंग-ढंग को देखकर महर्षि के भक्त उन्हें वापस ले आये। इस घटना के पश्चात् अधिकारी लोग भी सजग हो गये। उन्होंने महर्षि के व्याख्यानों में शान्ति-स्थापना का ध्यान रक्खा।

गोभक्षक की प्रतिज्ञा—जोन्स साहब ने गोवध की हानियां समझकर गो मांस न खाने की प्रतिज्ञा की। इसके अतिरिक्त आप के उपदेशों के प्रभाव से यहां अनेक लोग आर्यसमाज के सभासद् बने।

काशी में व्याख्यानों पर प्रतिबन्ध—दानापुर से महर्षि उन्नीस नवम्बर को काशी के लिए प्रस्थित हुए। एक दिसम्बर को

आप के आगमन की सूचना तथा व्याख्यान के विज्ञापन नगर की गली-गली, हाट-बाजार सब जगह लगा दिये गये। १५ दिसम्बर को कर्नल अलकाट और मैडम ब्लैवैट्स्की महर्षि से मिलने काशी पहुँचे। १६ दिसम्बर को राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द महर्षि से भेंट करने आये।

महर्षि ने जब देखा कि विज्ञापन होते हुए भी किसी ने शास्त्रार्थ के लिए आने का साहस नहीं किया तो उन्होंने २० सितम्बर को बंगाली टोला के स्कूल में व्याख्यान देने की घोषणा की। इस समय कर्नल अलकाट का भी वहीं पर व्याख्यान होना था। महर्षि के व्याख्यान की घोषणा से पौराणिकदल क्षुब्ध हो उठा। मजिस्ट्रेट मिस्टर बाल ने उनकी प्रार्थना पर बिना अनुसंधान किये ही महर्षि के धार्मिक व्याख्यानों को रोक दिया। उस सभा में केवल कर्नल का व्याख्यान हो सका।

२१ दिसम्बर को महर्षि ने मैजिस्ट्रेट को एक पत्र लिखकर अपने व्याख्यान पर लगे प्रतिबन्ध का कारण जानना चाहा। उसका कोई उत्तर न मिलने पर चीफ कमिश्नर व लैफ्टीनैंट गवर्नर को निवेदन पत्र भेजे गए। सरकार ने २४ फरवरी के पत्र में इस निवेदन पत्र को ठुकरा दिया।

पत्रों में आन्दोलन—इधर मैजिस्ट्रेट की इस आज्ञा के विरुद्ध "स्टार" काशी, पायोनियर, थियोसोफिस्ट आदि पत्रों ने खूब आंदोलन किया। आखिर यह प्रतिबन्ध हटा लिया गया। २१ मार्च के महर्षि के व्याख्यान से पहले इस निमित्त पूर्वतः नियत भेंट में मिस्टर बाल ने महर्षि को बताया कि मौहर्रम की छुट्टियों में व्याख्यान देना उन के लिए निरापद न था।

वैदिक यन्त्रालय की स्थापना—इन्हीं दिनों माघ शुक्ला २ संवत् १९३६ (१२ फरवरी सन् १८८०) को लक्ष्मी कुण्ड पर वैदिक यन्त्रा-

लय की स्थापना की गई। यन्त्रालय स्थापित करने का विचार देर से चल रहा था। अकेले आर्यसमाज फर्रुखाबाद ने इसके लिये ३१५० रु० दिए। वैदिक यन्त्रालय के मकान की छत पर ही २१ मार्च से १५ अप्रैल तक बीस व्याख्यान हुए। अन्तिम व्याख्यान के समय १५ अप्रैल को आर्यसमाज की स्थापना भी हो गई।

योग के चमत्कार या तमाशे—'पायोनीयर' के सम्पादक मि० सिनेट ने एक पत्र लिखकर महर्षि की चामत्कारिक योग शक्तियां देखने की इच्छा प्रकट की। सम्भवतः यह उत्सुकता उनके और कर्नल आल्काट के वार्तालाप का परिणाम हो; एक मिनट सोचकर महर्षि ने उत्तर लिखाया कि उन्हें आने की आवश्यकता नहीं, हम ही उनसे मिल आवेंगे। तदनुसार वे एक दिन प्रयाग गए और मि. सिनेट से भेंट करके लौटे। मि० सिनेट को इस भेंट से निराशा ही हाथ लगनी थी। महर्षि चमत्कारों में विश्वास तो रखते ही न थे, विपरीत वे जादू-टोनों आदि के घोर विरोधी थे।

महर्षि ने १४ जुलाई १८८० को जो पत्र मेरठ से कर्नल आल्काट को लिखा उसमें सिनेट से हुई इस भेंट का उल्लेख है। महर्षिने लिखा—"मैंने सिनेट साहेब को कहा था कि वह ठीक है। क्योंकि मैं इन तमाशों को देखना दिखलाना उचित नहीं समझता। चाहे वे हाथ की चालाकी से हों चाहे योग की रीति से हों।" क्योंकि योग के किये कराये बिना किसी को भी योग का महत्व वा इसमें सत्य प्रेम कभी नहीं हो सकता, वरन सन्देह और आश्चर्य में पड़ कर उसी तमाशे वाले की परीक्षा और सब सुधार की बातों को छोड़ तमाशे देखने को सब दिन चाहते हैं उसके साधन करना स्वीकार नहीं करते। जैसे सिनेट साहब को मैंने न दिखलाया न दिखलाना चाहता हूँ......जो मैं इसमें प्रवृत्त होऊं तो ऐसी लीला मेरे साथ भी लग जाती......"

हिन्दुओं की एकता का मूलमन्त्र—डिप्टी सीताराम प्रसिद्ध साहित्यसेवी महर्षि के सत्संग में आते थे। इनकी सम्मत्ति थी कि स्वामी दयानन्द सरीखा कोई सुधारक उत्पन्न नहीं हुआ। वेद प्रतिष्ठा और गोरक्षा दो ही ऐसे विषय हैं जिन पर सारे हिन्दू एकमत हो सकते हैं, स्वामी जी ने विशेषतः इन दोनों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखा था।

स्त्री से बात करते समय—एक दिन एक स्त्री आकर महर्षि से बातें करने लगी। महर्षि नीचे दृष्टि किए बातें करते रहे। महर्षि कभी स्त्रियों के मुख की ओर देख कर बातें नहीं करते थे।

छूआ खाने में पाप नहीं—कुछ अंग्रेज मिलने आए, महर्षि भोजन कर रहे थे। उन्होंने पूछा कि यदि हम आपका भोजन छू दें तो आप खायेंगे या नहीं ? महर्षि ने कहा—नहीं खायेंगे। कारण कि इसमें कोई पाप या दोष नहीं; परन्तु हमारे नौकर व विद्यार्थी भाग जायंगे—लोक में अपवाद होगा कि स्वामी कृष्टान होगया।

अलीगढ़ में सर सय्यद अहमदखां के घर भोजन में भी महर्षि सम्मिलित नहीं हुए थे। वहां भी आपने यही कहा था कि इस भोजन में कोई पाप अथवा दोष नहीं है, परन्तु लोकापवाद जरूर है।

संग्रहणी का कारण-विष—अनूपशहर के निवासी पंडित भगवान वल्लभ वैद्य महर्षि से मिलने आये। महर्षि ने अपनी नाड़ी दिखाई—संग्रहणी रोग बताया और इस बात का अनुमोदन किया, उन्होंने कहा कि कई बार दिए गए विष का ही यह परिणाम है।

खण्डन का उद्देश्य—महर्षि ने श्री हरिश्चन्द्र को बताया कि मेरा खण्डन हित और सुधार के लिए है—द्वेषमूलक नहीं।

"भ्रमोच्छेदन"—पूर्व विज्ञापन के अनुसार बैशाख कृष्णा ११ संo १९३७ विo को महर्षि काशी छोड़ रहे थे। ठीक रेल पर जाने के समय

राजा शिवप्रसाद सी. एस. आई इन्स्पैक्टर शिक्षा विभाग ने एक छपी हुई प्रश्नावली भेजकर उत्तर मांगा–महर्षि ने फिर भी उन्हें बुला भेजा कि अपने प्रश्नों का उत्तर सुन जावें। वास्तव में प्रश्नावली स्वामी विशुद्धानन्द की कृति थी। राजा साहब में इतनी योग्यता कहां थी। इस प्रश्नावली के उत्तर में पीछे से 'भ्रमोच्छेदन' नामक पुस्तक लिख कर प्रकाशित की गई।

आर्य-जीवन का निर्माण—जहां आर्यसमाज न हो वहां धार्मिक जीवन परिपुष्ट करने का उपाय बताते हुए महर्षि ने कहा—आर्य अकेला हो तो स्वाध्याय करे, दो हों तो परस्पर प्रश्नोत्तर व संवाद करें, तीन हों तो सत्संग एवं धार्मिक ग्रंथ का पाठ करें।

नवनिर्माण नहीं, संशोधन मेरा उद्देश्य—२ मई को महर्षि लखनऊ पहुँच गए। यहां ९ मई को आर्यसमाज की स्थापना हो गई। प्रारम्भ में ९ सभासद् बने जिनमें एक मुसलमान भी था। पंडित रामाधार ने एक दिन समाज की मन्थर प्रगति पर निराशा प्रकट की तो महर्षि ने कहा—मैं ब्राह्म समाजियों की भांति समाज के जातीय जीवन को सर्वथा पृथक् कर बिलकुल नया नहीं बनाना चाहता; उसमें आवश्यक संशोधन करना चाहता हूँ।

इस बार भी यहां अनेक व्याख्यान हुए। एक दिन व्याख्यान के पश्चात् मार्ग में एक अत्यन्त जराजर्जरित बुढ़िया को भीख मांगता देख महर्षि की आंखों में आंसू छलक उठे, स्वर्ण भूमि की यह दीन दशा! बेचारी बुढ़िया को यह भी ध्यान नहीं कि जो स्वयं मांग कर खाता है, उसी के सामने हाथ फैलाती है। महर्षि इन दिनों रुग्ण थे, पंडित गंगाधर इन्हें मठा पिलाया करते थे।

यन्त्रालय-या-गृहस्थ—महर्षि ने १२ फरवरी सन् १८८० को वैदिक यन्त्रालय की स्थापना की। शाहजहांपुर आर्यसमाज के

मन्त्री मुन्शी बख्तावरसिंह को इसका मैनजर बनाया उस समय महर्षि ने ये उद्गार प्रकट किए—"आज हम पतित हो गए, आज हम गृहस्थ हो गए।" फिर हम देखते हैं कि इसी वर्ष १ दिसम्बर को आगरा से पण्डित कृपाराम को लिखे गए पत्र से ज्ञात होता है कि इस समय मुन्शी बख्तावरसिंह पर जाल साजी का सन्देह हो चुका था। ६ फरवरी १८८१ को सेठ कालीचरण को इसी संबन्ध में पत्र लिखा—"पंचायत करके हिसाब का फैसला कर दिया तो अच्छा है नहीं तो यह मामला अदालत में अवश्य जावेगा। आप फिर हमको कोई दोष न देना क्योंकि हम ने केवल परमार्थ और स्वदेशोन्नति के *कारण अपने समाधि और ब्रह्मानन्द को छोड़ कर यह कार्य ग्रहण किया है।"* सेठ निर्भयराम को लिखा—जो तुम इसका प्रबन्ध न करोगे तो ऐसी लुट मार से हमारे पास के पुस्तकादि भी कोई लूट लेगा। फिर तो हम अपने समीप कुछ भी न रख सकेंगे और वेदभाष्य आदि सब काम छोड़ देंगे। केवल एक लंगोटी लगा आनन्द में विचरेंगे।

महर्षि सरीखे परोपकारप्रिय परन्तु सत्यवक्ता एवं सत्यकर्मा व्यक्ति के जीवन में संघर्ष के अतिरिक्त और सम्भव ही क्या था! पंडितों से संघर्ष कर उन्होंने वेदप्रतिष्ठा का मार्ग प्रशस्त किया। पंजाब व रुहेलखण्ड में उन्होंने सुधारकों तथा ईसाई मुसलमानों से शास्त्रार्थों की धूम मचा कर पहले प्रकार के संघर्ष से मिलते-जुलते दूसरे संघर्ष का मार्ग पार किया। अब जब इन बाहरी संघर्षों में उन का मार्ग कुछ कुछ स्पष्ट एवं सम हो चला तो संगठन के भीतरी संघर्ष का सूत्रपात हो गया।

इस भीतरी संघर्ष में 'वैदिक यन्त्रालय' के प्रबन्ध की समस्या उन की चिन्ता का सब से प्रधान विषय था। इस समय के पत्र व्यवहार से स्पष्ट विदित होता है कि एक ओर तो वे चन्दे के लिए यत्नशील हैं

और दूसरी ओर ये इस तरह लूट लेने वाले उन्हें तंग कर रहे हैं। वैदिक यन्त्रालय के प्रबन्ध की चिन्ता भी उन्हें पर्याप्त कसा रखती थी। कहीं तो 'वेदभाष्य' की छपाई के लिए निर्देश देना–इस समय पर छापो—अमुक बात छापने के योग्य न थी—क्यों छापी? छापने योग्य क्यों नहीं छापी?—आदि; सच-मुच एक बड़े गृहस्थ का जंजाल उन के सिर पर आ पड़ा था।

मुंशी इन्द्रमणि और 'वैदिक-निधि— इन्हीं दिनों महर्षि ने मुंशी इन्द्रमणि के मुकदमे के लिए निधि का उद्घाटन किया। मुंशी जी ने इस्लाम की आलोचना में साहित्य की रचना की थी। जुलाई सन् १८८० में इन पर इस साहित्य के कारण ५००) रु० अर्थ-दण्ड हुआ। ये भागे-भागे मेरठ में महर्षि की सेवा में पहुँचे। कई विषयों में महर्षि से मतभेद होते हुए भी ये मूर्तिपूजा के विरोधी एवं वेद के प्रति आस्थावान् थे और महर्षि की अनुमति से मुरादाबाद आर्यसमाज के प्रधान थे। महर्षि ने मुंशी जी के मामले को वैदिक धर्म की रक्षा का प्रश्न मान कर इस के लिए चन्दा आदि द्वारा प्रयत्न आरम्भ किया। उन्होंने २९ नवम्बर सन् १८८० को आगरा से मुंशी इन्द्रमणि को पत्र में स्पष्ट लिखा "यह चन्दा का रुपया वैदिक फंड (निधि) कहलायेगा और आर्यों के लिए इस फंड में जमा होता रहेगा।" महर्षि की प्रेरणा से 'पायोनियर' के सम्पादक मि. सिनेट ने भी मुंशी इन्द्रमणि के पक्ष में आन्दोलन किया। कर्नल अल्काट ने भी प्रयत्न किया। परिणाम स्वरूप अन्त में सारा अर्थ दण्ड क्षमा कर दिया गया। परन्तु मुंशी इन्द्रमणि ने न तो महर्षि के साथ मित्रता का निर्वाह किया न आर्यसमाज से। उन्होंने इस निधि को निजी सम्पत्ति समझा और हिसाब नहीं दिया। महर्षि को अन्त में इस फंड की भी समाप्ति करनी पड़ी। मुकदमे के पश्चात्, आर्यसमाज को प्राप्त हुए धन का हिसाब प्रकाशित कर शेष ५५२–)। में से बहुत

सा रुपया तो दाताओं की इच्छानुसार उन्हें वापस दे दिया—कुछ ने शेष रुपया उपदेशक मण्डली को दे दिया। इस प्रकार महर्षि का 'आर्य-रत्नानिधि' का यह स्वप्न-स्वप्न ही रह गया।

मुंशी इन्द्रमणि व उनके शिष्य इसके पश्चात् महर्षि तथा आर्य समाज के कट्टर विरोधी बन गये। आर्यसमाज मुरादाबाद ने २६ मई सन् १८८२ को उन्हें आर्यसमाज की सदस्यता से पृथक् कर दिया गया।

इसी प्रकार की तीसरी समस्या थियोसोफिकल सोसाइटी से आर्य समाज के सम्बन्ध की भी है। हम यहां इस तथा दो-एक और महत्त्व-पूर्ण घटनाओं की आलोचना से पहले महर्षि के जीवन की इस काल-२० मई सन् १८८० से लेकर १० मार्च सन् १८८१ तक का संक्षिप्त विवरण यहां देना आवश्यक समझते हैं।

फर्रुखाबाद से आगरा तक

साढ़े आठ महीने का यह समय फर्रुखाबाद से आगरा तक की यात्रा में बीता। सब मिला कर ८ स्थानों पर महर्षि गये। फर्रुखाबाद, मेरठ और देहरादून में एक एक महीने से अधिक तथा आगरा में ३ महीने से अधिक समय व्यतीत हुआ। मुजफ्फरनगर में १५ दिन और मैनपुरी में ५ दिन रहे।

फर्रुखाबाद में—यहां महर्षि २० जून सन् १८८० से ३७ जून तक रहे। यहां की यह उनकी अन्तिम यात्रा सिद्ध हुई। पांच व्याख्यान २४ से २८ मई तक सेठ माधोलाल के बाड़े में हुए। भीड़ की अधि-कता के कारण श्रोता वापस लौट जाते थे।

जून के महीने में अनेक व्याख्यान हुए। अन्तिम व्याख्यान २७ जून को हुआ जिसमें वेदों का ईश्वरोक्त होना सिद्ध किया गया। वेदों के शुद्धभाष्य होने की शीघ्रता का भी अनुरोध किया। व्याख्यान के पश्चात् बाबू दुर्गाप्रसाद के मित्र मुंशी हरनारायण के प्रस्ताव

पर महर्षि के वेदभाष्य में सहायतार्थ २७०) वार्षिक के हिसाब से
पांच वर्ष का १२५०) रु० चन्दा उसी समय एकत्र हो गया। वेद-
भाष्य के ११ ग्राहक बने। एक धर्मार्थ कोष की स्थापना हुई जिसमें
अन्य लोगों के अतिरिक्त प्रस्तावक बाबू दुर्गाप्रसाद ने ५००) रु० की
सहायता दी।

मैनपुरीमें अमृत वर्षा—यहां महर्षि एक जुलाईको पहुँचे। यह महर्षि
का प्रथम आगमन था; दर्शनार्थियों का क्रम प्रातः से १०-११ बजे
रात तक लगा रहता था। दो दिन उपदेशके पश्चात् ३-४जुलाई को दो
महत्वपूर्ण व्याख्यान धर्म तथा ईश्वर पर हुए। ५ जुलाई को इन्हीं
पर शंका समाधान हुआ। कलक्टर और जज तीनों दिन व्याख्यानों
में आरम्भ से अन्त तक उपस्थित रहे। मिर्जा अहमदअली बेग ने
महर्षि को कोटिशः धन्यवाद दिया। नागरिकों की इच्छा थी कि कुछ
दिन और उपदेश श्रवण करते परन्तु महर्षि को अवकाश नहीं था।
६ जुलाई को घोड़ा गाड़ी में सवार हो एक दिन भारौल ठहरते हुए ८
जुलाई को मेरठ पहुँच गये। महर्षि के जाने के पश्चात् ११ जुलाई को
यहां आर्यसमाज की स्थापना हुई।

मेरठ में सवा महीना—इस बार मेरठ में महर्षि ८ जुलाई
से १४ अगस्त तक मेरठ छावनी में लाला रामशरणदास की कोठी में
ठहरे। शंकासमाधान के अतिरिक्त सप्ताह में दो व्याख्यान देते रहे।
(१) सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण की अशुद्धियां प्रकाश में आरही
थीं—उनके विषय में निश्चय कर उसकी अप्रमाणिकता का विज्ञापन
दे दिया गया। (२) अपना पहला स्वीकार पत्र (वसीयत नामा) यहीं
पर लिखा जिसकी रजिस्ट्री १६ अगस्त सन् १८८० को मेरठ में हुई।
उत्तराधिकारी के रूप में परोपकारिणी सभा की स्थापना की। इसके
प्रधान राय मूलराज एम. ए. थे। शेष सभासदों में मुंशी इन्द्रमणि

(मुरादाबाद), कर्नल अल्काट, मैडम ब्लेवेट्स्की और पं० श्यामजी कृष्ण वर्मा के नाम भी हैं। लाला रामसरणदास इसके मन्त्री थे। (३) थियोसोफिकल सोसाइटी और आर्यसमाज के सम्बन्ध में भ्रम निवारणार्थ एक विज्ञापन २६ जुलाई को प्रकाशित किया। १० सितम्बर को मेरठ में ही कर्नल ने महर्षि से भेंट की—योग-विषय में महर्षि से प्रश्नोत्तर हुए। यहां पर पहली वार कर्नल ने ईश्वर के विषय में सन्देह प्रकट किया। महर्षि को विस्मय हुआ। महर्षि ने तीन दिन तक समझाया—उन्हें ईश्वर पर शास्त्रार्थ करने के लिए भी कहा। परन्तु कर्नल १२ सितम्बर को ही लाहौर चले गये। यहां महर्षि के हृदय में कर्नल के विषय में पूरा सन्देह उत्पन्न हो गया। (४) मेरठ आर्यसमाज को उन दिनों कन्या पाठशाला के लिए सुयोग्य अध्यापिका की आवश्यकता थी। महर्षि को रमाबाई का पता लगा। वह उन दिनों कलकत्ता में थी। संस्कृतज्ञ और सुशिक्षित प्रसिद्ध थी। महर्षि का उससे पत्र-व्यवहार संस्कृत में ही हुआ। देवदत्त शास्त्री को उसे लिवा लाने के लिए कलकत्ता भेजा—परन्तु उसके लौट आने से पहले ही वह दो सेवकों (एक स्त्री, एक पुरुष) के साथ स्वयं मेरठ आगई। कुछ दिन पश्चात् उसका एक बंगाली मित्र विपिन बिहारी एम. ए. एल. एल. बी. भी आगया। रमाबाई के ४-५ व्याख्यान स्त्रीशिक्षा पर हुए। महर्षि स्वयं इन व्याख्यानों में नहीं गए। पंडित भीमसेन, ज्वालाप्रसाद, पंडित पालीराम और बाबू ज्योतिप्रसाद की उपस्थिति में वह महर्षि से वैशेषिकदर्शन भी पढ़ने लगी। परन्तु प्रतीत होता है कि वह उपरोक्त अपने मित्र बंगाली-कायस्थ से अपने विवाह को शास्त्र-सम्मत घोषित कराने के लिए आई थी। महर्षि ने उसे अपना जीवन स्त्री-शिक्षा और देशोद्धार में लगाने को कहा। महर्षि ने इसी आशा से उसे पढ़ाना भी स्वीकार किया था। परन्तु उसने यह स्वीकार न किया और उसे सम्मान पूर्वक विदा करवा दिया। पत्रों से ज्ञात होता है कि महर्षि

को उसके चरित्र पर भी सन्देह हुआ था। वह पीछे ईसाई होगई। और विधवा आश्रम स्थापित करके सैंकड़ों हिन्दू-विधवाओं को ईसाई बनाया। स्वयं रमाबाई ने देवेन्द्रबाबू को सन् १९०३ मे बताया कि "*उनका (महर्षि का) बर्ताव कृपापूर्ण और पितृतुल्य था।* हिन्दुओं के छहों दर्शनों में से वैशेषिकदर्शन को सबसे अधिक पसन्द करते थे। ......मैं धार्मिक विषयों में अव्यवस्थित थी अतः मैंने आर्यसमाज के सिद्धान्तों के प्रचार करने के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।"

मेरठ से महर्षि मुजफ्फरनगर गये—वहां लाला निहालचन्द के बंगले पर ठहरे। ला० निहालचन्द ने स्वयं मृतक श्राद्ध पर महर्षि से वार्तालाप किया। यह बातचीत अधूरी रही।

जीवन की कुछ घटनाएं—मुजफ्फरनगर में महर्षि के दस व्याख्यान हुए। यहां से लौटकर फिर ३ अक्तूबर को मेरठ के वार्षिक उत्सव में सम्मिलित हुए। लगभग ४ दिन ठहरे। इस समय महर्षि ने अपने जीवन की कुछ घटनाएं भी सुनाईं। अवधूत अवस्था में चालीस-चालीस मील चलना साधारण बात थी। बद्रीनाथ में गायत्री का जपानुष्ठान किया था। रात्रि में जब तेल न रहता था तो बाजार के दीपक के प्रकाश में पढ़ा करता था।......आदि।

देहरादून में—७ अक्तूबर को महर्षि देहरादून पहुँचे। वहां शास्त्रार्थ की बातचीत चली तो महर्षि ने कहा कि मैं अभ्यागत हूँ—मेरे स्थान पर आकर शास्त्रार्थ करने में आपको आपत्ति न होनी चाहिए। मेरे स्थान पर उपद्रव का दायित्व मेरा होगा। अपने स्थान पर ही बुलाना चाहते हैं तो मैजिस्ट्रेट की ओर से प्रबन्ध करें। कारण कि जहां कहीं पौराणिकों के स्थान पर मैंने शास्त्रार्थ किया वहीं उपद्रव हुआ है। पौराणिकों ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया।

मुसलमानों ने वेद पर आक्षेप करने का प्रस्ताव रखा तो महर्षि ने कहा कि मैं भी कुरान पर आक्षेप करूंगा। इसका मुसलमानों ने उत्तर नहीं दिया। यही हाल ईसाई पादरी गिलबर्ट उपनाम मेकमास्टर का रहा।

देहरादून में महर्षि का फोटो भी लिया गया। यहां २० नवम्बर तक रहे और शंका समाधान तथा लेखकार्य में व्यस्त रहे।

प्रचार के ढंग पर महर्षि की सम्मति—२५ सितम्बर के एक पत्र से ज्ञात होता है कि महर्षि अनुभव करने लगे थे कि आर्यसमाज के सभासद् जहां महर्षि के भ्रमण को प्रचार का उत्तम साधन मानते थे, वहां महर्षि घूमते रहने में हानि समझते थे—एक स्थान पर दो दो, एक-एक महीना ठहरने में कम हानि समझते थे। (२) पं० भीमसेन महर्षि के पास से चले गये थे—वे सम्भवतः लौटकर नहीं आना चाहते थे। (३) पं० आत्माराम जैन ने सत्यार्थ प्रकाश में वर्णित जैन धर्म सम्बन्धी आलोचना पर कुछ प्रश्न किये थे। उनका लिखित उत्तर उनके पास भेजा गया।

२१ नवम्बर को महर्षि फिर मेरठ आये और केवल ५ दिन यहां ठहरे। इस प्रवास में २३ नवम्बर को महर्षि ने एक लम्बा पत्र कर्नल अल्काट को लिखा और बताया कि "मैं तो आपसे पूर्ववत् व्यवहार कर रहा हूँ परन्तु आपका व्यवहार बदलता रहा है। पहले तो संस्कृत पढ़ने, शिक्षा लेने, सोसाइटी को आर्यसमाज की शाखा घोषित करने के लिए लिखा था।"—परस्पर परामर्श के अनुसार "आर्यसमाजस्थों को सोसाइटी में धर्मादि विषयों के लिए मिलाना उचित नहीं है।"—"आपने इसके विरुद्ध आर्यसमाजस्थों को थियोसोफिस्ट होने के लिये कितना प्रयत्न और कितना उपदेश किया।" मेरठ में बात होने के पश्चात् भी बा० छेदीलाल को अम्बाला में थियोसोफिस्ट होने के लिए क्या न कहा था।"

आगरा में— मेरठ होते हुए महर्षि आगरा पहुँचे। सुप्रसिद्ध वकील मुंशी गिरधरलाल स्टेशन से लिवा ले गये। सुविधा देखकर वहीं ठहरे। भोजन व्यवस्था के लिए पाचक एवं कहार साथ में थे ही।

२८ नवम्बर से यहां महर्षि के लगातार २३ व्याख्यान हुए। शोक है कि इनका कोई लेखबद्ध विवरण नहीं रखा गया। महर्षि की अमृत-वर्षा के परिणामस्वरूप यहां २६ दिसम्बर (पौष कृष्णा ९ सं० १९३७) को आर्यसमाज की स्थापना हो गई। व्याख्यान का दूसरा प्रवाह २३ जनवरी सन् १८८१ से २९ जनवरी तक चला–इसमें सात व्याख्यान हुए। फिर प्रति रविवार को आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संग में व्याख्यान होते रहे। होली के दिनों में दो एक व्याख्यान मुंशी गिरधारी लाल के मकान पर ही हुए। ८ दिसम्बर के एक पत्र में नगर के बाहर गोकुलपुर में 'एक छोटा सा समाज' की स्थापना का समाचार महर्षि ने ला० मूलराज एम. ए. को दिया था। १७ मार्च को यहां से रवाना होकर महर्षि भरतपुर पहुँचे।

ईश्वर का प्रतिनिधि आवश्यक नहीं—आगरे के लाट पादरी को बताया परमेश्वर सर्वव्यापक है, उसे महारानी विक्टोरिया आदि की भांति प्रतिनिधि की आवश्यकता नहीं। परमेश्वर ने अपना ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों द्वारा दिया—इन ऋषियों के प्रतिनिधि ब्राह्मण उपनिषदादि शास्त्र है। ईसा का प्रतिनिधि पोप जब भूल करे तो कौन उसका संशोधन करेगा ?" यहां गिरजा देखने के लिये महर्षि ने पगड़ी उतारना उचित नहीं समझा और बिना देखे ही लौट आये।

जीवों की परस्पर कोई नातेदारी नहीं—पुनर्जन्म पर किये आक्षेपों का उत्तर देते हुए मौलवी तुफ़ैल अहमद को बताया—पिता-पुत्री का सम्बन्ध देहों का सम्बन्ध है,जीवों की आपस में कोई नातेदारी नहीं है।

मुंशी गिरधारीलाल की दृढ़ता—ऐसी किंवदन्ती फैली की सब

धर्मों का खण्डन करने के कारण मजिस्ट्रेट ने मुंशी गिरधारीलाल से कहा कि वह महर्षि को अपने घर से निकाल दे। उधर मुंशीजी के मुवक्किल सेठ लछमनदास के गुमाश्ते नारायणदास ने तो अपने सेठ की ओर से यह मांग प्रस्तुत भी की। परन्तु मुंशीजी ने दृढ़ता से उत्तर दिया कि अपने छोटे से अतिथि के साथ भी कोई भलामानस ऐसा व्यवहार नहीं करेगा। फिर स्वामीजी तो महात्मा हैं। मैं ऐसा नीच कर्म कभी नहीं कर सकता।

एक पक्षीय व्यवस्था—नारायणदास ने, सुना है कि महर्षि से कहा था कि वे बृन्दावन जा कर वहां ठहरे किसी रामसूबा शास्त्री से शास्त्रार्थ करें। महर्षि के असहमत होने पर यह नारायणदास कलकत्ता गया और वहां जा कर इसी रामसूबा शास्त्री की महर्षि के विरुद्ध लिखी किसी पुस्तिका के आधार पर महर्षि के विरुद्ध एकतरफा व्यवस्था ले आया था। व्यवस्था की इस सभा में ३०० पंडित महर्षि से पूर्व पराजित पंडित महेशचन्द्र न्यायरत्न के नेतृत्व में २७-१-१८८१ के लगभग एकत्रित हुए। सभा का नाम 'आर्य-सन्मार्ग-दर्शिनी सभा' रखा गया। इस सभा पर नारायणदास ने १०००) रु० व्यय किये थे। इस पर सेठ और गुमाश्ते में अनबन भी हो गई थी, महर्षि और उन के उद्देश्य पर ऐसी एकतरफा कार्यवाहियों का प्रभाव तो क्या होना था।

ईश्वर किसी के आधीन नहीं—राधा स्वामी साधुओं से कहा—ईश्वर भक्तों के ही नहीं, किसी के भी आधीन नहीं है। जो भक्ति तुम लोग करते हो वह सांप्रदायिक है—इन सम्प्रदायों से लोक वा परलोक का कोई लाभ नहीं है।

'गोकरुणानिधि' और गो कृष्यादि-रक्षिणी सभा—महर्षि ने आगरा में ही 'गोकरुणानिधि' पुस्तक की रचना की जो यहीं रहते छप कर उनके पास पहुँच गई थी। रामरतन नामक एक पुजारी

ने इसकी ६७) रु० की प्रतियां बेचीं। मुन्शी गिरधारीलाल के मकान पर गो रक्षा के सम्बन्धी व्याख्यान के पश्चात् गोकृष्यादि-रक्षिणी सभा की स्थापना हुई। इसके मन्त्री मुन्शी जी बने। उसी समय ११००) रु० चन्दा भी एकत्र होगया था। चन्दा देने वालों में अनेक मुसलमान भी थे।

जनगणना की खानापूरी—उन दिनों सन् १८८१ की जन-गणना होने वाली थी। महर्षि ने ३१ दिसम्बर १८८० को आर्यसमाज मुल्तान के मन्त्री मा० दयाराम वर्मा को पत्र लिखकर जन गणना की खानापूरी के सम्बन्ध में लिखा था कि—मजहब फिरके मजहबी के खानेमें 'वैदिक', असल कौम आर्य, जाति या फिर्का—ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य और गोत्र व शाखजो जिसका हो लिखावे। जिसको गोत्र याद न हो वह काश्यप या पाराशर लिखा दे।

वैदिक यन्त्रालय का मामला—वैदिक यन्त्रालय के प्रब-न्धक मुन्शी बख्तावरसिंह के मामले को महर्षि न्यायालय में क्यों लेजाना चाहते थे इसका कुछ वर्णन उनके पत्रों के आधार पर हम ऊपर कर आये हैं। नवम्बर १८८० में ही बख्तावरसिंह पर जाल-साजी का संदेह हो गया था। मुन्शी ने स्वयं ही पंचायत फैसले के लिए कहा सो २५ फरवरी को मुन्शी जी महर्षि से आगरा में मिले। महर्षि ने कहा—मेरा निजी मामला हो तो मैं चुप हो जाता परन्तु यह तो परोपकारार्थ दी हुई सम्पत्ति का मामला है। मुन्शीजी पंचायत नामा लिखने से भी टालमटोल करते रहे और शहाजहांपुर लौट गये। बड़ी कठिनता से पंचायतनामा लिखा भी फिर उससे मुकर गये। आखिर शाहजहांपुर की अदालत में दावा किया गया। जज ने पंच फैसले का आर्डर लिखा परन्तु फिर मुन्शी की जवाबदेही पर महर्षि का दावा खारिज कर दिया। इससे आगे कोई कार्रवाही न होने के

कारण मुन्शीजी वैदिक यन्त्रालय का बहुत सा रुपया हज्म करके ही बैठे रहे। मुन्शी जी के पश्चात् श्री शादीराम यन्त्रालय के प्रबन्धक बनाए गये।

यन्त्रालय प्रयाग में—६ फरवरी १८८१ को पण्डित सुन्दरलाल प्रयाग को लिखे गए पत्र से ज्ञात होता है कि यन्त्रालय अब पण्डित सुन्दरलाल जी की देख रेख में प्रयाग में चल रहा था और उसे अब और कहीं नहीं लेजाना चाहते थे।

दोष दिखाने से गुण मानो चिढ़ो नहीं—पं० भीमसेन अब प्रेस में काम कर रहे थे—यद्यपि उन्हें बार-बार चेतावनी दी जारही थी। पण्डित ज्वालादत्त को १७ जनवरी १८८१ को लिखे पत्र में महर्षि ने उसके तथा पं० भीमसेन के लिखे 'संधि विषय' की अनेक भूलें दर्शायी और लिखा—"तुम लोगों को हमारे उपदेश का गुण मानना उचित है, न कि चिढ़ जाना।"

नवयुवकों की बेकारी की चिन्ता—२० नवम्बर १८८० ई० को महर्षि ने एक पत्र ला० मूलराज जी को गुजरांवाला भेजा। इसमें लिखा—"पढ़े लिखे लोगों को भी नौकरी नहीं मिलती—या ये जीवन-निर्वाह का प्रबन्ध नहीं कर सकते। ऐसी अवस्था देखकर मैं एक कला कौशल के स्कूल की आवश्यकता विचारता हूँ। प्रत्येक पुरुष अपनी आय का १००वां भाग प्रस्तावित संस्था को दे। उस धनसे चाहे तो विद्यार्थी कला कौशल सीखने जर्मनी भेजे जावें। या वहां से आध्यापक यहां बुलाए जायं।...आदि। 'अब समय है कि आप लाला श्रीराम को कला कौशल सीखने इंग्लैंड भेज दें। इससे पहले २७ जुलाई के पत्र में लिख चुके थे "मुझे कल जर्मनी से एक महाशय का पत्र मिला है। हमारे देशीय लोगों को किस भी विषय में शिक्षा देना उसने स्वीकार किया है।"

पं० श्यामजी कृष्णवर्मा—पं० श्यामजी कृष्णवर्मा के महर्षि के शिष्य होने की बात प्रायः सर्वमान्य मानी जाती है, हम इस सम्बन्ध में एक टिप्पणी पहले भी दे चुके है। परन्तु महर्षि के विचार उस पत्र से स्पष्ट हैं जो उन्होंने १९ जुलाई सन् १८७८ ई० में उन्हें लिखे। हमारे पास रह कर वेद और वेद शास्त्र के मुख्य-मुख्य विषय देख लेते तो अच्छा रहता। आपको उचित है कि जब वहां जावें जो आपने अध्ययन किया है उसी में वार्तालाप करें और कह देवें *कि मैं कुल वेदशास्त्र नहीं पढ़ा, किन्तु मैं आर्यवर्त देश का एक छोटा विद्यार्थी हूं। और कोई बात या काम ऐसा नहो कि जिससे अपने देश का ह्रास होवे।'* इसके पश्चात् श्यामजी सब ओर से आर्थिक सहायता प्राप्त करने में असमर्थ हो मार्च सन् १८७९ के अन्त में अपनी पत्नी से आर्थिक सहायता ले इंग्लैंड चले गये। वहां भी महर्षि ने एक पत्र लिखवाया तथा स्वयं एक लिखा। इस पत्र में भी महर्षि ने देश का ही ध्यान रखा है और लिखा है कि "पार्लेमेंट में जाकर ऐसा करना कि यहां के लोगों के दुःख को वे लोग देख सकें।...आदि" परन्तु प्रतीत होता है कि श्याम जी का महर्षि के विचारों के प्रति विशेष आकर्षण नहीं था। इंगलैंड से लौट कर श्याम जी १२ वर्ष तक विभिन्न रियासतों के दीवान रहे। उनके इस समय के जीवन के सम्बन्ध में इन्दुलाल याज्ञिक लिखते हैं—"During the last twelve years of his carear in the States, Shyam ji had sunk very low far below the level of a pupil of Dayanand Saraswati and a Graduate of Oxford University." रियासतों के १२ वर्ष के जीवन में श्याम जी वस्तुत बहुत नीचे—दयानन्द के शिष्य और ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के स्नातक की योग्यता के अनुपात में बहुत अधिक नीचे उतर गया था।" पाठक इस विवरण से महर्षि और श्याम जी कृष्णवर्मा के

पारस्परिक सम्बन्ध का अनुमान कर सकते हैं।

राजाओं के सुधार का भगीरथ प्रयत्न

अजमेर की ओर प्रस्थान— १० मार्च को आगरे से चल कर १० दिन तक भरतपुर में रुके। यहां कोई व्याख्यान नहीं हुआ। २० मार्च को जयपुर में पहुँचकर गंगापोल के बाहर मदनपुरा में अचरौल के ठाकुर के बाग में ठहरे। यहां भी अचरौल के ठाकुर की हवेली में एक व्याख्यान हुआ। व्याख्यान के अन्त में ठाकुर रघुनाथसिंह के अद्वैत विषयक प्रश्न का समाधान दो घड़ी रात तक करते रहे। सत्संग और उपदेशों के प्रभाव से "वैदिकधर्म सभा" के नाम से आर्यसमाज का बीजवपन हुआ पीछे यही सभा 'आर्यसमाज' बन गई।

अजमेर में—५ मई सन् १८८१ को महर्षि अजमेर पधारे। आर्य समाज की स्थापना इस वर्ष १३ फरवरी को ही हो चुकी थी। सेठ फतहपुर के उद्यान-गृह में ठहर गये। विज्ञापन के अनुसार ८ मई से ३० मई तक प्रति दिन सायंकाल सात से नौ बजे तक २२ व्याख्यान हुए। इनके अतिरिक्त चार रविवारों को चार व्याख्यान और हुए।

पंडित लेखराम की महर्षि से भेंट—आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता स्व० पण्डित लेखराम ने पहले पहल पेशावर से विशेष रूप से आकर यहीं पर १६ मई को महर्षि से श्रद्धामय भेंट की। शंकासमाधान किया और अष्टाध्यायी की प्रति स्मृति रूप लेकर विदाई ली। महर्षि ने उन्हें समझाया—(१) परमेश्वर आकाश से सूक्ष्म है अतएव व्यापक ✓ आकाश में भी व्यापक है। (२) अन्य धर्मावलम्बियों को अवश्य शुद्ध करना चाहिए। (३) विद्युत् हर जगह है, रगड़ आविर्भूत होती है।

पापी अधिक कौन ?—अपने भक्त ठाकुर बहादुरसिंह के आग्रह से महर्षि आषाढ़ कृष्णा १२ सं० १९३८ को मसूदा पधारे। यहां व्यावर

(नया नगर) से पादरी शूलब्रेड ने आकर धर्मालाप किया। महर्षि ने पाप का कारण क्रोध आदि की प्रबलता बताया और कहा पाप अधिक करने वाले हैं—किरानी, कुरानी, पुराणी और जैनी। कारण कि प्रातः काल की प्रार्थना से रात के और सायंकाल की प्रार्थना से दिन के पाप किरानियों के धुल जाते हैं। तौबह २ और बिस्मिल्ला २ कहने से कुरानी पाक साफ होना मानते हैं; पुराणी कहीं भी किया हुआ पाप काशी में और काशी में किया हुआ पंचकोशी में नष्ट मानते हैं। जैनी तो 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' के जाप से ही पापशमन समझते हैं। फिर भला ये पाप क्यों न करेंगे ?

'आप तो साधु हैं'—५ जुलाई को रावसाहब ने जैनियों से किसी पण्डित को बुलाने के लिए कहा जो शास्त्रार्थ करता। अचानक ही साधु सिद्धकरण जी चौमासे के लिए उधर निकले। नौ जुलाई को इनकी महर्षि से मार्ग में ही भेंट हो गई। और बातें तो रही परन्तु मुख पर पट्टी बांधने की चर्चा चलते ही वे चलते बने। १२ जुलाई को महर्षि ने इनके पास तीन प्रश्न लिखकर भेजे—(१) मुख पर पट्टी क्यों बांधते हो ? (२) उष्ण जल क्यों पीते हो ? (३) जल की एक बूंद में जो स्वयं शांत है, अनन्त जीव कैसे बतलाते हो ? इन प्रश्नों के साथ महर्षि ने स्वयं पक्ष-विपक्ष में वितर्क भी लिख दिया। १६ जुलाई को इनमें से एक प्रश्न का ही उत्तर आया—उसका भी महर्षि ने प्रत्युत्तर लिख कर भेज दिया। इसके उत्तर में साधु जी ने स्पष्ट ही कह दिया 'हमारे से तो कोई उत्तर नहीं बन आता, अपां तो साधु हैं !' इस प्रकार इस धर्म चर्चा का अन्त हो गया।

यज्ञोपवीत यज्ञ—आषाढ शुक्ला १५ को किले में व्याख्यान हुआ फिर श्रावण शु० १५ तक २२ व्याख्यान यहां हुए। व्याख्यानों और जैन साधु की उत्साह-भंगता का प्रभाव यह हुआ कि वैदिक धर्म की

दीक्षा के लिये जन समूह उमड़ पड़ा। श्रावणी पूर्णमासी संवत् १९३८ को महर्षि के निर्देशानुसार वृहद् यज्ञ रचा गया। जिसमें महर्षि ने अपने हाथों से ३३ भद्र पुरुषों को यज्ञोपवीत पहनाया और धर्म की दीक्षा दी। मसूदा के जैनियों के मत त्याग का सारे मारवाड़ के जैनियों पर प्रभाव पड़ा। भाद्रपद कृष्णा दूज को भरतपुर के राजपूतों क्षत्रियों, वैश्यों कायस्थों और चारण लोगों ने महर्षि से यज्ञोपवीत ग्रहण किये। इनकी संख्या १६ थी।

लज्जास्पदप्रथा--उन दिनों तक यह प्रथा थी कि आर्य लोग अपनी कन्याएं हिन्दू से मुसलमान हुओं को व्याह देते थे। महर्षि ने इस घातक प्रथा की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया।

मसूदा के ठाकुर की महर्षि में इतनी आस्था थी। और इतना वह सीख भी गये थे। कि बाबू बिहारीलाल ईसाई जब पुनः मसूदा आये (श्रावण शुक्ला ४ को) तो उन्होंने स्वयं उससे प्रश्नोत्तर किये।

यह भी एक स्वागत था !—रियासत रायपुर से भी महर्षि को कई बार निमन्त्रण मिल चुका था। पर मसूदा के ठाकुर उन्हें छोड़ते ही न थे। अन्त में विदाई का दिन भी आया। भाद्रपद कृष्णा-९ को राव साहब ने ४००) रु० वेदभाष्य के लिये भेन्ट कर महर्षि को विदा किया। आधकोस तक ४०० मनुष्य साथ गये। स्वयं ठाकुर साहब २ मील तक साथ रहे।

मुसलमान दासी पुत्र हैं—भाद्रपद कृष्णा ९ (१८ अगस्त सन् १८८२) महर्षि मसूदा से रवाना हुए। ब्यावर स्टेशन से रेल में बैठ कर रात को रायपुर उतरे। वहां उतरते समय पैर फिसल गया—विशेष चोट नहीं लगी। रात भर स्टेशन के एक कमरे में रहे। सवेरे ८ बजे राव की गाड़ी में बैठकर रायपुर पहुँचे। राव साहब से भेंट होने पर उन्हें पता लगा कि इनके मन्त्री मुसल्मान हैं तो महर्षि

कह उठे—"आर्य पुरुषों को उचित है कि यवनों को राज मन्त्री न बनावें; ये दासी पुत्र हैं" मुसलमान बहुत बिगड़े। ५-७ दिन बाद जब काजी जी आये तो उन्होंने २८ अगस्त को भारी झुंड के साथ महर्षि के निवास स्थान पर चढ़ाई करदी परन्तु महर्षि ने बड़ी शांति से उन्हें बता दिया कि सूरा अन कबूत के अनुसार खुदा ने इब्राहीम को हाजिरा के गर्भ से, जो सारा की दासी थी, इस्माईल प्रदान किया। तो क्या वे दासी के पुत्र न थे ? मुसलमान निरुत्तर हो गये।

परन्तु महर्षि का कोई व्याख्यान किले में नहीं हुआ। न वह यज्ञ हुआ जिसके लिए चारण हरिदान ने उन्हें निमन्त्रित किया था। अचानक ठाकुर की शेखावट वाली ठकुरानी की मृत्यु का समाचार जयपुर से आ गया। महर्षि विदा होकर आ गये। यह भी एक स्वागत था !

९ सितम्बर को महर्षि *व्यावर* में विराजमान थे। २१ सितम्बर को वे फिर मसूदा चले गये। इस अन्तर में अनेक व्याख्यान हुए। पादरी शूलब्रेड और बाबू बिहारीलाल भी धर्मालाप करते रहे। व्यावर में पीछे से आर्यसमाज की स्थापना हो गई।

१५ दिन मसूदा ठहर कर ६ अक्तूबर को बनेड़ा के लिए प्रस्थित हुए। मार्ग में हुरड़ा और रुपाहेली में विश्राम किया। *रुपाहेली* के ठाकुर लालसिंह ने वेदान्त पर चर्चा की। एक दिन राटेरा रहे। १० अक्तूबर को प्रातः बनेड़ा पहुंचे।

ग्रंथ की प्रतिलिपि की—बनेड़ा के राजा गोविन्दसिंह मसूदाधीश के मामा थे। वह सुपठित थे और मसूदाधीश की इसलिये इच्छा थी कि उनका महर्षि से समागम हो। मसूदाधीश की प्रेरणा पर बनेड़ाधीश ने सम्मान पूर्वक महर्षि को निमंत्रण दिया। यहां महर्षि राजा के प्रश्नों से बहुत प्रसन्न हुए। पुस्तकालय का भी महर्षि ने उपयोग किया। यजुर्वेद की याज्ञवल्क्य शिक्षा की प्रतिलिपि महर्षि ने यहीं से

की और अपने निघण्टु का पुस्तकालय के निघण्टु से मिलान भी किया २६ अक्तूबर को महर्षि चित्तौड़ के लिए प्रस्थित हुए।

उदयपुराधीश सज्जनसिंह की सज्जनता—इन दिनों महाराणा प्रताप के वंशधर मेवाड़ाधिपति सज्जनसिंह जी उदयपुर के महाराणा थे। स्वभाव से सज्जन होते हुए भी इनका चरित्र कुछ सकलंक हो उठा था—विचार नास्तिकता की ओर झुक रहे थे। दो मुसल्मान दर्बारियों से वे बहुत प्रसन्न थे। पंडित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या और कविराज श्यामलदास इस यत्न में रहते थे कि महाराणा के चित्त से भ्रांति निकले। धर्म ग्रन्थ लेकर अपने हाथ में ऐसे रखते कि महाराणा की दृष्टि उस पर पड़ जाती। इस बहाने ही कभी-कभी धर्म कथा कहने-सुनने का अवसर उन्हें मिल जाता।

समाचार पत्रों से समाचार सुनने के प्रसंग में महर्षि दयानन्द का भी उल्लेख होने लगा। महर्षि के चरित्र एवं कार्यों में रुचि देख महाराणा के कृपापात्र मुसल्मान भी कभी-कभी महर्षि का चरित्र सुनाने लगे। इस प्रकार यह श्रद्धा की बेल धीरे-धीरे पनप रही थी। पंड्या जी के हाथ में सत्यार्थप्रकाश देख वह भी महाराणा ने सुना और महर्षि से भेंट की उत्सुकता प्रकट करने लगे।

महर्षि बिना बुलाये कहीं जाते न थे। इतने में लार्ड रिपन का दरबार हुआ—महाराणा को जी० सी० एल० आई० की उपाधि देने और चित्तौड़-खंडवा रेलवे लाइन का उद्घाटन करने के लिए। महर्षि भी राजाओं और सरदारों में धर्म प्रचार करने के लिए उधर आये; महाराणा ने तो आना ही न था। महर्षि २७ अक्तूबर को चित्तौड़ में थे।

कविराज श्यामलदास की सूचना देकर बनेड़ा से भीलवाड़ा और सोनियारा होते हुए महर्षि चित्तौड़ पहुँचे। कविराज जी ने महाराणा

की आज्ञानुसार गम्भीरी नदी के तट पर महर्षि के लिए डेरा लगवा
दिया।

शाहपुराधीश राजाधिराज सर नाहरसिंह ने पहले पहल यहीं महर्षि
के दर्शन किये और वे महर्षि के अनन्य भक्त बन गये। दरबार की
समाप्ति पर महाराणा ने महर्षि को बुलवाया। महर्षि राजनीति का
उपदेश कर लौट आये। कहते हैं कि पहली बार राणा अज्ञात रूप
से महर्षि से उनके डेरे पर ही मिले। कुछ भी हो महाराणा की सज्ज-
नता का महर्षि पर और महर्षि की निर्भयता का महाराणा पर अत्य-
धिक प्रभाव पड़ा। एक दिन महाराणा ने स्वयं महर्षि को चित्तौड़
के ऐतिहासिक स्थानों की सैर कराई और उदयपुर चलने का निमन्त्रण
दिया। महर्षि ने कहा—इस समय तो हम बम्बई जा रहे हैं। वहां
से लौटते समय सूचना देंगे। आपकी इच्छा होगी तो आजावेंगे।

ईर्ष्यालु साधु—स्वा० कैलाश पर्वत के शिष्य जीवनगिरि भी महा-
राणा के श्रद्धाभाजन थे। जब महर्षि के प्रति महाराणा ने सम्मान
प्रदर्शित किया तो वह चिढ़ गये। महाराणा ने ५००) तथा अन्य
दरबारियों ने २००) भेंट किये तो जलभुन उठे। महाराणा ने शांत
करने के लिये उन्हें भी ५००) रु भेंट देने चाहे—पर वे इतने रुष्ट
थे कि बिना लिये ही चित्तौड़ से चले गये।

महर्षि २७ अक्तूबर से २० दिसम्बर तक चित्तौड़ रहे। २१
दिसम्बर को इन्दौर पहुँचे। इन्दौरनरेश उन दिनों वहां न थे। ७ दिन
ठहर कर २७ सितम्बर को महर्षि बंबई पहुँचे। दिस

व्याख्यान कोई समझता ही नहीं—पाठकों ने देखा
महर्षि के राजस्थान-प्रवास में उन के व्याख्यानों का कम उल्लेख है।
इसका उत्तर ब्रह्मचारी रामानन्द के १३ सितम्बर के सरदार स्वरूपसिंह
को लिखे पत्र से ज्ञात होता है। स० स्वरूपसिंह उ० प० सीमाप्रांत
(कोहाट) के निवासी ऋषिभक्त थे जिनकी रायपुर में महर्षि से भेंट

हो गई थी। इसमें लिखा है कि राजधर्म व पारमार्थिक विषय में जितनी बातें महाराज जी (महर्षि) ने उपदेश की वे सब बातें राजा जी के ध्यान में जम गईं और यहां मारवाड़ देश में व्याख्यान कोई समझता ही नहीं। (२) अजमेर से १२ मई के लिखे पत्र से यह भी ज्ञात होता है कि फर्रुखाबाद में १ वर्ष से कोई और पाठशाला चल रही थी। महर्षि उसमें संस्कृत पढ़ाने पर ही बल दे रहे थे। (३) कोई नया पत्र अंग्रेजी में चलाने की चर्चा समाज के सभासद् कर रहे थे—महर्षि उसका समर्थन कर रहे थे। (४) ला० मूलराज से गोकरुणानिधि का अंग्रेजी अनुवाद करने को महर्षि ने कई बार लिखा। अन्त तक वे नहीं कर पाये। तब बंबई में वह कराया गया।

गोवध-निषेध के लिये महान् आन्दोलन

बम्बई में ६ महीने—दिसम्बर सन् १८८१ को बंबई पहुँच कर महर्षि लगभग ६ महीने बंबई ठहरे। स्टेशन पर स्वागत के लिए कर्नल आल्काट और बंबई आर्यसमाज के सभासद् विद्यमान थे। कर्नल आल्काट आग्रहपूर्वक बालकेश्वर के गोशाला स्थान पर ले गये जहां वह ठहरे थे।

इस समय महर्षि का मुख्य कार्यक्रम गोरक्षा-आन्दोलन था। उनके अधिकतर व्याख्यानों का विषय गोरक्षा और गोवधनिषेध आन्दोलन रहा। उनका विचार था कि कम से कम ३ करोड़ व्यक्तियों के हस्ताक्षरों से गोवधनिषेध का प्रार्थनापत्र साम्राज्ञी विक्टोरिया की सेवा में भेजने से यह कार्य सिद्ध हो जायगा। इसके लिये उन्होंने बंबई से चैत्र कृष्णा ६ सं० १९३८ को एक विज्ञापन गोरक्षा के लाभ और गोवध की हानियां प्रदर्शित करते हुए प्रचारित किया। इसके साथ हस्ताक्षर करने के लिये निवेदनपत्र, उसको भरने की योजना-समेत था। यह सारी सामग्री देश के राजा-महाराजों, प्रत्येक आर्यसमाज व अन्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों एवं संस्थाओं को भेजी गई। ब्रह्मचारी

रामानन्द के शब्दों में—"ऐसा आर्यावर्त के भीतर कोई देश बचा हो कि जहां दो चार स्थानों में पत्र न भेजे हों।" और अभी भेज रहे हैं। (२) जयपुर में गोवध-निषेध आन्दोलन को श्रीनन्दकिशोर द्वारा प्रोत्साहित किया। बम्बई में स्टेशन पर उतरते ही महर्षि ने कर्नल से ईश्वर विषयक मतभेद को दूर करने का आग्रह किया था। पर कर्नल ने टालमटोल में ही दो महीने बिता दिये। मार्च से महर्षि ने विशेष परिश्रम किया—पत्र लिखने पर कर्नल बम्बई छोड़ गया। अन्त में २८ मार्च को कावसजी हाल में विस्तृत व्याख्यान देकर संबद्ध-विच्छेद की घोषणा करदी। ३१ मार्च को यह घोषणा 'थियोसोफिस्टों का गोल माल पोलपाल' शीर्षक विज्ञापन द्वारा प्रसिद्ध करदी गई। (३) जैनियों ने वकील द्वारा नोटिस दिया कि सत्यार्थप्रकाश में जैन धर्म संबन्धी जो श्लोक पृ० ४०२,४०३ पर उद्धृत हैं वे झूठे हैं—अपना अपराध स्वीकार कर इन्हें निकाल दें अन्यथा अभियोग चलाया जायगा। महर्षि ने उत्तर दिया–सब कुछ जांच कर लिखा है; भूल दिखा देंगे तो अगले संस्करण में यह दूर कर दी जायगी। जैनियों ने फिर कोई उत्तर नहीं दिया। (४) वेदभाष्य में व्यापृत रहने के कारण ही प्रातः ८ बजे से सायंकाल ५ बजे तक किसी से न मिलते थे।

स्मरणीय घटनाएं व उपदेश वाक्य

—(१) कहते हैं कि मोर्वी के ठाकुर एक व्याख्यान में उपस्थित थे और महर्षि ने उन से कहा था कि व्याख्याता आप के राज्य का रहने वाला ही है। (२) भेंट का समय केवल ५ बजे सायं से रात्रि पर्यन्त था। महादेव गोविन्द रानाडे के लिए भी यह नियम नहीं तोड़ा (३) एक ब्राह्मण ऐसा था जिसे चारों वेद सस्वर कण्ठ थे—और एक ने तान पूरे पर सामवेद का गान गाया। (४) बाबू जनकधारीलाल को बताया—मन को ठहराने के लिए अपने भीतर किसी तिल वा सुई की नोक के बराबर वस्तु की कल्पना कर लो और उस पर ध्यान जमाओ। फिर उस के

टुकड़े कर के एक टुकड़े पर ध्यान जमाओ—अन्त में उसे भी उड़ा दो। यह धारणा की रीति है। (५) पं० आदित्यनारायण को उपासना की विधि पूछने पर यम-नियम का सेवन करने को कहा और बार-बार पूछने पर यही उत्तर दिया। वे एक मुकद्दमे में झूठी गवाही दे कर आये थे। (६) पेंशनर ब्राह्मण को कहा—तुम्हारी पेंशन पुत्र-कलत्र के भरण को पर्याप्त है; तुम ईसाई पादरियों के भ्रान्त प्रचार से लोगों को ईसाई होने से बचाओ। (७) पादरी कुक को शास्त्रार्थ के लिए पत्र लिखा—उसने कोई उत्तर नहीं दिया। (८) एक पंजाबी महर्षि के दर्शनार्थ बंबई आकर उन के पास ठहरा। वह दिन भर खाली पड़ा रहता था। महर्षि ने उपदेश दिया। आलसी पड़े रह कर दूसरे का अन्न खाते रहना ठीक नहीं। अपने शिष्यों से कहा—जब कोई अतिथि पानी मांगे तो गिलास में दिया करो—चाहे वह किसी भी मत का अनुयायी हो। शिष्टाचार नहीं छोड़ना चाहिए। (९) महर्षि ने श्यामजी कृष्णवर्मा को आक्सफोर्ड के पते पर संस्कृत में पत्र भेजा था। प्रो० मोनियर विलियम्स ने वहां के 'एथिनियम' पत्र में अंग्रेजी अनुवाद सहित छपवा कर महर्षि का परिचय व प्रशंसा की और लिखा कि संस्कृत भाषा आज भी आर्यावर्त में पत्रव्यवहार और दैनिक बोल-चाल की भाषा है।

फिर उदयपुर को—महर्षि १९ जून के पश्चात् किसी दिन चल कर २५ जून को खंडुआ में थे। मुंशी समर्थदान को प्रेस का प्रबन्धक बनाने का निश्चय एक पत्र में लिखा। ३ जुलाई को इन्दौर पहुँचे और ५ जुलाई को वहां से चल कर रतलाम में गये। शाहपुराधीश द्वारा कराये ४०००० हस्ताक्षर (गोवध निषेध निवेदन पर) खण्डुआ में मिले। रतलाम से चल कर जावरा में ठहरे (२) १३ जुलाई को मुंशी इन्द्रमणि के उत्तर में प्रश्नोत्तरी लिख कर छपने को द —इस में मुंशी जी के तर्क का खंडन किया गया था (३) गोरक्षा-

विषयक पत्रों के डाकमें खो जाने की शिकायत बार-बार पत्रों में की गई है। ला० रामशरणदास के पास ३०० पत्र रजिस्टर्ड डाक से भेजे और वे न मिले। (४) २५ जुलाई को महर्षि चित्तौड़गढ़ पहुँच गये। (५) वहां से १० अगस्त को उदयपुर पहुँचे। उदयपुर से जो पत्र कालीचरण जी को लिखा उस से ज्ञात होता है कि महर्षि गो रक्षार्थ हस्ताक्षर कराने के साथ साथ *आर्य भाषा को राजकार्य में प्रवृत्त कराने के लिए भी जन आन्दोलन* चला रहे थे। १७ अगस्त को एक पत्र बाबू दुर्गाप्रसाद को भेजा है उस में इस बात का अनुरोध किया है कि बनारस, कानपुर, फर्रुखाबाद आदि स्थानों से आर्यभाषा के राजकार्यों में प्रयुक्त होने के लिए मेमोरियल भिजवावें। और लिखा—और यह *अवसर चूके तो फिर आना दुर्लभ है।* जो यह *कार्य सिद्ध हुआ तो आशा है कि मुख्य सुधार की नींव पड़ जायगी।*

महर्षि का उल्लास—उदयपुर में महर्षि १० अगस्त १८८२ से लेकर १ मार्च १८८३ तक रहे। अपनी सफलता की दृष्टि से महर्षि ने इस समय को सब से अधिक उत्तम माना। उदयपुर से लिखे गये पत्रों में वे उदयपुर नरेश पर अपने प्रभाव से सर्वथा सन्तुष्ट और अपार प्रसन्नता प्रकट करते हैं। ७ अक्तूबर को लिखते हैं— 'उपदेश सुन कर दिन का सोना, रात्रि में न सोना, दिन चढ़े उठना आदि बहुत सी बातें छोड़ दी हैं।" २९ नवम्बर को लिखा—"हमारे उपदेशानुसार अपनी दिनचर्या, राजकार्य और धर्मकृत्य भी करना आरम्भ कर दिया है। ६ दिसम्बर को लिखा—"यहां का वर्तमान समाचार बहुत अच्छा है।...समाचार बहुत ही अच्छा है।" पाठक इन शब्दों में महर्षि के उल्लास को भली भांति पढ़ सकते हैं। उदयपुर नरेश ने महर्षि से छः शास्त्र, मनुस्मृति से राजधर्म के तीन अध्याय, संस्कृत व्याकरण अनुवाद आदि सीख लिया था। दिनचर्या के सम्बन्ध में महर्षि द्वारा दिये गये अमूल्य निर्देश स्थानाभाव से हम यहां अंकित नहीं कर सके

हैं। इसका शीघ्र ही पृथक् प्रकाशन होगा; पाठक प्रतीक्षा करें।

ऐतिहासिक प्रसंग—इस अन्तर में अनेक ऐसे प्रसंग हैं जो पाठक के मन पर गहरा प्रभाव अंकित करते हैं। इनका संक्षिप्त विवरण यहां दिया जा रहा है।

कड़क कर बोले—महाराणा ने एक दिन विनीत भाव से राजनीति का स्मरण दिलाते हुए महर्षि के मूर्ति-पूजा खंडन पर आपत्ति की और कहा आप एकलिंग मंदिर के महन्त बन जावें। महर्षि की शांत प्रकृति में पूर्व का—सा उद्वेग हो उठा—कड़क कर बोले—"आप लोभ देकर सर्वेश्वर की आज्ञा भंग कराना चाहते हैं। यह छोटा-सा राज्य और उस के मंदिर जिस से मैं एक दौड़ में बाहर हो सकता हूँ—मेरे रास्ते में बाधक नहीं हो सकते।" नरेश से यही कहते बना—'मैं तो आपकी दृढ़ता की जांच कर रहा था।"

स्वदेशी वस्त्र—महर्षि स्वदेशी चिकित्सा और स्वदेशी वस्त्रों के समर्थक थे। दशहरे पर महाराणा को प्राचीन शैली की वेशभूषा में देख कर प्रसन्न हुए थे।

स्मारकचिन्ह मूर्ति पूजा है—कविराज श्यामलदास से कहा—'मेरा स्मारकचिन्ह कभी न बनवाना मूर्ति-पूजा होने लगेगी। मेरे शव की भस्म किसी खेत में डाल देना, काम आयेगी।

मैंने क्या कहा था ?—महर्षि को राजद्वार पर कुछ पटेल मिले। महाराणा और अब्दुर्रहमान जज उन्हें देख रहे थे। पटेलोंने किसी मुकदमे में महर्षि से सिफारिश करानी चाही। महर्षि के चले जाने पर जज ने पटेलों से सब बात पूछी; उन्होंने बताया कि महर्षि ने उत्तर दिया—"हम साधु हैं, हमें राजदर्बार के कार्यों से क्या सम्बन्ध ?" सुनकर महाराणा ने कहा—मौलवी मैंने क्या कहा था ? ऐसा निर्लेप पुरुष मिलना कठिन है।

समाधिस्थ रहते थे—सहजानन्द को महर्षि ने संन्यास में दीक्षित

किया था। उसने महर्षि को नौलखा बाग के समीपस्थ सरोवर में जल पर पद्मासन लगाये देखा था। वे २४ घन्टे तक असम्प्रज्ञात समाधि लगा लेते थे। समाधि के समय श्वास प्रश्वास की गति रुद्ध, शरीर निष्कम्प और मुखमण्डल पर दिव्य आभा होती थी।

अधिकारानधिकार का पचड़ा—धर्मोपदेश के सम्बन्ध में अधिकारानधिकार की बात को वह पचड़ा कहते थे। अपनी जाति और धर्म के सहस्रों व्यक्ति विधर्मी हो रहे हैं—तब हम ऐसे झमेले को क्यों लिये बैठे रहें?

एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य—पण्ड्या मोहनलाल के प्रश्न के उत्तर में महर्षि ने कहा—एक धर्म, एक भाषा और एक लक्ष्य की प्राप्ति ही भारत की पूर्णोन्नति के साधक हैं। कड़ुए उपदेशों से जाति को जगाकर, कुरीतियों और कुनीतियों को नष्ट करना ही मेरे खण्डन का उद्देश्य है। मैं जाति के हित के लिए अनेक कष्ट, गालियां, विष-पान आदि तक सह लेता हूँ।" पण्ड्या जी उत्तर सुन गद्गद् हो बोले—यदि कहीं दो चार दयानन्द होते!

महर्षि अपने साथियों की अकर्मण्यता पर खिन्न भी हो जाते थे। मुंशी समर्थनदास को लिखा—"मुझको इतना बड़ा परिश्रम, निंदा, अपमान उठाकर कौन सा स्वप्रयोजन सिद्ध करना है। यदि तुम लोग उदासीनता की बातें लिखोगे वा करोगे तो सब संसार की हानि का अपराध तुम्हारे पर होगा। मैंने जो उपकार करना निश्चित किया है, आमरण तक करूंगा ही, पुनर्जन्मान्तर में भी।

पोल से आये?—एक दिन एक ईसाई दूसरे की बात काट कर कई वार अपने प्रश्न दुहराने लगा। महर्षि ने कहा—अच्छा पहले तू ही पूछ। उसने पूछा हम कहां से आये हैं, कहां हैं और कहां जायंगे? महर्षि ने कहा—पोल से, पोल में और पोल में। उसको सोचने का मसाला दे महर्षि वार्तालाप में लग गये।

मौलवी के सात प्रश्न—मौलवी अब्दुर्रहमान जज से लिखित शास्त्रार्थ ११ सितम्बर से १७ सितम्बर तक हुआ था। महाराणाजी भी अंतिम दिन उपस्थित हुए और जज को दुराग्रही ठहराया था। यह शास्त्रार्थ विस्तृत रूप से पुस्तकों में प्रकाशित हुआ है।

"भड़ुआ समाज नहीं"—आर्यसमाज के पत्र में नाटक के प्रकाशन को रोकते हुए महर्षि ने ला० कालीचरण को लिखा—आर्यपत्र में नाटक छापना अनुचित है। यह आर्यसमाज है, भड़ुआ समाज नहीं; नाटक छापना भड़ुआपन है।

✓ *सत्यार्थ प्रकाश का संशोधन*—उदयपुर में ही महर्षि ने सत्यार्थप्रकाश का संशोधन आरम्भ किया। ६ अगस्त को भूमिका के ५ और प्रथम समुल्लास के ३२ पृष्ठ शुद्ध कर वैदिक प्रेस में छपने को भेजे।

स्वीकार पत्र—उदयपुर में ही महर्षि ने अपना अन्तिम स्वीकार पत्र (वसीयतनामा) २७ फरवरी १८८३ को लिखकर रजिस्ट्री करा दिया। परोपकारिणी सभा के नाम सारी सम्पत्ति वसीयत कर उदयपुराधीश सज्जनसिंह जी को प्रधान, ला० मूलराज जी उपप्रधान, ला० रामशरण दास मन्त्री, पण्ड्या मोहनलाल उपमंत्री तथा १९ अन्य सदस्य बनाये। श्यामजी कृष्णवर्मा का नाम इसमें भी है। महर्षि को अब भी उनसे कुछ आशाएं थीं।

महाराणा ने पुत्र जन्मोत्सव पर महर्षि की इच्छानुसार अनाथालय; वेदभाष्य आदि के लिए १८००) दान दिये। विदा के समय महर्षि को २०००) देने चाहे- महर्षि ने यह रुपया परोपकारिणी सभा के कोष में जमा कराने को कहा। अन्त में अगाध श्रद्धापूर्वक महाराणा ने मानपत्र भी भेंट किया।

बुद्धिमान् व साहसी नरपति—उदयपुर से चल कर नींबाहेड़ा और चित्तौड़ होते हुए महर्षि शाहपुराधीश के व्यक्तियों के साथ ७ मार्च को शाहपुरा के लिए चल पड़े और ९ मार्च १८८३ को

शाहपुरा पहुँच गये। शाहपुराधीश नाहरसिंहजी ने महर्षि का श्रद्धामय स्वागत किया और फिर निश्चयानुसार सायंकाल ६ बजे से रात्रि को ६ बजे तक नित्य महर्षि की सेवा में पधारने लगे। इस में एक घण्टा प्रश्नोत्तर तथा २ घण्टे पठनपाठन में व्यतीत होता था। कभी प्रातः भ्रमण में भी महाराजा साथ रहते। इस समय वे प्राणायाम की विधि सीखते थे।

शाहपुरा में महर्षि २४ मई तक रहे। इस अन्तर में व्याकरण, मनुस्मृति का राजधर्म तथा अन्य विषय पढ़ लिए थे। महर्षि ने इन के सम्बन्ध में लिखा—"(शाहपुराधीश) बड़े बुद्धिमान्, तथा राजनीति और प्रजा पालन में तत्पर साहसी और उत्साही हैं। सेवा भी प्रीति और अच्छी प्रकार करते हैं।"

निद्रा पर अधिकार—महर्षि मध्याह्न के भोजन के पश्चात् ग्रीष्मकाल में १६ और शीतकाल में १४ मिनट निद्रा लिया करते थे। निद्रा पर उन का इतना सच्चा अधिकार था कि वे लेटते ही गहरी नींद में सो जाते और ठीक १७ वें मिनट पर अंगड़ाई ले कर उठ जाते थे। फिर हाथ मुंह धो वेदभाष्य में लग जाते।

तीन प्रश्न—पाणिनी के एक सूत्र से 'ग्रावस्तुति' शब्द सिद्ध होता है। ग्राव का अर्थ यहां निश्चय ही पत्थर है। परन्तु स्तुति का अर्थ इसके उत्तम आदि गुणों का बखान है, इस से मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं होती। (२) शिव, स्कन्द, विष्णुआदि सूत्रस्थ नाम उस समय मनुष्यों के होते थे। (३) परमेश्वर सर्व व्यापक है। मूर्ति पूजक इस बुद्धि से मूर्तिपूजा करें तो घंटा-घड़ियाल को क्यों पीटें? पत्थर में यथार्थतः ईश्वर बुद्धि हो तो बालू में शर्करा भी सम्भव क्यों नहीं?

जोधपुर कैसे गये? शाहपुरा से महर्षि की इच्छा अपने भक्त मसूदाधीश के समीप जाने की थी। परन्तु उदयपुर में ही रावराजा तेजसिंह का जोधपुर से निमंत्रण मिल गया। प्रतीत होता है कि महर्षि

ने सोचा—मसूदानरेश तो अनुगत हैं ही; पहले उदयपुर और शाहपुरा की भांति जोधपुर को ही पथप्रदर्शन कराया जाय। दैवगति देखिये २८ मई को महर्षि ने अजमेर से एक पत्र मसूदाधिपति को लिखा—उस में बताया कि "रूपाहेली से खीरली का ही टिकट लिया था कि मसूदा को अवश्य ही जाना होगा। परन्तु वहां सवारी मौजूद नहीं पाई।" विधि का विधान ही महर्षि को जोधपुर लिये जा रहा था। शाहपुरा से जोधपुर तक वर्षा के कारण वे काफी मार्गकष्ट में गये-पर गये और गये। शाहपुरा से ज्येष्ठ वदी ४ सं० १६४० (२६ मई) का दिन प्रस्थान का नियत कर दिया गया।

शिष्य की चिन्ता—शाहपुराधीश, जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह के स्वभाव व चरित्र को भली भांति जानते थे। नन्हीजान नामक वेश्या में वह बुरी तरह आशक्त थे। शाहपुराधीश ने महर्षि को अस्पष्ट चेतावनी देते हुए इतना ही कहा—आप वहां जा तो रहे हैं, वेश्याओं का अधिक खण्डन मत करना।

महर्षि, जिन्होंने पाप और भय के सामने झुकना सीखा ही न था, अकड़ कर बोले—मैं बड़े कंटीले झाड़ों को नहुरने से नहीं काटता, उन के लिए तेज शस्त्र ही काम देते हैं।

विदाई के समय शाहपुराधीश ने २५०) रु० वेदभाष्य तथा ३०) मासिक वेद प्रचारार्थ उपदेशक का व्यय देने का वचन दिया तथा महर्षि की सेवा में मान पत्र अर्पित किया।

२८ मई को महर्षि अजमेर आये। यहां केवल एक दिन ठहरे—वह भी उपदेश में ही बीता। अजमेर के भक्त जोधपुर की स्थिति और वहां के निवासियों की अक्खड़ता से सुपरिचित थे। अपनी आशंका महर्षि पर प्रकट करने में वे न चूके। परन्तु महर्षि अपने वचन के पक्के थे।

अजमेर से २९ मई को प्रातः काल चल कर पाली पहुँचे। पाली

से राज्य द्वारा व्यवस्थित सवारी पर चले। वर्षा के कारण यात्रा में कष्ट हुआ। मार्ग में रोपट में पड़ाव किया—पर फिर रात को ही चल कर ३१ मई को प्रातः जोधपुर पहुँच गये। राज्य की ओर से यहां रावराजा जवानसिंह ने स्वागत किया। जोधपुर में उन्हें नजरबाग के सामने भैया फैजुल्लाखां की कोठी में ठहराया गया। डेरे पर पहुँचते ही कर्नल सर प्रतापसिंह, महाराजा के अनुज और रावराजा तेजसिंह ने अभ्यर्थना की। भोजन, विश्राम, भृत्य आदि की समुचित व्यवस्था कर दी गई। महाराजा जसवन्तसिंह के गले में पीड़ा थी अतएव वे स्वागत के लिए उपस्थित न हो सके।

उपदेशमाला—ताः २ जून से ही प्रतिदिन सायं ६ बजे से ८ बजे तक महर्षि फैजुल्लाखां की कोठी के सहन में विविध विषयों पर उपदेश सुनाते रहे। सैंकड़ों व्यक्ति सुनने आने लगे। इन उपदेशों में महर्षि क्षत्रियों के चरित्र के शोधने और गोरक्षा पर विशेष बल देते थे। राव राजा तेजसिंह ने उपदेश माला के आरम्भ में महर्षि से विनय पूर्वक निवेदन कर दिया था कि आप महाराजा के दैनिक जीवन के सम्बन्ध में कुछ न कहना। पर महर्षि अपने उद्देश्य से भला कब विचलित होते। वेश्यागमन के दोषों को भी, अन्य दोषों की भांति, कड़ी भाषा में व्यक्त किया करते थे। एक दिन वे कह उठे-*क्षत्रिय सिंह हैं और वेश्या कुतिया हैं !*

नरेश की उपेक्षा—प्रकाशित पत्रों से ज्ञात होता है कि महर्षि, नरेश व अन्य राज कुटुम्बी सरदारों की उपेक्षावृत्ति से ऊब से गये थे। शास्त्रार्थ की चर्चा भी थी। निश्चय ही वे यहां शास्त्रार्थ के ध्यान से नहीं आये थे। २३ जून को उन्होंने कर्नल प्रतापसिंह को चिट्ठी भेजी। इसमें पहले तो इस बात पर खेद प्रकट किया कि नरेश, आलस्य आदि में वर्तमान और कर्नल तथा बाबा साहब रुग्ण रहते हैं, प्रजा की रक्षा कौन करे फिर शास्त्रार्थ के प्रति अरुचि दर्शाते हुए ठीक मध्यस्थता

से उसे स्वीकार करते हुए अन्त में लिखा—इस पोपलीला की निवृत्ति करके अन्यत्र यात्रा करने का मेरा विचार है।

इसके पश्चात् २६ जून को नरेश पहली बार भेंट करने पधारे। २५) रु० और ५ अशरफी भेंट में दीं। दो-तीन बार अनुरोध करने पर कुर्सी पर बैठे—महर्षि के समीप कुर्सी पर बैठना अशिष्टता समझते थे। ६ से ८ तक वार्तालाप हुआ। महर्षि ने उपदेश रूपी गंगामें स्नान कराया। ३० जून के पत्र में लिखा है कि "श्री योधपुराधीश प्रेम-प्रीति से समागम करते हैं। दो-एक व्याख्यान भी दिये। प्रति दिन राज पुरुष तथा प्रजा पुरुष भी आते जाते हैं।"

कई रोग लगे हैं—२० जुलाई के पत्र में लिखा—"यहां का सुधार कुछ थोड़ा सा हुआ है और बहुत सा बाकी है। सम्पूर्ण परमात्मा की कृपा से हो सकता है क्योंकि यहां कई प्रकार के रोग लगे हैं। औषधि-सेवन और पथ्य बहुत कम हैं।"

जुलाई के अन्त में नरेश के नाम एक गुप्त पत्र भिजवाया जिसमें मद्यपान, वेश्यागमन आदि दोषों का दर्शन कराया था। प्रतीत होता है कि अब नरेश ने महर्षि की सेवा में आना ही छोड़ दिया था।

फिर ८ सितम्बर का जोधपुराधीश के नाम का पत्र मिलता है। इसमें लिखा है कि "मैं २०-२५ दिन रहना चाहता हूँ। यहां आकर आपका धन व्यय व्यर्थ कराया क्योंकि मुझ से आपका उपकार कुछ भी नहीं हुआ। और यह तीसरी बार लेख करने के लिए मुझ को समय मिला।" इस पत्र के दो भाग हैं। एक भाग में तो ऐसे निर्देश हैं जो किसी के विरुद्ध नहीं है। परन्तु दूसरे भाग में गुप्त समाचार लिख कर नन्ही वेश्या के प्रेम को छोड़ने, राजकुमार की शिक्षा के लिये मुसल्मान व ईसाई को न रखने, उसे देवनागरी संस्कृत और आर्ष ग्रन्थ पढ़ाने, गणेशपुरी सरीखे तथा वेश्या आदि मीठे ठगों से परे रहने का उपदेश दिया है। यह गणेशपुरी शाक्तमतानुयायी और

नन्ही रखडी का गुरु था।

इस घटना चक्र से स्पष्ट है कि विष-षड्यन्त्र एक वास्तविक घटना थी—जिसके पुरस्कर्ता राज्य के वे व्यक्ति ही हो सकते हैं जिनका उल्लेख महर्षि इस प्रकार पत्रों में करते रहे।

षड्यन्त्र का पूर्व लक्षण—कल्लू कहार द्वारा महर्षि के ५५०) के सामान की चोरी थी। इस घटना का उल्लेख १३ सितम्बर के एक पत्रांश में हुआ है। इसका विवरण २० सितम्बर के पत्र में यों दिया है—एक जाट जिले भरतपुर से दो कोश पूर्व की ओर ग्राम बिटोना, साहब राम फोजदार का बेटा और कुन्दन का छोटा भाई कल्लू नाम वाला शाहपुरे में ऐसे ही रख लिया था। वह चोरी करके भाग गया।"

२६ सितम्बर से महर्षि पत्रों में लिखने लगे कि आश्विन बदी ३० अमावस्या अर्थात् १ अक्टूबर को रवाना होंगे सवारी के प्रबन्ध के लिए भी लिख दिया। २६ सितम्बर के पत्र में यह भी उल्लेख है कि महर्षि ने २३ सितम्बर को तीन पत्र— एक-एक जोधपुराधीश, कर्नल प्रताप सिंह और रावराजा तेजसिंह को भेजा था।

दैवी घटनाचक्र देखिये—आश्विन वदी ३० को महर्षि जाने की योजना बनाते हैं। त्रयोदशीको बहुत वर्षा हो जाती है और ८-७ दिनके लिए जाना स्थगित होजाता है। १ अक्टूबर अर्थात् आश्विन वदी ३० को भी महर्षि रजिस्ट्री चिट्ठी कहीं भेजते हैं, और फिर आ पहुँचती है, कालरात्रि-अमावस्या की, जिस समय कि महर्षि अपने भक्त मसूदाधिपतिके पास जाना चाहते थे और वह हठात् अपनी ओर खींचलेती है।

आगामी हृदय विदारक घटना—का वर्णन करने से पहले इतना निर्देश करना आवश्यक समझते हैं कि इन पत्रों में महर्षि के हृदय को भलीभांति पढ़ा जा सकता है। जोधपुर में महर्षि के आगमन का उद्देश्य स्पष्टतः क्षत्रिय वंश का उद्धार ही था। जोधपर में उनका एक-एक क्षण

इसी चिन्ता में बीता। और जब बार-बार जाना स्थगित करने पर भी वे सफल नहीं हुए तो राजा को अन्तिम उपदेश दे जाने की तय्यारी में लग गये।

षड्यन्त्र का प्रयोग—कल्लू कहार की चोरी षड्यन्त्र का पहला आक्रमण प्रतीत हुआ। रियासत से एक अनभिज्ञ व्यक्ति इतना शीघ्र कहां, कैसे लापता होगया—यह आज तक रहस्य ही बना हुआ है। उस दिन पहरे वाले भी सो गये और रामानन्द ब्रह्मचारी भी खुली खिड़की के पास नहीं सोया।

३० सितम्बर अथवा १ ली अक्तूबर को रात्रि के समय यथानियम धौल मिश्र के हाथ दूध पीकर महर्षि जब सो गये तो उदरशूल के कारण उनकी निद्रा भंग हो गई। जी मचलाने लगा। तीन बार वमन हुआ। किसी को जगाया नहीं, स्वयं ही कुल्ला करके लेट जाते रहे।

अनेक लेखकों के मतानुसार यह धौल मिश्र अथवा जगन्नाथ पंडित ही था जिसने इस रात दूध में महर्षि को बिष दिया। ज्ञात होने पर महर्षि ने इसे रुपये देकर तत्काल नैपाल जाने का आदेश दिया और इस प्रकार महर्षि ने मारने वाले को भी जीवन दान देकर अपनी उस अनुपम संन्यासि-भावना का प्रत्यक्ष प्रमाण दिया कि *"मैं किसी को कैद कराने नहीं आया, संसारमात्र को मुक्त कराना ही मेरा कर्तव्य हैं।"*

अगले दिन नींद देर से खुली। जागते ही फिर वमन हुआ। उन्हें विष का सन्देह हुआ, उसे निकालने के लिए पानी पीकर फिर वमन कर डाला। परन्तु लाभ नहीं हुआ। धूप जलवाई। वमन कष्ट के कारण या कैसे भी, अंतड़ियों और यकृत पर शोथ था; छाती व उदर में तीव्र वेदना चल रही थी।

राव राजा तेजसिंह को बुलवाया। समाचार कह हिन्दू डाक्टर को बुलाना निश्चित किया। जेलों के डाक्टर सूरजमल बुलाये गये। इससे पहले महर्षि अजवायन का क्वाथ पी चुके थे। इससे वेदना तो बनी

ही रही दस्त भी आने लगे। अब शूल का वेग बढ़ गया था। डाक्टर ने कुछ ज्वर देखा तो बुखार उतारने की औषधि देदी छाती और उदर को गर्म जल की बोतल से सिकवाया परन्तु शोध और शूल तो बने ही रहे। इस अन्तर में कर्नल प्रतापसिंह जी को सूचना मिली। वे दौड़े आए और डाक्टर अलीमर्दानखां को चिकित्सा सौंप गये।

यह एक तीसरे दर्जे का हास्पटल असिस्टेंट था। पर दरबार की चापलूसी के कारण विख्यात डाक्टरों में गिनती थी। इसी ने महर्षि के पेट पर पट्टी बंधवाई, फिर सेलिवेशन गोलियों की चौगुनी मात्रा महर्षि ? को खिलादी। इसकी एक गोली में २ ग्रेन कैलोमल और एक चौथाई ग्रेन अफीम होती है। इस दवा को खाने से पहले महर्षि डा० सूरज मल से अनुमति लेना न भूले। खाने से शूल में कोई अंतर नहीं पड़ा। तब उसी डाक्टर ने ग्लास लगाए—जिनसे खांसने के साथ होने वाली पीड़ा तो बन्द हो गई परन्तु मुख्य व्याधि बनी रही। तीसरे दिन अलीमर्दानखां ने रेचक औषधि का प्रस्ताव किया और महर्षि के स्वीकार कर लेने पर 'कम्पाउंड जेलप पाउडर' (Compound jalap powder) की चौगुनी खूराक दे डाली। ६ बजे से २४ घंटे के भीतर ४० दस्त हो गये। कहां तो ६-७ दस्तों की बात थी—आ गये ४०। अलीमर्दाखां को कहा गया तो चुप! इस प्रकार महर्षि के पेट में २४ घण्टे में २६ ग्रेन कैलोमल (Calomel) पहुँचा दिया गया। यदि पहले विष नहीं दिया गया था—तो निःसन्देह यह तो *विष का स्पष्ट प्रयोग था ही*। पता नहीं राव राजा तेज सिंह को यह स्थिति क्यों न समझ में आई। कर्नल प्रतापसिंह और जोधपुर नरेश तो दूर से समाचार सुनते रहे।

१६ अक्टूबर तक अलीमर्दां खां की चिकित्सा रही। मुंह, तालु, गला और जीभ छालों से भर गये थे; शूल, दस्त के साथ अब हिचकियां भी आने लगीं। जब दस्त स्वयं बन्द न हुए तो डा० ने बिस्मय

(Bismuth) और डोनर की एस्ट्रिंजेन्ट गोलियां (Doner's astingent pills) दीं। गोलियां भी खाईं, पूर्व अनुभव के आधार पर मठा भी पीते रहे। परन्तु दस्त बन्द नहीं हुए।

१२ अक्टूबर तक जोधपुर से बाहर महर्षि की रुग्णता का समाचार किसी को ज्ञात नहीं हुआ। उस दिन 'राजपूत गजट' में छपे संवाद पर अजमेर के किसी आर्य सभासद् की दृष्टि पड़ी। फिर छानबीन आरम्भ हुई। ला० जेठमल जोधपुर को दौड़े। यहां आकर देखा तो चारों ओर तार खट-खटाए। आर्यजगत् में कोलाहल मच गया। आश्चर्य है कि महर्षि सरीखे महत्व शाली व्यक्ति के बहु मूल्य जीवन के साथ इस प्रकार निम्न कोटि के डाक्टर के हाथों खिलवाड़ होता रहा और सब आंखों पर पट्टी बांधे, कानों पर हाथ रखे पड़े रहे!

१५ अक्टूबर को अलीमर्दाखां ने डर कर पीछा छुड़ाया और महर्षि को आबू भेजने का प्रस्ताव रखा। इस प्रस्ताव को तुरन्त क्रियान्वित किया गया। १६ अक्तूबर को तीसरे पहर महाराजा जसवन्त सिंह और सर प्रतापसिंह ने महर्षि को विदाई दी। २५००) रु० और दो दुशाले भेंट किए। महाराजा ने अपनी फलालेन की पेटी अपने हाथ से महर्षि को बांधी ताकि लेटने में कष्ट न हो। ३२ कहार, खस के दो डेरे, पंखा कुली, अन्य सेवक तथा रक्षक आदि साथ दिए गए। डाक्टर सूरजमल, चारण नवलदान और मुरार दान को साथ जाने का आदेश मिला।

मार्ग लम्बा था। जैसे तैसे आबू पहुँचे। आबू पर्वत की चढ़ाई के समय अचानक डा० लक्ष्मण प्रसाद से मार्ग में भेंट होगई। ये सरकारी नौकर थे, परिवर्तित होकर अजमेर जा रहे थे। महर्षि का नाम सुन नौकरी की परवाह किये बिना वापस लौट गये। ५-६ दिन में चिकित्सा से लाभ प्रतीत हुआ। परन्तु इनके अंग्रेज आफिसर ने न छुट्टी दी न त्यागपत्र स्वीकार किया। डा० लक्ष्मण प्रसाद के जाने के पश्चात

महर्षि की स्थिति फिर बिगड़ गई । अन्त में भक्तजन महर्षि को अजमेर ले आये ।

२६ अक्तूबर को प्रातः काल महर्षि को अजमेर पहुँचाया गया । तत्काल डा० लक्ष्मण प्रसाद की चिकित्सा आरम्भ हुई । रोग में कभी-कभी कमी प्रतीत हुई परन्तु अन्त में २६ अक्तूबर को डाक्टर भी निराश हो गये । सिविल सर्जन न्यूमैन को दिखाया गया । वे इतना ही कह पाये कि चिकित्सा ठीक हो रही है परन्तु महर्षि की शारीरिक दशा में किसी प्रकार का अन्तर न आया ।

डाक्टरों की सम्मति थी कि इस समय महर्षि के देह पर डबल एक्यूट निमोनिया का भी आक्रमण हो गया है ।

आश्चर्य जनक अन्तिम दृश्य—३० अक्तूबर को ११ बजे से श्वास की गति बढ़ने लगी । महर्षि की इच्छानुसार औषध भी बन्दकर दी गई । किसी ने पूछा आप का चित्त कैसा है ? उत्तर मिला-अच्छा है, एक मास के पश्चात् आज आराम का दिवस है । लाला जीवनदास (लाहौर) ने पूछा आप कहां हैं ? कहा—ईश्वरेच्छा में । ४ बजे पश्चात् महर्षि ने आत्मानन्द व गोपालगिरि से पूछा क्या चाहते हो ? उत्तर मिला—आप अच्छे हो जाएँ । महर्षि ने कहा—यह देह है; इसका अच्छा क्या होगा ! आत्मानन्द के सर पर हाथ धर बोले आनन्द से रहना ? इस समय बाहर से आये भक्तों को महर्षि ने ऐसी कृपादृष्टि से देखा जो वर्णनातीत है ! उन के मुख पर शोक व घबराहट का चिन्हमात्र भी न था ; विपरीत इस के, वे सब को धैर्य धारण करा रहे थे । मुंह पर 'हाय' अथवा कोई भी कष्टसूचक शब्द तक नहीं था ।

साढ़े पांच बजे महर्षि की आज्ञानुसार सब लोग पीछे खड़े हो गये । चारों ओर के द्वार व छत के दो रोशनदान भी खोल दिये गये । पूछने पर किसी ने बताया—कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्लपक्ष का

आदि, मंगलवार है। यह सुन कर छत और दीवारों पर दृष्टि डाली, कई वेद मन्त्र पढ़े, संस्कृत में ईश्वरोपासना की और हिन्दी में ईश्वर का गुण-कीर्तन कर उल्लासपूर्वक गायत्री मन्त्र का पाठ करने लगे। फिर कुछ देर समाधिस्थ रह आंखें खोल दीं और कहने लगे—"आह !! तैंने अच्छी लीला की ।" महर्षि इस समय सीधे लेट रहे थे। उपरोक्त अन्तिम शब्द कह उन्होंने स्वयं ही करवट ली और एक बार श्वास को रोककर एक दम बाहर निकल दिया! मानवलीला समाप्त कर उनका महान् आत्मा परम प्रभु की शरण में जा विराजा। इस समय सन्ध्या के छः बजे थे।

नास्तिक से आस्तिक और अन्तिम श्वास छोड़ते छोड़ते भी महर्षि किसी को जीवन दान दे गये। यह थे नास्तिकशिरोमणि पंडित गुरुदत्त एम० ए०। इस ने आज प्रत्यक्ष देखा—योगी और ईश्वर के सच्चे भक्त को मृत्यु पर विजय प्राप्त करते। नास्तिकता का समर्थक सारा तर्क दयानन्दनिर्वाण के दृश्यरूप इस अमृतजल से धुल गया।

महर्षि तो कष्टमुक्त हो गये। पर आर्यजाति के चर्मचक्षु फिर प्रकाशहीन हो गये। उनका पथप्रदर्शक उन से छिन गया! रात ही रात में यह दुःखद समाचार विद्युत्गति से भारत भर में फैल गया!

शव-संस्कार—अजमेर में उपस्थित भक्तों के लिए वह रात्रि कालरात्रि थी—जैसे तैसे कटी। प्रातःकाल विधिवत् अन्त्येष्टि की तय्यारी आरम्भ हुई। मृतक शरीर का स्नान, चन्दनलेपन, वस्त्रावरण, पुष्पाच्छादन आदि से संस्कार कर, वेदमन्त्रों की ध्वनि के मध्य विमान पर लिटा दस बजे शवयात्रा आरम्भ की गई। आत्मानन्द, रामानन्द ब्रह्मचारी, देवदत्त जी, गोपालगिरि आदि पंडित वेदध्वनि सहित आगे-आगे थे। रा० ब० भागमल जज अजमेर, पं० सुन्दरलाल सुपरिटेन्डन्ट वर्कशाप अलीगढ़ आदि प्रतिष्ठित आर्यनेताओं के नेतृत्व में नगर-निवासियों का भारी समूह अर्थी को घेरे आगे बढ़ चला। आगरा दर्वाजा,

बड़ा बाजार, चौक, धानमंडी और दरगाह बाजार आदि स्थानों से होती हुई यह शव-यात्रा नगर के दक्षिण भाग में पहुँची। यहां ऋषि के आदेश व संस्कारविधि में लिखी विधि के अनुसार वेदी बनाई गई। चन्दन आदि काष्ठों का चयन कर महर्षि का शव चिता पर रखा गया। ब्र० रामानन्द व आत्मानन्द ने अग्नि प्रविष्टकराई! और भस्म-स्वभाव शरीर वेदमन्त्रों की उच्च ध्वनि के बीच अपनी प्रकृति में समाने लगा। यह ३१ अक्तूबर सन् १८८३ की सायंकाल ६ बजे का समय था।

शोकोद्गार—ऋषि जीवन की इस पवित्र गाथा के पश्चात् उनके इस असामयिक, अप्रत्याशित, एवं अस्वाभाविक देहावसान के सम्बन्ध में हम क्या कहें! उस समय के उनके प्रशंसकों को तो जाने दीजिए, विरोधियों तक ने अपने शोकोद्गार प्रकट कर सन्तप्त हृदय भक्तों—आर्य-समाजस्थ पुरुषों के हृदय की अपार वेदना को बंटा लेने का भरसक प्रयत्न किया। "हिन्दीप्रदीप" प्रयाग ने ठीक ही लिखा था—"कद्र मरदुम बाद मरदुम" सरस्वती महाशय के न रहने पर उनकी कदर लोगों को होगी।" सचमुच ही लोगों ने हीरे को कांच समझ रखा था—"अहा! आज परोक्षफल दर्शक गीदड़, ऊंचे टीले पर बैठ कर पूंछ फटकारेंगे।"

महर्षि के शोक में हुई सभाओं और जलसों में जनता फूट फूट कर रोने लगती थी। मुसलमान भी शोकार्त हुए बिना न रह सके। अंजुमन इस्लामिया (लाहौर) के सेक्रेट्री वाजिदअली ने कहा—"ऐ खुदा! क्या तुझे मंजूर न था कि हम वाहियात रस्मियात के फन्दों से निजात पाएं! ऐ खुदा क्या तुझे मंजूर न था कि हम आपस के निफाक को दूर करें। हम तुम से दूर हो गये थे, वह हमको तुझ से मिलाना चाहता था।" बंगाली-कलकत्ता ने लिखा—"समझदार लोग उनको स्वदेश का भूषण कह-कह कर अपने चित्त में प्रसन्न होते

हेंगे।" ट्रियून लाहौर ने छापा—"समस्त मत और सम्प्रदायी लोग उनके उपदेश के कारण, अपने अभिप्रायों में परिवर्तन करने की कोशिश कर रहे हैं!" टाइम्स पंजाब रावलपिंडी, ने घोषणा की—"उनके बताए धर्म और उपदिष्ट बातों को कोई माने न माने, परन्तु भारत के अन्य विख्यात महापुरुषों में उनकी गणना न करना बड़ी बुजदिली होगी—परमात्मा ऐसे कार्पण्य दोषों से सबको बचावे।"

और इन विगत ७० वर्षों में कौन बरबस रोक सका अपने उमड़ते आंसुओं को, याद कर उस महापुरुष के सुरलोक-गमन को! राजनीति-विशारद, धर्मशास्त्री, पण्डित, डाक्टर, नेता, राष्ट्रपति, देशसेवक सभी तो हुए—पर दयानन्द से टक्कर लेने वाला अब तक कोई माई का लाल न हुआ। नई-नई योजनाएं बनीं, एकमात्र राजनीतिक पराधीनता को सब रोगों का मूल समझने वाले वैद्य भी आए; सामाजिक विषमता के रोग को जड़मूल से नष्ट कर देने की घोषणा कर देने वाले इश्तिहारी वैद्य-हकीम भी दुनियां में उपजे—उनका प्रभाव बढ़ा, शास्त्र और शस्त्र-बल सभी कुछ चला परन्तु, आज तक कोई उनकी योजनाओं को अन्यथासिद्ध करने वाला उत्पन्न नहीं हुआ। इन ७० वर्षों में अनेक ऐसे अवसर आये जब रह-रह कर हमारे नेताओं ने महर्षि का पुनीत स्मरण कर जनता का ध्यान उनके उपदेशों की ओर दिलाया। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण उद्‌गारों का संग्रह पाठकों के लाभार्थ परिशिष्ट में कर दिया गया है।

उपसंहार—इन पंक्तियों में हमने देखा—(१) ऋषि दयानन्द संन्यासी था, आडम्बरों से घृणा करने वाला सच्चा संन्यासी। वास्तविक शिव का दर्शन कर मोक्षलाभ की लालसा से उसने सम्पन्न पिता का घर-द्वार छोड़ा; बीहड़ जंगलों, उत्तुंग गिरि-गह्वरों, बर्फ से भरे नदी-नदों की उत्ताल तरंगों में उसने अपने मुक्तिदाता को ढूंढा। बाहर नहीं मिला तो हृदय को टटोला। देश की दशा पर आंसू बहाये,

ज्ञान का प्रकाश दे अन्धे की लाठी बनना स्वीकार किया और आश्चर्य है कि ज्ञान का वह वास्तविक प्रकाश भी पाया एक प्रज्ञाचक्षु की पावन, तर्क-परिमार्जित प्रज्ञा में। इस प्रकार रोग की इस अमूल्य औषधि को उसने बांटना चाहा। बांटने से पहले एक बार फिर रोगी की नाड़ी पर हाथ रखा। आगरा, जयपुर, पुष्कर और लौटकर हरिद्वार के संवत् १९२४ के कुम्भ पर—उसने देखा भोली प्रजा, ब्राह्मण और क्षत्रियों के वशमें है। एक का मन्त्र और दूसरे का डंडा प्रजा के सर पर सवार है। और ये दोनों ही नेता आज शिश्नोदरपरायण हो सारे समाज को अपना अनुगत बना रहे हैं। केवल कौपीनधारी संन्यासी होकर उसने ऐसे ही निरीह, निर्लेप व्यक्तियों के समाज की स्थापना करना अपने जीवन का आदर्श बना लिया।

उसका तपोबल अनुपम रहा। उसके ब्रह्मचर्य और पाण्डित्य ने मिलकर विरोधियों के झुंड के झुंड गीदड़ बना दिये। वह संन्यासी था पर उसके संन्यास में अकर्मण्यता की गन्ध भी न थी। कर्त्तव्य-शीलता, कर्मपरायणता उसकी नस-नस से झलकती थी। भारत का कोना-कोना उसकी पुकार और ललकार से झनझना उठा। एक समय उसके तापस-आश्रम पर लोग उमड़ते थे, पंडित वाद उठाते थे और पंडितों के द्वारा जनता उसको समझने का यत्न करती थी। समय आया कि वह जनता से सीधा उसकी भाषा में बात करने लगा—भक्त अब उसको अधिक समीप से देखने लगे। क्षेत्र के विस्तार के साथ शैली बदली। मस्तिष्क के साथ-साथ हृदय भी दीख पड़ने लगा।

हमने देखा उसके वार्तालाप में, शास्त्रार्थ और वाद-विवाद में, कटु से कटु व्यंग और मृदुहास में, लेख और भाषण में, प्यार और डांट में—एक ही भावना निहित थी—वह थी देश के प्राचीन गौरव की पुनः प्रतिष्ठा और देश के उद्धार के द्वारा विश्व में शांति की स्थापना। वेद के आधार पर धर्म की स्थापना धार्मिक एकता का एकमात्र आधार था। एक भाषा के निर्णय के लिए उसने अपनी 'गुजराती' के

उपयोग का तो विचारभी न किया—संस्कृत का प्रयोगभी घटाया। संस्कृत का पठन-पाठन उसने इसलिए आवश्यक समझा कि वेदाधारित धर्म एवं भारतभर की भाषाओं की जननी होने से यह हमारी एकता की प्रतीक है। गोरक्षा और इस निमित्त गोवध के सरकारी निषेध को उसने न केवल भारतीय एकता का मूल समझा अपितु मानव के आत्मिक, आर्थिक और सब प्रकार के लाभों का आधार माना। सदाचार और नैतिकता को वह अपने जीवन में प्रथम स्थान देता था—स्वामी कैलाशपर्वत सरीखे दार्शनिक विचारों के प्रतिद्वन्द्वी इसी लिए उनकी प्रतिष्ठा और सम्मान के पात्र रहे और मुन्शी इन्द्रमणि, मुन्शी बख्तावरसिंह सरीखे उनके दार्शनिक विचारों से पर्याप्त मेल रखने वाले परन्तु आचारहीन—संसार के धन, समाज के धन को चोरी से हड़प करने वालों को उसने कभी क्षमा न किया। प्रतिद्वन्द्विता में विष देने तक वालों को उसने स्वयं धन देकर भी कैदखाने से छुड़ाया। यह उसका संन्यास धर्म था—परन्तु आचार हीन को कड़े से कड़ा सरकारी दण्ड दिला कर वे उज्ज्वल उदाहरण उपस्थित करना चाहते थे।

आज उनके उत्तराधिकारी निःसन्देह सो रहे हैं, ऋषि दयानन्द संन्यासी होते हुये भी गृहस्थ थाः परोपकार के लियेः वह जन्म-जन्मांतर में भी परोपकार के लिये गृहस्थ और कर्मठ होना पसन्द करता था। वेदभाष्य, वैदिक यन्त्रालय, आर्य समाज का संगठन, राजाओं का नैतिक सुधार—इन सारे कामोंमें जुटे हुये संन्यासीको समाधि का आनन्द भूल कर कम से कम १८ घण्टे प्रतिदिन हम काम में लगा पाते हैं। निःसंदेह वह संन्यासी होता हुआ भी गृहस्थ था। और संन्यासी तो था ही।

आज हम हैं कि गृहस्थ भी नहीं हैं, संन्यासी तो हैं ही नहीं। इन पंक्तियों का लेखक अपना परिश्रम सफल समझेगा यदि एक भी समर्थ व्यक्ति में दयानन्द सरीखी भावना उत्पन्न हो सकी। परम पिता हम सबको शक्ति दें कि ऋषि की भावना को अपने जीवन में उतार सकें।

॥ शमित्योम् ॥

परिशिष्ट

: १ :

महर्षि दयानन्द का महत्व

यहां महर्षि दयानन्द सरस्वती के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों द्वारा समय-समय पर प्रकट की गई सम्मतियों का संग्रह किया गया है, जिससे उनकी महत्ता का दिग्दर्शन हो सकता हैः—

महर्षि दयानन्द हिन्दुस्थान के आधुनिक ऋषियों में, सुधारकों में और श्रेष्ठ पुरुषों में एक थे। उनके जीवन का प्रभाव हिन्दुस्थान पर बहुत अधिक पड़ा है। —*महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी*

स्वामी दयानन्द के जीवन में सत्य की खोज दीख पड़ती है, इस लिए केवल आर्यसमाजियों के लिए ही नहीं, वरन् सारी दुनियां के वह पूज्य हैं। —*माता कस्तूरबा*

स्वामी दयानन्द सरस्वती उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने आधुनिक भारत का निर्माण किया और जो उसके आचार-सम्बन्धी पुनरुत्थान तथा धार्मिक पुनरुद्धार के कारण हुए। हिन्दू समाज का उद्धार करने में आर्यसमाज का बहुत बड़ा हाथ है। रामकृष्ण मिशन ने बंगाल में जो कुछ किया, उससे कहीं अधिक आर्यसमाज ने पंजाब और संयुक्त-प्रान्त में किया। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि पंजाब का प्रत्येक नेता आर्यसमाजी है। स्वामी दयानन्द को मैं एक धार्मिक और सामाजिक सुधारक तथा कर्मयोगी मानता हूँ।

संगठन-कार्यों के सामर्थ्य और प्रसार की दृष्टि से आर्यसमाज अनुपम संस्था है।
—*नेता जी श्री सुभाषचन्द्र बोस*

मेरा सादरप्रणाम हो उस महान् गुरु दयानन्द को, जिसकी दृष्टि ने भारत के आध्यात्मिक इतिहास में सत्य और एकता को देखा और और जिसके मन ने भारतीय जीवन के सब अंगों को प्रदीप्त कर दिया जिस गुरु का उद्देश्य भारतवर्ष को अविद्या, आलस्य और प्राचीन ऐतिहासिक तत्व के अज्ञान से मुक्त कर सत्य और पवित्रता की जागृति में लाना था, उसे मेरा बारम्बार प्रणाम है।

...मैं आधुनिक भारत के मार्गदर्शक उस दयानन्द को आदर-पूर्वक श्रद्धांजलि देता हूँ, जिसने देश की पतितावस्था में सीधे व सच्चे मार्ग का दिग्दर्शन कराया।
—*डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर*

वह दिव्य ज्ञान का सच्चा सैनिक, विश्व को प्रभु की शरण में लाने वाले योद्धा, और मनुष्य व संस्थाओं का शिल्पी तथा प्रकृति द्वारा आत्मा के मार्ग में उपस्थित की जाने वाली बाधाओं का वीर विजेता था। उसके ध्यान से मेरे समक्ष आध्यात्मिक क्रियात्मकता की एक शक्ति-सम्पन्न मूर्ति उपस्थित होती है। इन दो शब्दों का, जो कि हमारी भावनाओं के अनुसार एक दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं, मिश्रण ही दया-नन्द की उपयुक्त परिभाषा प्रतीत होती है। उसके व्यक्तित्व की व्याख्या की जा सकती है—एक मनुष्य जिसकी आत्मा में परमात्मा है, चर्म चक्षुओं में दिव्य तेज है और हाथों में इतनी शक्ति है कि जीवन-तत्व से अभीष्ट स्वरूप वाली मूर्ति गढ़ सके तथा कल्पना को क्रियामें परिणत कर सके। वह स्वयं दृढ़ चट्टान थे। उनमें वह दृढ़ शक्ति थी जो चट्टान पर घन चलाकर पदार्थों को सुदृढ़ व सुडौल बना सके। प्राचीन सभ्यता में विज्ञान के बहुत से गुप्त भेद विद्यमान हैं, जिनमें से कुछ को अर्वाचीन विद्याओं ने ढूंढ लिया है, उनका परिवर्तन किया है

और उन्हें अधिक समृद्ध व स्पष्ट कर दिया है, किन्तु बहुत से दूसरे अभी तक निगूढ़ ही बने हुए हैं। इसलिए दयानन्द की इस धारणा में कोई अवास्तविकता नहीं है कि वेदों में विज्ञान–सम्मत तथा धार्मिक सत्य निहित हैं।

वेदों का भाष्य करने के बारे में मेरा विश्वास है कि चाहे अन्तिम पूर्ण अभिप्राय कुछ भी हो, किन्तु इस बात का श्रेय दयानन्द को ही प्राप्त होगा कि उसने सर्व प्रथम वेदों की व्याख्या के लिए निर्दोष मार्ग का आविष्कार किया था। चिरकालीन अव्यवस्था और अज्ञान-परम्परा के अन्धकार में से सूक्ष्म और मर्मभेदी दृष्टि से उसी ने सत्य को खोज निकाला था। जंगली लोगों की रचना कही जाने वाली पुस्तक के भीतर उसके धर्म पुस्तक होने का वास्तविक अनुभव उन्होंने ही किया था। ऋषि दयानन्द ने उन द्वारों की कुंजी प्राप्त की हैं, जो युगों से बन्द थे और उसने पटे हुए झरनों का मुख खोल दिया।

······ऋषि दयानन्द के नियम-बद्ध कार्य ही उनके आत्मिक शरीर के पुत्र हैं, जो सुन्दर, सुदृढ़ और सजीव हैं तथा अपने कर्ता की प्रतिकृति हैं। वह एक ऐसे पुरुष थे जिन्होंने स्पष्ट और पूर्ण-रीति से मान लिया था कि उन्हें किस कार्य के लिए भेजा गया है।

—योगी अरविन्द घोष

मेरे निर्बल शब्द ऋषि की महत्ता का वर्णन करने में अशक्त हैं। ऋषि के अप्रतिम ब्रह्मचर्य, सत्य-संग्राम और घोर तपश्चर्या के लिए अपने हृदय के पूज्य भावों से प्रेरित होकर मैं उनकी वन्दना करता हूँ।

मैं ऋषि को शक्ति-सुत अर्थात् कर्मवीर योद्धा समझकर उनका आदर करता हूँ। उनका जीवन राष्ट्र-निर्माण के लिए स्फूर्तिदायक, बल-दायक और माननीय है।

दयानन्द उत्कट देशभक्त थे, अतः मैं राष्ट्रवीर समझकर उनकी वन्दना करता हूँ।

—*साधु टी० एल० वास्वानी*

स्वामी दयानन्द सरस्वती राष्ट्रीय सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से भारत का एकीकरण चाहते थे। भारतवासियों को राष्ट्रीयता के सूत्र में ग्रंथित करने के लिए उन्होंने देश को विदेशी दासता से मुक्त करना आवश्यक समझा था।......

—*श्री रामानन्द चटर्जी (सम्पादक 'माडर्न रिव्यू')*

जब भारत के उत्थान का इतिहास लिखा जायेगा तो नंगे फकीर दयानन्द सरस्वती को उच्चासन पर बिठाया जायेगा।

—*सर यदुनाथ सरकार*

स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं, मैंने संसार में केवल उन्हीं को गुरु माना है। वह मेरे धर्म के पिता हैं और आर्यसमाज मेरी धर्म की माता है। इन दोनों की गोद में मैं पला। मुझे इस बात का गर्व है कि मेरे गुरु ने मुझे स्वतन्त्रता पूर्वक विचार करना, बोलना और कर्तव्य-पालन करना सिखाया तथा मेरी माता ने मुझे एक संस्था में बद्ध होकर नियमानुवर्तिता का पाठ दिया।

—*पंजाब केसरी ला० लाजपतराय*

इसका श्रेय केवल स्वामी दयानन्द को ही है कि हिन्दू लोग आधी शताब्दि में ही रूढ़िवाद और पौराणिक देवी-देवताओं की पूजा छोड़ कर एक अत्यन्त शुद्ध ईश्वरवाद को मानने लगे हैं।

—*प्रिन्सिपल एस. के. रुद्र*

महर्षि दयानन्द ने भारत और संसार-मात्र की जो सेवा की है, उसे मैं भली-भांति जानता हूँ। वह भारतवर्ष के सर्वोत्तम महापुरुषों, में से थे। स्वामी जी ने मातृ-भूमि की सबसे बड़ी सेवा यह की है कि

उसमें जातीय शिक्षा का विचार पैदा कर दिया है।

—*श्री जी. एस. अरुण्डेल*

ऋषि दयानन्द ने हिन्दू-समाज के पुनरुत्थान में इतना अधिक हाथ बंटाया है कि उन्हें १९ वीं शताब्दी का प्रमुखतम हिन्दू समझा जायेगा।—*श्री तारकनाथ दास एम० ए० पी० एच० डी० (म्यूनिच)*

स्वामी दयानन्द भारतवर्ष के उन धार्मिक महापुरुषों में से एक हैं, जिनका गुणानुवाद करने में ही जीवन समाप्त हो सकता है।

उन्होंने मन, वचन और कर्म की स्वतन्त्रता का सन्देश दिया तथा मानव-मात्र की समानता का उपदेश दिया। वह अपने जीवन और मृत्यु में महान् ही रहे। —*श्रीमती सरलादेवी चौधरानी*

श्री स्वामीजी महाराज जब बरेली में आकर ला० लक्ष्मीनारायण खजांची साहूकार की कोठी में निवास कर प्रचार कर रहे थे, तब मैंने उनके दर्शन किये।...

यदि ऋषि का प्रादुर्भाव ठीक समय पर न हुआ होता तो अंग्रेजी पढ़े लिखों में तो हिन्दूपन अथवा प्राचीन आर्यगौरव का नाम भी बाकी न रहता। यह सब कुछ उस महर्षि की कृपा है जो हम अपने धर्म पर स्थिर रह सके। —*पं० विष्णुलाल शर्मा एम० ए० रिटायर्ड जज*

सच-मुच श्री स्वामीजी इस नवीन युग के पथ प्रदर्शकों में से एक हैं और गणना में यदि उन्हें सर्वोच्च स्थान दें तो लेशमात्र भी अतिशयोक्ति न होगी।

यदि वे लोग जिन के हाथों में आर्यसमाज की नौका की पतवार है, ईमानदारी, सच्चाई और परिश्रम से कार्य करेंगे तो इस में सन्देह नहीं कि बेड़ा पार हो जायगा और उस ऋषि की आत्मा तृप्त होगी, तथा भारतवर्ष का निश्चय ही कल्याण होगा।

—*लेफ्टीनेंट राजा दुर्गानारायणसिंह बहादुर*

स्वामी दयानन्द उन रोशनी के मीनारों में से एक हैं, जो संसार को सत्य-मार्ग दिखाने के लिए आते हैं और भटकते लोगों को मार्ग दिखा कर चले जाते हैं।

—देवतास्वरूप श्री भाई परमानन्दजी एम० ए०

मैं महर्षि को नवीन भारत के निर्माताओं की सब से पहली कोटि में गिनता हूं। *—जी० के० देवधर एम० ए०*

एक सनातन-धर्मी की हैसियत से मैं स्वामी दयानन्द को वर्त्तमान भारत का सर्व प्रथम सुधारक मानता हूँ। स्वामीजी महाराज ने मरणोन्मुख आर्य जाति को उठाया और उस का प्राचीन आदर्श बतला कर सत्पथ में प्रवृत्त किया, इस के लिए हमें स्वामीजी का आभारी होना चाहिए। *—राजा बरखण्डी महेश प्रतापनारायणसिंह शिवगढ़-राज्य*

वह कार्य जो ऋषि दयानन्द ने अपने लिये चुना अत्यन्त महान् था और उन्होंने उसे बड़ी उत्तमता से पूरा किया। उन्होंने वेदों को देव-मन्दिरों के छिपे हुए कोनों से निकाल कर मनुष्यमात्र की पूजा के लिए रख दिया।........मैं अपनी भक्ति पुष्पाञ्जली से उन महान् दार्शनिक महान् संन्यासी और पूजनीय आचार्य के चरणों में रखता हूँ।

—आनरेबिल जी० यस० खापर्डे

स्वामी दयानन्दजी एक बड़े सुधारक थे, उन्होंने भारतवर्ष और हिन्दू जाति के सुधारने के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया था।

भारतवर्ष के इतिहास में स्वामी जी का नाम बड़े सुधारकों की पवित्र श्रेणी में *सोंने के अक्षरों से लिखा जायगा।*

—देशभक्त ला० हरदयालु जी, एम० ए०

स्वामी जी ने वर्तमान समय में हिन्दू धर्म की जो सेवा की वह हमारे विचार में किसी और महानुभाव ने नहीं की।

आपका अस्तित्व संसार के लिये एक बड़ी सम्पत्ति था और

भारत को इस बात पर अभिमान करना चाहिए।

आपने न केवल उन लोगों को जिन्होंने आपको विष दे दिया था, क्षमा कर दिया, प्रत्युत, यह अपूर्व काम किया कि उसे मुकद्दमे और दण्ड के चंगुल से छुड़ाया।

—श्री विजय राघवाचार्य

जिस समय लोग अपने धर्म को छोड़ इधर उधर विधर्मी होते चले जा रहे थे उस समय विश्वास था कि अब हिन्दूधर्म का नामलेवा मिलना कठिन होगा। उस समय अपने नियमानुसार परम पिता परमात्मा ने धर्म व जाति की रक्षा के लिए अपने परम भक्त और प्यारे पुत्र बाल ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द को भेजा—जिन्होंने हिन्दु जाति को तो विधर्मी होने से बचाया ही किन्तु भूल से गये हुए भाइयों के वापिस लेने का भी मार्ग हमें दिखाया।

—प्रिन्स नरेन्द्र शमशेरजंग राना बहादुर नैपाल

मैं आर्य समाजी नहीं हूँ पर श्री स्वामी को हिन्दू जाति का रक्षक मानता हूँ, उन्होंने गिरती हुई हिन्दु जाति को बचा लिया। लोगों की आंखें खोल दीं। उनकी बदौलत वेदों का पढ़ना-पढ़ाना शुरू हो गया। संस्कृत और हिन्दी का प्रचार बढ़ गया। प्राचीन संस्कारों को लोग समझने लगे। हिन्दुओं में आर्यत्व आ गया। यह प्रकाश दयानन्द रूपी सूर्य से मिला है। इस लिए हम लोग सदा उनके अनुगृहीत रहेंगे।

—आनरेबुल राजा सर मोतीचन्द्र

भारत के सामाजिक इतिहास में स्वामी दयानन्द का प्रधान स्थान हैं। वे ऐसे एक महापुरुष थे जो हमारी हीन दशा से हमें उभारने-मार्ग बतलाने आये थे। वे हमारे लुप्त वैभव को हमें फिर दिखलाना चाहते थे।

—माननीय श्री श्रीप्रकाशजी राज्यपाल मद्रास

स्वामी दयानन्द भारतवर्ष के विख्यात पुरुषों की श्रेणी में एक उज्ज्वल नक्षत्र थे।

प्रो० एम० रङ्गाचार्य

महर्षि दयानन्द भारतवर्ष की वर्तमान आध्यात्मिक शांति के जन्म दाता हैं, किताबी पंडितों ने उनके स्वरूप को नहीं समझा। परन्तु सचाई का उपासक वह ऋषि, प्रत्येक भलाई का मित्र तथा प्रत्येक पाप और असत्य का शत्रु है। *मैंने स्वराज्य का रहस्य सत्यार्थप्रकाश में पाया* । अगर हमारी प्राचीन जाति *सत्यार्थप्रकाश* की शिक्षाओं के अनुसार चले, तो इस पृथिवी की कोई भी शक्ति हमारे स्वाधीनता के दिनों को नहीं हटा सकती। —*श्री सी० एस० रङ्गा अय्यर*

महर्षि आगमन काल में आर्य जाति की क्या दुरवस्था हो गई थी, इसे सोच कर सहसा शरीर में रोमांच हो जाता है।......भारत को ऐसी दीन हीन दुरवस्था पर दीनानाथ को दया आई और उसने ब्रह्म वर्चस्वी ब्राह्मण का प्रादुर्भाव किया, जिसने आर्य समाज की स्थापना की। मैं दृढ़ता पूर्वक कह सकता हूँ कि आर्यसमाज महर्षि की प्रति ध्वनि के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं।—*राजा अवधेशसिंह बहादुर*

जिस दिन तक सूर्य और चन्द्र भूमण्डल पर प्रकाश करते हैं (उस दिन तक) ऋषि को जीवन भी मनुष्यों के जीवन का पथ प्रदर्शक बनी रहेगी। —*राव राजा तेजसिंह जी वर्मा*

ऋषि दयानन्द ने भारत के शक्ति-शून्य शरीर में अपनी दुर्धर्ष शक्ति अविचलता तथा सिंह-पराक्रम फूंक दिये हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती उच्चतम व्यक्तित्व के पुरुष थे। यह पुरुष-सिंह उनमें से एक था जिन्हें यूरोप प्रायः उस समय भुला देता है जबकि वह भारत के सम्बन्ध में अपनी धारणा बनाता है, किन्तु एक दिन यूरोप को अपनी भूल मानकर उसे याद करने के लिए बाधित होना पड़ेगा, क्योंकि उसके अन्दर कर्मयोगी, विचारक और नेता के उपयुक्त प्रतिभा का दुर्लभ सम्मिश्रण था।

दयानन्द ने अस्पृश्यता वा अछूतपन के अन्याय को सहन नहीं किया और उससे अधिक उनके अपहृत अधिकारों का उत्साही समर्थक दूसरा कोई नहीं हुआ। भारत में स्त्रियों की शोचनीय दशा को सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता व साहस से काम लिया। वास्तव में राष्ट्रीय भावना और जनजागृति के विचार को क्रियात्मक रूप देने में सबसे अधिक प्रबल शक्ति उसी की थी। वह पुनर्निर्माण और राष्ट्र संगठन के अत्यन्त उत्साही पैगम्बरों में से था।

—प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक रोम्यां रोलां

हमें वेदों के अध्ययन को प्रोत्साहन देने और यह सिद्ध करने में कि मूर्तिपूजा वेद सम्मत नहीं है, स्वामी दयानन्द के महान् उपकार को अवश्य स्वीकार करना चाहिये। आर्यसमाज के प्रवर्तक वर्तमान जाति-भेद की मूर्खता और उसकी हानियों के विरुद्ध अपने अनुयायियों को तैयार करने के अतिरिक्त यदि और कुछ भी न करते तो भी वह वर्तमान भारत के बड़े नेता के रूप में अवश्य सन्मान पा जाते।

—जर्मन प्रोफेसर डा० वरटरनीज

स्वामी दयानन्द निःसन्देह एक ऋषि थे। उन्होंने अपने विरोधियों द्वारा फेंके गए ईंट-पत्थरों को शांतिपूर्वक सहन कर लिया। उन्होंने अपने में महान् भूत और महान् भविष्य को मिला दिया। वह मर कर भी अमर हैं। ऋषि का प्रादुर्भाव लोगों को कारागार से मुक्त करने और जाति बन्धन तोड़ने के लिए हुआ था। ऋषि का आदेश है— आर्यावर्त, उठ जाग; समय आगया है, नये युग में प्रवेश कर, आगे बढ़।

पाल रिचर्ड (प्रसिद्ध फ्रेंच लेखक)

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दूधर्म के सुधार का बड़ा कार्य किया और जहां तक समाज सुधार का सम्बन्ध है, वह बड़े उदार हृदय थे। वे अपने विचारों को वेदों पर आधारित और उन्हें ऋषियों के ज्ञान

पर अवलम्बित मानते थे। उन्होंने वेदों पर बड़े बड़े भाष्य किये, जिससे मालूम होता है कि वे पूर्ण अभिज्ञ थे। उनका स्वाध्याय बड़ा व्यापक था।

—*जर्मन विद्वान् प्रो० एफ० मैक्समूलर*

स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त उनके *सत्यार्थप्रकाश* में निहित हैं। यही सिद्धांत *वेदभाष्य-भूमिका* में हैं। स्वामी दयानन्द एक धार्मिक सुधारक थे। उन्होंने मूर्तिपूजा से अविराम युद्ध किया।

—*सरवेलराटाइन चिरौल*

आर्यसमाज समस्त संसार को वेदानुयायी बनाने का स्वप्न देखता है। स्वामी दयानन्द ने इसे जीवन और सिद्धांत दिया। उनका विश्वास था कि आर्यजाति चुनी हुई जाति, भारत चुना हुआ देश और वेद चुनी हुई धार्मिक पुस्तक है……।"

—*ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री रेमजे मैकडानल्ड*

मेरी सम्मति में स्वामी दयानन्द एक सच्चे जगत्-गुरु और सुधारक थे।

—*मि० फौक्स पिट् (जनरल सेक्रेटरी मोरल एजूकेशन लीग लण्डन)*

स्वामी दयानन्द के उच्च व्यक्तित्व और चरित्र के विषय में निस्संदेह सर्वत्र प्रशंसा की जा सकती है। वे सर्वथा पवित्र तथा अपने सिद्धांतों के अनुसार आचरण करने वाले महानुभाव थे। वह सत्य के अत्यधिक प्रेमी थे।

—*रेवरेण्ड सी० एफ० एण्डरूज*

स्वामी दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने "हिन्दुस्थान हिन्दुस्थानियों के लिए" का नारा लगाया था…आर्यसमाज के लिए मेरे हृदय में शुभ इच्छाएं हैं और उस महान् पुरुष के लिए, जिसका आप आर्य आदर करते हैं, मेरे हृदय में सच्ची पूजा की भावना है।

—*श्रीमती एनीबीसेण्ट*

स्वामी दयानन्द के सिद्धांतों के विषय में चाहे कोई मनुष्य कैसी

ही राय कायम करले, परन्तु यह सबको मान लेना पड़ेगा कि वह एक विशाल और श्रेष्ठ पुरुष थे। अपने देश के लिये गौरवस्वरूप थे। दयानन्द को खोकर भारतवर्ष को बहुत हानि उठानी पड़ी है।

अ० भा० कांग्रेस के संस्थापक ए० ओ० ह्यूम

स्वामी दयानन्द एक महान् आत्मा और निर्भय पुरुष थे। वह अपने धार्मिक विश्वासों पर अटल रहे, इस लिए नहीं कि वे अपने विचारों के कट्टर पक्षपाती थे किन्तु इस लिए कि वे सत्य के परम भक्त थे।

—एस० एल० पोलक

जिन सिद्धांतों का स्वामी दयानन्द ने प्रचार किया है, वे कुछ नये नहीं हैं। वे उतने ही प्राचीन हैं जितना कि हिमालय।

यह बड़ा आवश्यक है कि स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों का बलपूर्वक प्रचार किया जाय।

—मेजर टी० एफ० ओडोनल

निसन्देह स्वामी जी एक महान् पुरुष, संस्कृत के गम्भीर विद्वान्, उत्कृष्ट साहस और स्वावलम्बन से युक्त तथा मनुष्यों के नेता थे।

—एस० डी० स्टोक्स

मैं देखता हूँ कि कोई भी हिन्दु जब आर्यसमाज में आता है तो उसमें बहुत विशेषता आ जाती है। उस के अंदर उत्साह, देशभक्ति, कर्मशीलता और एक तरह की अजीब स्प्रिट काम करने लगती है।

देश के कामों में ही लीजिए, जब तक और लोग स्वराज्य का स्वप्न देख रहे थे, स्वामी दयानन्द और आर्य समाज अपनी पुस्तकों द्वारा उसका प्रचार करने लगे थे।

मैं खुशी के साथ कहता हूँ कि असहयोग के जमाने से पहले करीब ८० फी सदी आर्यसमाजी स्वराज्य के कार्यों में हिस्सा लेने वाले और लीडर थे जबकि और सुसाईटियों के मुश्किल से २-३ फी सदी आदमी ही स्वराज्य का काम करते थे।

—मौलाना हसरत मुहानी

स्वामी दयानन्द महान् संस्कृतज्ञ और वेदज्ञाता थे। वे विद्वान् ही नहीं किन्तु एक अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुष भी थे। वे परम हंस के गुणों से विभूषित थे। उन्होंने केवल एक ज्योतिर्मय निराकार परमेश्वर की आराधना करने की शिक्षा दी। हमारा स्वामी जी से घनिष्ट सम्बन्ध था, और हम उनका आदर करते थे। वह ऐसे विद्वान् और श्रेष्ठ थे कि अन्य मतावलम्बी भी उनका मान करते थे।

—सर सैयद अहमदखां

महर्षि दयानन्द भारत-माता के उन प्रसिद्ध और उच्च आत्माओं में से थे, जिनका नाम संसार के इतिहास में सदा चमकते हुए सितारों की तरह प्रकाशित रहेगा। वह भारत माता के उन सपूतों में से थे, जिनके व्यक्तित्व पर जितना भी अभिमान किया जाय थोड़ा है। नैपोलियन और सिकन्दर जैसे अनेक सम्राट् एवं विजेता संसार में हो चुके हैं, *परन्तु महर्षि उन सबसे बढ़ कर थे।*

—खदीजा बेगम एम० ए०

ईसाइयत और पश्चिमी सभ्यता के मुख्य हमले से भारतीयों को सावधान करने का सेहरा यदि किसी व्यक्ति के सिर बांधने का सौभाग्य प्राप्त हो तो स्वामी दयानन्द जी की ओर इशारा किया जा सकता है। १६ वीं सदी में स्वामी दयानन्द जी ने भारत के लिए जो अमूल्य काम किया है, उससे हिन्दू जाति के साथ-साथ मुसलमानों तथा दूसरे धर्मावलम्बियों को भी बहुत लाभ पहुँचा है। *—पीर मुहम्मद यूनिस*

निर्भयता की मूर्ति दयानन्द

ऋषि दयानन्द ने राजपूताने में भ्रमण करते हुए मेवाड़ राज्य उदयपुर में पदार्पण किया और वहां महाराणा श्री सज्जनसिंहजी को मनु आदि ग्रंथ पढ़ाये। फिर कुछ दिन पश्चात् शाहपुरा पधारे, तो यहां श्री श्री १०८ श्री जसवन्तसिंहजी को भी यह खबर सुनकर

उत्साह हुआ कि ऐसे विद्वान् संन्यासी के दर्शन करना अत्यावश्यक है। इसके बाद मुझे आज्ञा मिली कि, स्वामीजी महाराज की सेवा में जोधपुर पधारने का निमन्त्रण पत्र भेजो तथा स्वामीजी के पधारने के लिए सब प्रकार का प्रबन्ध करो। मैं उस समय असिस्टेण्ट मुसाहिब आला के पद पर नियुक्त था, इसलिए ओफिशियल पत्र महाराजा साहब की आज्ञानुसार स्वामी जी की सेवा में भिजवा दिया। उसे स्वामीजी महाराज ने स्वीकार कर लिया तथा जो प्रबन्ध के लिए लिखा सो तुरन्त करा दिया गया। यहां स्वामी जी महाराज राजकीय कोठी में ठहराये गये और अच्छी तरह उनका आतिथ्य-सत्कार होता रहा। स्वामीजी महाराज सायंकाल को चार से छः बजे तक नित्य-वैदिक-धर्म-मण्डन तथा ईसाई आदि मतों का खण्डन किया करते थे। पांच हजार के लगभग नित्य उपस्थिति होती थी और महाराजा श्री सर प्रतापसिंहजी साहब व किशोरसिंहजी साहब रा० रा० जवानसिंह जी साहब रा० रा० श्री सोहनसिंहजी साहब आदि जो कि संस्कृत के बड़े विद्वान् थे, नित्य उपस्थित हुआ करते थे। इसके पश्चात् रात्रि में ७॥ से ८॥ बजे तक नित्य श्रीमान् दरबार साहब प्राचीन इतिहास के विषय में बात-चीत किया करते थे। एक दिवस स्वामी जी ईसाई मत के विषय में कुछ कह रहे थे, उस समय फैजुल्लाखां लेट मिनिस्टर के भतीजे मोहम्मद हुसेन ने हाथ में तलवार लेकर बल्कि मूंठ पर हाथ धर कर कहा कि, स्वामीजी हमारे मजहब के सम्बन्ध में कुछ मत कहना। उस समय निर्भय दयानन्द ने उत्तर दिया कि, मैं ईसाई मत पर बोल रहा हूँ, इसको पूरा करके तुम्हारे मोहम्मद साहब की पोल और इस्लाम मजहब की धज्जियां उड़ाऊंगा। फिर क्या था, थोड़ी ही देर में जमीन, आसमान व सातों आसमानों तक की व्याख्या की गई। उस समय भैया फैजुल्लाखां ने अपने भतीजे को बहुत डांटा और कहा कि अब इसका जवाब क्या देता है? वहां से मोहम्मदहुसेन का भागना

मुश्किल हो गया। परन्तु निर्भय स्वामी उसी प्रकार गरजता रहा। उस समय वहां मि० वीन नामक एक यूरोपियन मौजूद थे, वे व्याख्यान सुन कर इतने मुग्ध हो गए कि फूट फूट कर रोने लगे। वे स्वामी जी के चरणों में टोपी रख पांव पकड़ कर कहने लगे कि हमको अपना शिष्य बनालो। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि शिष्य बनाना मठाधीशों का काम है, हम तो सदुपदेश करते हैं, सो तुम यहां आया करो और सत्य को ग्रहण करो यही हमारा उद्देश्य है। इसके बाद तीन ढूँढिये आए और उनसे मूर्ति विषय पर वार्त्तालाप हुआ। जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने मूर्तियों को तोड़ कर फेंक दिया और वैदिक धर्म स्वीकार किया। स्वामीजी प्रातःकाल वायुसेवनार्थ रातानाड़ा के पहाड़ पर जाया करते थे और वहीं पर योगाभ्यास आदि किया करते थे। उस पहाड़ पर बहुधा हिंसक पशु रहते थे, इसलिए श्री दरबार साहब ने स्वामी जी से निवेदन किया और मेरे से भी कहा कि, स्वामीजी का उस पहाड़ पर अंधेरे में अकेले जाना ठीक नहीं, इसलिए उनके साथ एक रिसाले का सवार भेजने का प्रबन्ध कर दो। मैंने अपने रिसाले में से एक हैयादबख्श नामक सवार स्वामीजी के साथ आने-जाने के लिए नियत कर दिया। जिस समय स्वामीजी को यह ज्ञात हुआ कि मेरी रक्षा के निमित्त श्री दरबार साहब की आज्ञा से राव राजा श्री तेजसिंह ने एक सवार नियत किया है तथा वह मेरे बाहर जाने के समय तक दूर-दूर साथ रहता है, तब स्वामीजी ने उस सवार को अपने साथ जाने से रोक दिया, और कहा कि जो परमात्मा प्राणीमात्र की रक्षा करता है, वही मेरी रक्षा करेगा। तुम्हारे रक्षा करने से मैं रक्षित नहीं रहूँगा। मुझे परमात्मा ने जो बाहुबल दिया है वही पर्याप्त है, मैं उसी का भरोसा करता हूँ। दूसरों के बल का सहारा मैं नहीं तकता हूं। निर्भयता के इन शब्दों से हम लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। —*श्रीमान् राव राजा तेजसिंहजी वर्म्मा जोधपुर।*

भूल में पड़े, भूल को समझ भूल न पाते।
देख देख कर दुखी जात दुख देख न पाते॥
कर्म-भूमि पर था न कर्म का बहता सोता।
धर्म धर्म कह धर्म-मर्म था ज्ञात न होता॥
उस काल अलौकिक लोक ने हमें अलौकिक बल दिया।
आ दयानन्द आलोक ने आलोकित भूतल किया॥

—कवि सम्राट पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय

जो न हटा मुख फेर, बढ़ा जीवन भर आगे।
जिसका साहस हेर, विघ्न-भय-संकट भागे॥
सबल सत्य की हार, अनृत की जीत न होगी।
ऐसे प्रबल विचार, सहित विचरा जो योगी॥
जस दयानन्द मुनिराज का, प्रकृत पाठ जनता पढ़े।
प्रभु 'शंकर' आर्यसमाज का, वैदिक बल गौरव बढ़े॥

—महाकवि 'शंकर'।

दयानन्द का जन्म हुआ श्रुति के हित धारण।
दयानन्द का मरण हुआ वेदों के कारण॥
दयानन्द थे आर्यधर्म के पुनरुद्धारक।
दयानन्द थे आत्मज्ञान के पूज्य प्रचारक॥
दयानन्द की वेद-भाष्यशैली जो जाने।
विद्या का अवतार उसे माने फिर माने॥
बोलो मित्रो दयानन्द स्वामी की जय हो।
ऋषियों के सरताज मोक्षधामी की जय हो॥

—श्री हीरालाल सूद सबजज

भक्त भगवान् के अशक्त प्रह्लाद से थे,
राजा था विधर्म पाप-दाप को उभाड़ के।

चारों ओर शोक राम-नाम जपने की हुई,
बैठा धर्म द्रोही था कुधर्मध्वजा गाड़ के ॥
आहन-असा सा बड़े बल से कसा सा हाथ,
चक्रमित करके लगाया जभी ताड़ के।
रम्भा के समान टूटा खम्भा जो अधर्म का तो,
निकले नृसिंह दयानन्द थे दहाड़ के ॥

श्री पं० अनूपशर्मा एस० ए० एल० टी०

छूत छात त्याग का अछूता उपदेश दिया,
भद्दी भेद-भावना के भूत को भगा गया।
वैर को विसार पुण्य-प्रीति का पढ़ाया पाठ,
हृदयों को प्रेम के पीयूष में पगा गया ॥
झूठे देवी-देवों के प्रपंच से छुड़ा के एक
ईश की उपासना में सबको लगा गया।
देश-हित साध के, दिवाली को सदा के लिए
आप सो गया पै ऋषि जग को जगा गया।

—पं० यज्ञदत्त शर्मा उपाध्याय

वैसद् गुरु सद् गुण की खान, अद्वितीय दिक विद्वान्।
नमस्कार है बारम्बार, दयानन्द मुनिराज उदार ॥

—राजकुमार रणञ्जयसिंह अमेठी

: २ :

महर्षि कृत-ग्रंथों का परिचय

—○:०:○—

महर्षि लगभग २० वर्ष तक कार्यक्षेत्र में रहे। परन्तु ग्रंथों का अधिकांश सं० १९३० वि० के पश्चात् ही लिखा गया। शास्त्रार्थ-विवरण और ग्रंथों के अतिरिक्त उनके पत्र और विज्ञापन भी इतने और इस ढंग से लिख गए हैं कि उनसे उनके जीवनवृत्त, विचारधारा के विकास, सिद्धांतों का स्पष्टीकरण उनका जीवनोद्देश्य आदि विविध, विषयों पर प्रकाश पड़ता है। परन्तु यह सब खोज के विषय हैं। यहां पर हम उनके नाम से प्रकाशित ग्रंथों का कुछ परिचय दे रहे हैं।

श्री महेशप्रसाद जी मौलवी आलिम फाजिल के लेखानुसार उन की लिखी सारी सामग्री ९॥×६ इंच आकार के लगभग १५ हजार पृष्ठों की ठहरती है। और खण्डन से मण्डनात्मक सामग्री बहुत अधिक है।

ग्रन्थ—यह भी ध्यान रखना चाहिए कि महर्षि की लिखी पुस्तकों का लेखन कार्य प्रायः साधारण पंडितों व लेखकों के हाथ में रहा। इन पण्डितों ने कई बार अनेक कारणों से ऐसी भूलें की हैं जिन के कारण अनेक भ्रम भी फैले हैं। कुछ अशुद्धियां भी रह गई हैं। महर्षि को न तो इतना समय था, न इतने साधन। फिर लगभग १० वर्ष के समय में इतना लेखनकार्य अपना महत्व रखता है।

१. संध्या—(संवत् १९२० वि० सन् १८६३ ई०) आगरामें लिखी गई। वहीं म० रूपलाल जी ने १५००) रु० व्यय से ३० सहस्र प्रतियां छपवा कर बिना मूल्य बंटवाईं। इसके अन्त में लक्ष्मी सूक्त था।

२. *पाखण्ड-खण्डन*—(सं० १९२३, सन् १८६७) आगरा ज्वाला-प्रकाश प्रेस में कई सहस्र प्रतियां मुद्रित। ऋषि का सर्व प्रथम उपलब्ध लेख है। सं० १९२४ के कुम्भ पर बिना मूल्य बांटी गई। इस का कुछ भाग पं० भगवद्दत्त जी सम्पादित 'ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन' में उद्धृत किया गया है।

३. *अद्वैतमत खंडन*—सं० १९२७ में काशी में मुद्रित, मायावाद का खंडन है।

४. *वेद विरुद्धमत खंडन*—(नवम्बर १८७४ कातिक सं० १९३१ वि०) बम्बई में लिखा गया। बल्लभ आदि मतों की पोल खोली गई है। ४३ पृष्ठ हैं।

५. *शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण*--(जनवरी १८७५ पौष सं० १९३१ वि०) विषय प्रश्नोत्तर रूप में। स्वामी नारायणमत का खण्डन मूल संस्कृत १९ पृष्ठ, गुजराती से हिन्दी में अनुवाद के १६ पृष्ठ।

६. *सत्यार्थ प्रकाश*—प्रथम संस्करण संवत् १९३२ में प्रकाशित हुआ। इस समय १२ समुल्लास थे—१० मंडनात्मक व दो खण्डनात्मक। लेखकों ने स्वार्थवश मृतकश्राद्ध (श्राद्ध में मांस भोजन सहित) का मण्डन इसमें महर्षि के सिद्धान्त के विरुद्ध मिला दिया था। कुरान और बाइबल के विषय पूर्णतया शुद्ध न हो सकने के कारण छापे नहीं गए थे। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण भाद्रपद संवत् १९३९ वि० तदनुसार सितम्बर सन् १८८२ में प्रकाशित हुआ। यह २७० पृष्ठों का है।

महर्षि का यह ग्रंथ सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह ऋषि के सब मन्तव्यों, सिद्धांतों, उपदेशों और योजनाओं का निचोड़ है, तर्क भी उनका इसमें सारा संग्रहीत है। इसका अंग्रेजी, फ्रैंच आदि विदेशी

तथा संस्कृत, बंगाली, सिंधी, तैलगु आदि भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। लाखों प्रतियां भारत और भारत से बाहर बिक चुकी है। मूल पुस्तक हिन्दी में है। अविभक्त भारत में मुस्लिमलीग ने उसके १४ वें समुल्लास (कुरानखण्डनविषयक) के कारण जब्त अथवा १४ वें समुल्लास को निकाल देने का आन्दोलन किया था। इसके विरोध में आर्यसमाज का साथ सारे हिन्दूजगत् और समझदार मुसलमानों एवं अन्य धर्मावलम्बियों ने दिया और वह शरारत भरा आन्दोलन सफल नहीं हुआ।

७. *आर्याभिविनय*—(सं० १९३२ वि०) ७६ पृष्ठों की पुस्तक है। ईश्वर प्रार्थना व स्तुति के १०८ मन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह है।

८. *संस्कार विधि*—(पहला संस्करण सं० १९३२ वि० पृष्ठ सं० २५६ सोलह संस्कार, उनके महत्व तथा सम्पूर्ण विधि सहित वर्णित हैं। इसका आषाढ़ सं० १९४० में संशोधित संस्करण संवत् १९४१ में प्रयाग से प्रकाशित हुआ।

९. *वेदांत ध्वांत निवारण*—(सं० १९३३ में पहला संस्करण) संस्कृत हिन्दी में लिखी गई। पृष्ठ संख्या ७॥×४॥ इंच के पृष्ठ। विषय—नवीन वेदान्त का खण्डन।

१०. *ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका*—(सं० १९३३ वि०) भाद्रपद सं० १९३३ में अयोध्या में लिखना प्रारम्भ और इसी वर्ष के अन्त में काशी में मुद्रित हुई। महर्षि की वेदार्थ शैली के महत्व एवं शैली के दिग्दर्शन में यह ग्रंथ लिखा गया है। हिन्दी व संस्कृत में लिखे गए इस ग्रन्थ की पृष्ठ संख्या ४६२ है।

११. *आर्योद्देश्य रत्नमाला*—(श्रावण सं० १९३४) हिन्दी में १० पृष्ठों की छोटी सी पुस्तक। वैदिक सिद्धान्त सम्बन्धी परिभाषाएं—ईश्वर, जीव, धर्म-अधर्म आदि दी गई हैं।

१२ ऋग्वेद भाष्य—इसका प्रारम्भ मार्गशीर्ष सं० १९३४ वि० में किया १०५८९ मन्त्रों में से ५६२९ मन्त्रों का भाष्य महर्षि कर पाये।

यजुर्वेद भाष्य—इसका प्रारम्भ पौष १९३४ वि० में हुआ और अगहन सं० १९३९ में सम्पूर्ण हुआ। इसके कुल ४० अध्यायों में १९७५ मन्त्र हैं। पहले ऋग्वेद का भाष्य आरम्भ किया गया फिर यजुर्वेद का और दोनों साथ होते रहे तथा २४-२४ पृष्ठों के खंडों के रूप में दोनों साथ-साथ प्रति मास छपते रहे। वार्षिक मूल्य चार रुपये और डाक महसूल ।-)॥ था। काशी में वैदिक यन्त्रालय पहुँचने पर माघ सं० १९३६ से यह वहां छपने लगा। यजुर्वेद भाष्य का वि० सं० १९४६ में और ऋग्वेद का आषाढ़ सं० १९५६ में मुद्रण समाप्त हुआ। ऋग्वेद भाष्य के ८५७३ पृष्ठ और यजुर्वेद के ३६० पृष्ठ हैं।

वेदभाष्य क्रम यह है:—मूल मन्त्र, पदपाठ, पदार्थ अन्वय, भावार्थ (संस्कृत में) अन्वयानुसार अर्थ तथा भावार्थ हिन्दी में। *हिन्दी में वेदों का भाष्य करने वाले सर्व प्रथम महर्षि दयानन्द ही थे।*

१३. भ्रांति-निवारण—(सं० १९३४) महर्षि के वेदभाष्य पर कलकत्ता संस्कृत कालेज के स्था० प्रिंसिपल पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न की ओर से उठाई शंकाओं का समाधान ४६ पृष्ठों की इस पुस्तक में किया गया है। इसमें दिखलाया गया है कि अग्नि, वायु आदि नाम देवताओं के नहीं, परमेश्वर के ही हैं।

१४. पंच महायज्ञ विधि—(सं० १९३५ वि०) पृष्ठ सं० ४०। दैनिक पंच महायज्ञों का विधान मन्त्र एवं अर्थ सहित दिया गया है।

१५. वेदांग प्रकाश—(सं० १९३६ से १९३९ वि० तक) १६ भागों में प्रकाशित—सम्पूर्ण ग्रन्थ की पृष्ठ सं० १३३६। वर्णोच्चारण

शिक्षा, संस्कृत प्रबोध, व्यवहार भानु इन तीन भागों के विषय नाम से स्पष्ट हैं। संस्कृत वाक्य प्रबोध में बात चीत के वाक्यों में उपदेश भी इसी प्रकार व्यवहारभानु में मनोरंजक दृष्टान्तों के साथ संस्कृत रचना का शिक्षण है। शेष १२ भागों में से ११ विशुद्ध व्याकरण के अंग संधि विषय आदि हैं। उणादि कोष और निघंटु वैदिक व लौकिक शब्दों के व्युत्पत्ति निर्देषक व कोष ग्रन्थ हैं।

निघन्टु वेदों का अर्थ जानने में विशेष उपयोगी है। उदाहरणतः निघन्टु अर्थात् वैदिक भाषा के कोष में 'विप्र' शब्द का अर्थ बुद्धिमान् है, लौकिक संस्कृत में इसका अर्थ ब्राह्मण प्रचलित है। इसी प्रकार 'अहि' जिसका अर्थ आज 'सांप' प्रचलित है, निघन्टु में उसका अर्थ 'मेघ' है। अश्मा (पत्थर) भी मेघ है। अतएव इस भाग का वैदिक भाषा में विशेष महत्व है।

वेदांग प्रकाश के ये भाग पंडितों के ही लिखे हुए हैं। इनमें कहीं-कहीं अशुद्धियां रह गई हैं।

१६. भ्रमोच्छेदन--(सं० १९३७ वि०) राजा शिवप्रसाद 'सितारे-हिन्द' ने 'निवेदन' शीर्षक से महर्षि के सिद्धान्तों की आलोचना की थी। उसके उत्तर में २३ पृष्ठ की यह पुस्तिका हिन्दी में लिखी गई।

१७. गो करुणानिधि—महर्षि गोरक्षा को आर्यजाति के अभ्युत्थान एवं देश दारिद्र्य को दूर करने के लिए एक अमोघ औषधि समझते थे। जब अभी वे अपने सिद्धान्तों को रूपरेखा भी तय्यार नहीं कर पाये थे। तब भी हम उन्हें अजमेर में राजस्थान के पोलिटिकल एजन्ट कर्नल ब्रुक से गोवध निषेध का आग्रह करते पाते हैं। 'गोकरुणानिधि' लिखकर इसका अनुवाद अंग्रेजी में कराने का उद्योग किया और सरकार के पस मेमोरियल भेजने की व्यवस्था करते रहे। ३२ पृष्ठों की यह

उपयोगी पुस्तक सं० १९३७ में रची गई। इस वर्ष (सं० २००९ वि०) सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड दिल्ली ने इसकी २८००० प्रतियां स्वल्प मूल्य पर वितीर्ण की हैं।

१८. *स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश*—पहले पहल इसका प्रकाशन सन् १८८४ में 'सत्यार्थ प्रकाश' के साथ हुआ। इसके पश्चात पृथक् भी पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। इसमें महर्षि के ५१ मन्तव्यामन्तव्यों को परिभाषा रूप में दिया गया है। कुल ८ पृष्ठ हैं।

१९. *अष्टाध्यायी भाष्य*—यह पुस्तक महर्षि के जीवन काल में मुद्रित नहीं हुआ। हस्तलिखित प्रति कुछ खण्डित मिली—शुद्ध करके छपाना आरम्भ किया गया है।

२०. *नियम उपनियम*—महर्षि द्वारा निर्मित ७॥×४॥ इंच आकार के १२ पृष्ठों में छपे हैं। सन् १९३४ में सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा ने उपनियमों के कुछ संशोधन किए हैं। आर्य समाज के पहले नियम २८ थे—जिनका प्रथम संशोधन लाहौर में सन् १८७७ ई० में हुआ।

२१. *स्वीकार पत्र*— २७ फरवरी सन् १८८३ ई० को उदयपुर में महर्षि ने अपना स्वीकार पत्र (वसीयत नामा) लिखा था। इसके अनुसार उनकी सारी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी २३ सदस्यों की सभा परोपकारिणी सभा अजमेर है। यह ६ पृष्ठ का है।

२२. *काशी शास्त्रार्थ*—काशी में कार्तिक सुदी १२ सं० १९२६ में महर्षि व काशीस्थ पण्डितों के मध्य हुए शास्त्रार्थ का संस्कृत व हिन्दी में विवरण है पृष्ठ सं० १६।

२३. *प्रतिमा पूजन विचार*—चैत्र शुदी ११ संवत् १९३० को हुगली (कलकत्ता) के समीप पं० ताराचरण तर्करत्न के साथ प्रतिमा

पूजन पर महर्षि का शास्त्रार्थ हुआ था। ८×५ इंच आकार के २७ पृष्ठों की है।

२४. *सत्य-धर्म-विचार*—(संवत् १९३७ वि०) मार्च सन् १८७७ में चांदपुर जिला शाहजहांपुर में ईसाई व मुसलमान विद्वानों के साथ °-विचार हुआ था—उसका वर्णन हिन्दी में ३० पृष्ठों में है।

२५. *सत्यासत्य विवेक*—भादों सुदी ८, ९, १० सं० १९३६ वि० को तीन दिन तक क्रमशः अनेक जन्म, अवतार और ईश्वर का पाप क्षमा करना—इन तीन विषयों पर बरेली में महर्षि व पादरी टी. जी. स्काट के मध्य शास्त्रार्थ हुआ। इस पुस्तक में इसका विस्तृत वर्णन है।

२६. *व्यवहारभानु*—व्यवहारभानु का ऊपर 'वेदांग प्रकाश' में उल्लेख हुआ है। यथायोग्य व्यवहार की शिक्षा इसका एक महत्वपूर्ण लाभ है। बालक से वृद्ध सब मनुष्यों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। सार्वदेशिक प्रकाशन लिमिटेड दिल्ली से मुद्रित हुई है। मूल्य दो आना।

२७ *पत्र और विज्ञापन*—महर्षि के पत्र और विज्ञापनों के कई सङ्कलन प्रकाशित हुए हैं। परन्तु रामलाल कपूर ट्रस्ट लाहौर से प्रकाशित व श्री पं० भगवद्दत्त जी बी. ए. रिसर्च स्कालर द्वारा लिखित ग्रन्थ जो सं० २००२ वि० में प्रकाशित हुआ है—सर्वाधिक सम्पूर्ण व सुसम्पादित है। महर्षि के जीवन वृत्तान्त, विचारधारा आदि के ज्ञान के लिए यह भी अत्यन्त उपयोगी है। पृष्ठ सं० ५४४। ५०२ पत्र और विज्ञापनों का संग्रह है।

विचार कण

यहां हम महर्षि के लेख, विज्ञापन व पत्र आदि से उनके कुछ ऐसे वाक्य उद्धृत कर रहें हैं, जिनसे महर्षि के विचारों पर प्रकाश पड़ता है :—

१. *ईश्वर विश्वास*—"मैंने इस धर्म-कार्य का सर्व शक्तिमान्, सत्य ग्राहक और न्याय सम्बन्धी परमात्मा के कारण में शीश धर उसी के सहाय के अवलम्ब से आरम्भ किया है।" (भ्रांति निवारण भूमिका पृ०)

२. *जीवनोद्देश्य*—"सुनने और प्रश्नोत्तर होने के पश्चात् सज्जनों को यही योग्य है कि सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करके स्वयं सदा आनन्दित होकर सबको आनन्दित किया करें" (ज्येष्ठ बदी १२ सं० १९४० २ जून सन् १८८३ का विज्ञापन)

३. *अन्यायाचरण के साथ असहयोग*—"चाहे कोई हो, जब तक मैं न्यायाचरण देखता हूँ, मेल करता हूँ, और जब अन्यायाचरण प्रकट होता है, फिर उससे मेल नहीं करता, इसमें कोई हरिश्चन्द्र हो व अन्य कोई हो" (१९ मार्च १८७७ के कर्नल आल्काट के नाम लिखे पत्र से)

४. *वेद का स्वाध्याय*—"वेद का पढ़ना द्वितीय सत्य है" (कानपुर का विज्ञापन २० जुलाई सन् १८६९)

५. *आर्यावर्त देश की स्वाभाविक सनातन विद्या संस्कृत ही है...* "उसी से देश का कल्याण होगा। अन्य भाषा से नहीं (सत्यार्थ प्रकाश प्रथम संस्करण की लिखित प्रति में चौदहवें समुल्लास का लेख)

६. *आर्य समाज और गोरक्षा*—"आप लोग भी जहां तक हो सके गोरक्षार्थ सही और आर्यभाषा के राजकार्य मे प्रवृत्त होने के अर्थ शीघ्र प्रयत्न कीजिये। (१४ अगस्त १८८२ का ला० कालीचरन के नाम पत्र)

"बारम्बार ऐसा ही निश्चय होता है यह दो (गोरक्षा और आर्य-भाषा का राजकीय कार्यों में प्रयोग) सौभाग्यकारक अंकुर आर्यों के कल्याणार्थ उगे हैं। अब यदि हाथ पसार कर न लेवें तो इससे (अधिक)

दुर्भाग्य की दूसरी क्या बात होगी। (शुद्ध श्रावण शुक्ल ३ सं० १६३६ का उदयपुर से बा० दुर्गाप्रसाद के नाम लिखे पत्र से)

७. *चारसौ वर्ष की आयु*—मनुष्य ब्रह्मचर्यादि उत्तम नियमों से त्रिगुण, चतुर्गुण आयु कर सकता है अर्थात् चारसौ वर्ष तक भी सुख पूर्वक जी सकता है (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका)

८. *स्वामी-सेवक का पारस्परिक वर्ताव*—"स्वामी सेवक के साथ ऐसा बर्तें जैसा अपने हस्तपादादि अङ्गों की रक्षा के लिए बर्तते हैं। सेवक स्वामियों के लिए ऐसे वर्तें कि जैसे अन्न, जल, वस्त्र और घर आदि शरीर की रक्षा के लिए होते हैं (व्यवहार भानु)

६. *आर्य समाज से उन्नति*—"जो उन्नति करना चाहो, तो "आर्य-समाज" के साथ मिलकर उसके उद्देशानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिये, नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा, क्योंकि हम और आपको अति उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना और (जिनसे) अब भी पालन होता है, (और) आगे भी होगा, उसकी उन्नति तन, मन, धन से सब जने मिलकर प्रीति से करें, इसलिए जैसा 'आर्यसमाज' आर्य्यावर्त की उन्नति का कारण है, वैसा दूसरा नहीं हो सकता। यदि इस समाज को यथावत् सहायता देवें, तो बहुत अच्छी बात है, क्योंकि समाज का सौभाग्य बढ़ाना समुदाय का काम है एक का नहीं।"

(सत्यार्थ प्रकाश)

१०. *पशु रक्षा*—"हे धार्मिक सज्जन लोगो ! आप इन पशुओं की रक्षा तन मन और धन से क्यों नहीं करते ? हाय !! बड़े शोक की बात है कि जब हिंसक लोग गाय बकरे आदि पशु और मोर आदि पक्षियों को मारने के लिए ले जाते हैं, तब अनाथ तुम हमको देख के राजा और प्रजा पर बड़े शोक प्रकाशित करते हैं। "हे *मांसाहारियो !* तुम लोगों को जब कुछ काल के पश्चात् पशु न मिलेंगे, तब मनुष्यों का मांस भी छोड़ोगे वा नहीं। (गोकरुणानिधि)

सार्वदेशिक भावना—यद्यपि मैं आर्यावर्त देश में उत्पन्न हुआ और बसता हूँ तथापि जैसे इस देश के मतमतान्तरों की झूठी बातों का पक्षपात न कर याथातथ्य प्रकाश करता हूँ वैसे ही दूसरे देशस्थ वा मतोन्नति वालों के साथ भी वर्तता हूँ। जैसा स्वदेश वालों के साथ मनुष्योन्नति के विषय में वर्त्तता हूँ वैसा विदेशियों के साथ भी, तथा सब सज्जनों को भी वर्त्तना योग्य है। (सत्यार्थप्रकाश भूमिका)

मनुष्य—जो बलवान होकर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है, और जो स्वार्थवश होकर परहानि मात्र करता रहता है, वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है। (सत्यार्थप्रकाश भूमिका)

राज्य—इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता। (सत्यार्थप्रकाश ११)

विद्या—जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्यावर्त देश से मिश्र वालों, उनसे यूनानी उनसे रूम और उनसे यूरोप देश में, उनसे अमेरिका आदि देशों में फैली है (सत्यार्थप्रकाश ११)

देश को धक्का—ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी पूर्व दशा में नहीं आया क्योंकि जब भाई भाई को मारने लगे तो नाश होने में क्या सन्देह? (सत्यार्थ०)

आर्य बाहर से नहीं आये—किसी संस्कृत ग्रंथ में वा इतिहास में नहीं लिखा कि आर्य लोग ईरान से आये और यहां के जंगलियों को लड़कर, जय पाके, निकाल इस देश के राजा हुए, पुनः विदेशियों का लेख माननीय कैसे हो सकता है? (सत्यार्थप्रकाश ८)

असहशिक्षा—स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे। (सत्यार्थ० ३)

दुख सागर—विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़कर अनेकविध दुख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इस हानि ने, जो कि स्वार्थी मनुष्यों को प्रिय है, सब मनुष्यों को दुःख सागर में डुबा दिया है।